कृष्णदास संस्कृत सीरीज

३०

****

महाकविकालिदासविरचितं

मेघदूतम्

'इन्दुकला' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकार:

श्री वैद्यनाथ झा शास्त्री



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

कृष्णदास संस्कृत सीरीज

३०

****

महाकविकालिदासविरचितं

मेघदूतम्

'इन्दुकला' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः

श्री वैद्यनाथ झा शास्त्री



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : चतुर्थ, सन् २००२
मूल्य : पूर्वमेघ ३५.००
संपूर्ण ६०.००

पोस्ट बॉक्स नं० ११४८
के. ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास, वाराणसी–२२१ ००१ (भारत)
फोन : ३३५०२०
e-mail : cssoffice@satyam.net.in

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

पुस्तक प्रकाशक एवं वितरक
पोस्ट बॉक्स नं० १००८ के. ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास, वाराणसी–२२१ ००१ (भारत)
फोन : ३३३४५८ (आफिस), ३३४०३२ एवं ३३५०२० (आवास)

KRISHNADAS SANSKRIT SERIES

30

******

MEGHADŪTAM

Of

MAHĀKAVI KĀLIDĀSA

with

'Indukalā' Sanskrit-Hindi Commentaries

By

Sri Vaidyanath Jha



KRISHNADAS ACADEMY, VARANASI

Publisher : Krishnadas Academy, Varanasi.
Printer : Chowkhamba Press, Varanasi.
Edition : 4rth, 2002

Oriental Publishers & Distributors
Post Box No. 1118
K. 37/118, Gopal Mandir Lane
Varanasi-221 001
Phone : 335020
e-mail : cssoffice@satyam.net.in

Also can be had from

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
K. 37/99, Gopal Mandir Lane
Near Golghar (Maidagin)
Post Box No. 1008, Varanasi-221 001 (India)
Phone : Off. 333458, Resi. : 334032 & 335020

समर्पणम्

स्निग्धामुदारमधुरां विलसत्प्रसादां
विश्रामधामपुलिनां विशदार्थधाराम् ।
हंसावगाहनरसां नितरामगाधा—
माराधयामि कविराजसरस्वतीं ताम् ॥ १ ॥

श्री–कालिदासरसपिच्छिलकाव्यमार्गे
प्रस्थानकौतुकमतीव शिशुत्वमेव ।
जानन्नपि स्फुटमिदं पुनरेव गन्तु—
मालम्ब्य सद्गुरुकराङ्गुलिमुद्यतोऽस्मि ॥ २ ॥

स्वाभाविकं स्खलनमेव पदे पदे मे
सम्भाव्यते यदपि दुर्जनहासहेतुः ।
स्मृत्वा सतां परमपारकृपामकम्पा—
माश्वासनादकरवं ललितार्थटीकाम् ॥ ३ ॥

श्रोतुर्विमुग्धमतिविभ्रममारहन्तीं
चित्रां पटीमिव नटीमिव नाटकस्य ।
वाचं निवेदयति सो विपुलार्थलक्ष्मीं
स्मेराननं तमनिशं गुरुमानतोऽस्मि ॥ ४ ॥

कीर्तिर्धुरि-स्फुरति नामनि यस्य शश्व—
दानन्द एव चरमावयवं बिभर्ति ।
तस्मै सुधीन्द्रतिलकाय सुदेशिकाय
टीकामिमामुपहरत्यथ वैद्यनाथः ॥ ५ ॥

०

—: व्याख्यातृमङ्गलाचरणम् :—

शृङ्गार-दैवतमनन्तगुणाभिरामं
रामानुजं हृदयरञ्जनमञ्जनाभम् ।
नेत्रामृतं निरुपमं वृषभानुजाया
ध्वान्तापहं किमपि धाम नमामि कृष्णम् ॥ १ ॥

विद्याविनोदरसिकं मधुरं निसर्गा-
दन्तेवसत्स्वतुलवत्सलमेव सत्सु ।
आन्वीक्षिकीहृदयवल्लभमार्यकीर्त्या-
नन्दाभिधं गुरुवरं प्रणमामि भक्त्या ॥ २ ॥

यस्मिन् प्रसीदति, निषीदति भाग्यलक्ष्मी—
रुत्सृज्य दैवहतकं गमनोत्सुकापि ।
जागर्ति सुप्तनियतिः शरणागतानां
तं पूज्यपूजितगुरुं शरणं प्रपद्ये ॥ ३ ॥

श्रीमत्कवीन्द्रकलकीर्तिकृताग्रदूतं
शश्वद्रसोर्मिशतमेदुरमेघदूतम् ।
व्याख्यातुमाश्रयति सद्गुरुदत्तविद्यां
हृद्यामवद्यरहितामिह वैद्यनाथः ॥ ४ ॥

भूमिका

संस्कृत साहित्य से सम्बद्ध ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो स्वनामधन्य सर्व-मूर्धन्य कवि एवं सुनिपुण नाटककार कविकुल-गुरु "कालिदास" को न जानता हो। जिनका यश:सौरभ शकुन्तलानाटक के माध्यम से समस्त विश्व को सुवासित कर रहा है, जिनकी काव्य-मधुरिमा पर क्या प्राच्य और क्या भारतीय समस्त सहृदयगण लट्टू हैं। "कविकुलमूर्धन्य" नाम वाली पगड़ी जिनके सम्पर्क में सार्थक हुई उन कविकुल-सुधाकर "कालिदास" को कौन नहीं जानता? आपकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है, खण्डकाव्य, महाकाव्य और नाटक सर्वत्र ही आपकी कवित्व-शक्ति पूर्णरूप से परिपक्व दिखाई पड़ती है। आप भारत के ही नहीं अपितु समस्त विश्व के महाकवियों में सर्वप्रथम गिने जाने वाले महाकवि हैं। काव्य के तीनों विधाओं में आपके समान विश्व का कोई भी कवि ऐसा मनोरम काव्य-प्रणयन नहीं कर सका। प्रकृति के मनोरम चित्रण करने में एवं अपनी रचनाओं के पात्रों के चरित्र का असाधारण चित्रण करने में महाकवि अद्वितीय हैं। इनकी रचनाओं में नाट्यकला की सुन्दरता का अवलोकन कीजिए या महाकाव्य का वर्णन-सौन्दर्य देखिये अथवा गीतिकाव्य के सरस करुण हृदयोद्‌गारों का आनन्द लीजिए, सब उपर्युपरि है। महाकवि में वह अप्रतिम चमत्कार है जिस पर समस्त विश्व आश्चर्यान्वित हो रहा है, इनमें ऐसी ब्रह्माण्डव्यापिनी सर्वातिशायिनी प्रतिभा है जिसका एकत्र समागम संसार में दुष्प्राप्य है। आध्यात्मिक रहस्य का ऐसा सरस प्रतिपादन अन्यत्र दुर्लभ है। इनकी शान्तिप्रदायिनी उपदेशमयी कविताकौमुदी जिज्ञासुजन के जिज्ञासातप्त हृदय को आनन्द-सागर की लहरों में ऐसा डुबो देती है कि उससे निकलने का नाम नहीं लेना चाहता।। इनकी कविता में अपनी शकुन्तला की तरह अनाघ्रात पुष्प की ताजगी, अखण्डित किसलयों की कोमलता, अनास्वादित रस का माधुर्य तथा अखण्ड सौभाग्यशाली पुण्यों के फल की पवित्रता आदि का समवाय मिलता है। इस कलाकार की कला में केवल रसिकता ही नहीं अपितु समाज-विज्ञान का भी अपूर्व एवं अद्‌भुत दर्शन होता है। संस्कृत साहित्य के एकमात्र

कालिदास ही ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपनी कविता में अपने युग की चेतना को रूपायित किया है (बाण को छोड़कर)। इनका काव्य भारत के प्राचीन इतिहास के देदीप्यमान युग का प्रकाश-स्तम्भ और पौराणिक ब्राह्मण-धर्म तथा वर्णाश्रम धर्म का वास्तविक प्रतीक है।

जीवन :—दुःख है कि हम अपने इस महाकवि के जीवन के विषय में 'इदमित्थम्' नहीं कह सकते क्योंकि ऐसा कोई निश्चयात्मक प्रमाण उपलब्ध नहीं हो सका है। महाकवि स्वयं इतने बड़े निरभिमानी थे कि अपने सम्बन्ध में इन्होंने नाम के प्रयोग को छोड़कर और कुछ लिखा ही नहीं। आत्मश्लाघा से ये कितनी दूर रहते थे एवं ये कितने विनम्र थे इसका परिचय हमें इनके रघुवंश महाकाव्य के निम्नलिखित पद्यों में मिलता है—

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनाऽस्मि सागरम्॥
मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः॥
रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन्।
तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः॥ (रघु०, १–२।३।९॥)

अतः ये कब और कहाँ उत्पन्न हुए ? ऐसे महारत्न का जन्म किस स्तुत्य दम्पति ने दिया, एवं ये कब परलोक सिधारे—इन सब बातों का समुचित एवं सन्तोषप्रद उत्तर हमें नहीं प्राप्त हो सका है।

ऐसी जनश्रुति है कि महाकवि पहले महामूर्ख थे। किसी शारदानन्द नामक राजा की पुत्री विद्योत्तमा विदुषी एवं परम-सुन्दरी थी। अपनी विद्या के गर्व के कारण उसने 'शास्त्रार्थ में जो पुरुष मुझे परास्त करेगा उसी से मैं अपना विवाह करूँगी' ऐसी प्रतिज्ञा कर ली थी। तात्कालिक विद्वान् लोग उससे परास्त होकर ईर्ष्यावश उसका दर्प-भंग करने के लिए उसका विवाह किसी महामूर्ख से कराना चाहते थे, और सब मिलकर ऐसे मूर्ख को खोजने लगे। कहा जाता है कि कालिदास वृक्ष की डाल पर बैठकर उसी डाल को इस तरह काट रहे थे जिससे उसके कटने पर डाल सहित कालिदास भी धराशायी हो जाते। पण्डितों ने इनकी कार्यवाही को देखा और इन्हें महामूर्ख समझकर इन्हें नीचे उतरवाकर 'हमलोग तुम्हारा विवाह एक परम सुन्दरी राजकुमारी से

करवा देंगे तुम कुछ न बोलना हमलोग राजसभा में तुम्हारा परिचय 'ये हमारे गुरुजी हैं' इस तरह देंगे इत्यादि बातें समझाकर अपने साथ ले गये। राजसभा में जाकर पण्डितों ने इनका पूर्वनियोजित ढंग से परिचय दिया तथा शास्त्रार्थ के लिए राजकुमारी को कहा एवं यह भी सूचित कर दिया कि 'इस समय हमारे पूज्य गुरुवर ने मौन व्रत ले रखा है अतः शास्त्रार्थ साङ्केतिक (इशारों से) होगा।' शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। विद्योत्तमा ने 'ईश्वर एक है' इस अभिप्राय से अपनी एक अंगुली उठाकर गुरुजी की तरफ दिखाया। गुरुजी ने 'यह मेरी एक आँख फोड़ने का संकेत कर रही है' ऐसा समझकर 'मैं तुम्हारी दोनों आँखें फोड़ दूँगा' इस अभिप्राय से अपनी दो अंगुली ऊपर उठाकर राजकुमारी को दिखाया। इस पर गुरुजी के शिष्यों ने एकजुट होकर ऐसा तर्क-कुतर्क प्रस्तुत किया कि विद्योत्तमा को परास्त होना पड़ा। अन्ततः इनका विवाह राजकुमारी से हो गया। कहा जाता है कि सुहागरात के शुभावसर पर बाहर कोई 'ऊँट' चिल्लाया और विनोद के लिए राजकुमारी ने अपने पति से किमिदम् (यह क्या है) ? ऐसा पूछा। उस मूर्ख ने पत्नी के प्रश्न को सुनकर घबराकर या उच्चारण की असमर्थता से 'उट्रोऽयम्' ऐसा उत्तर दिया। राजकुमारी पण्डितों के षड्यन्त्र को समझकर अपने दुर्भाग्य पर पछताती हुई पति महोदय को अपमानित कर राजभवन से निकाल दिया। उस मूर्ख के लिए पत्नी का अपमान असह्य था। अतः उसने विद्या-प्राप्ति के लिए किसी 'काली मन्दिर' में जाकर आमरण उपासना प्रारम्भ कर दी। काली ने प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा, उस मूर्ख ने 'कवित्वपूर्ण विद्या दो' ऐसा वर माँगा। भगवती के 'एवमस्तु' ऐसा कहकर अन्तर्धान हो जाने पर वह मूर्ख तत्क्षण सकल शास्त्र का पारङ्गत एवं अद्वितीय प्रतिभासम्पन्न विद्वान् हो गया। काली की उपासना के फलस्वरूप उन्हें विद्या मिली अतः उनका नाम 'कालिदास' पड़ा, ऐसा भी सुना जाता है। आगे यह भी किंवदन्ती है कि वरदान मिल जाने पर कालिदास को अपनी पत्नी के द्वारा किया गया अपमान भी स्मरण हो आया और उसका बदला लेने वे घर की ओर चले। जिस समय वे घर पहुँचे वह समय सम्भवतः रात का समय था अतः घर का द्वार बन्द था, उन्होंने बाहर से आवाज लगायी 'अनावृतकपाटं द्वारं देहि' (बन्द किवार खोलो)। विद्योत्तमा पति के स्वर से परिचित थी एवं पति की मूर्खता से भी, अतः उसने साश्चर्य पूछा—

'अस्ति कश्चिद्वाग्विशेषः' (क्या वाणी की कुछ विशेषता है ?) महाकवि ने पत्नी के विद्याभिमान का मर्दन करने के लिए उसके द्वारा प्रयुक्त वाक्य के तीन पदों को लेकर तीन काव्यों का निर्माण किया जो संस्कृत साहित्य के अनूठे काव्य हैं। जैसे कि 'अस्ति' इस वाक्यांश को लेकर 'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा' इस चरण से प्रारम्भ होने वाला 'कुमारसंभव' महाकाव्य, "कश्चित्' इस वाक्यांश को लेकर 'कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा' इस चरण से प्रारम्भ होने वाला 'मेघदूत' नामक खण्डकाव्य तथा 'वाक्' इस वाक्यांश को लेकर 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ' इस चरण से प्रारम्भ होने वाला 'रघुवंश' महाकाव्य। यह किंवदन्ती बहुत प्रसिद्ध है।

इनके सम्बन्ध में दूसरी जनश्रुति है कि ५०० ई० में वर्तमान लङ्का के महाराज कुमारदास स्वयं कवि थे और कलामर्मज्ञ भी। अतः उन्होंने कालिदास को अपनी राजसभा में ही नहीं रखा अपितु अपना मित्र भी बना लिया। राजभोग का उपभोग करते हुए इनका सम्बन्ध किसी वेश्या से हो गया और उसी के द्वारा इनकी हत्या कर दी गयी। पर यह जनश्रुति बिल्कुल निराधार जान पड़ती है।

कुछ लोग इन्हें महाराज विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में एक मानते हैं। जैसा कि इनके काव्यों में 'विक्रम' शब्द का साभिप्राय प्रयोग किसी विक्रम राजा के आश्रित होने का संकेत करता है।

कालिदास का सम्प्रदाय :— कालिदास जाति के ब्राह्मण थे। ये किस सम्प्रदाय के थे? इनके उपास्य देव कौन थे? इन सब प्रश्नों का उत्तर हमें उनके काव्यों के आदि में किये गये मङ्गलाचरणों से मिलता है। रघुवंश के मङ्गलाचरण में उन्होंने जगत् के माता-पिता शङ्कर और पार्वती को प्रणाम किया है—जैसे

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥

इसी प्रकार मालविकाग्निमित्र नाटक में उन्होंने अष्टमूर्ति शङ्कर की वन्दना की है। जैसे :—

एकैश्वर्ये स्थितोऽपि प्रणतबहुफले यः स्वयं कृत्तिवासाः,
कान्तासंमिश्रदेहोऽप्यविषयमनसां यः परस्ताद्यतीनाम्।
अष्टाभिर्यस्य कृत्स्नं जगदपि तनुभिर्बिभ्रतो नाऽभिमानः,
सन्मार्गालोकनाय व्यपनयतु स वस्तामसीं वृत्तिमीशः॥

इसी प्रकार विक्रमोर्वशीय त्रोटक के मङ्गलाचरण में उन्होंने शङ्कर की प्रार्थना की है। जैसे—

वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसी
यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यविषयः शब्दो यथार्थाऽक्षरः।
अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमितप्राणादिभिर्मृग्यते
स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निःश्रेयसायाऽस्तु वः॥

इसी प्रकार विश्वविश्रुत 'अभिज्ञानशाकुन्तल' के मङ्गलाचरण में उन्होंने अष्टमूर्ति शङ्कर को ही प्रणाम किया है। जैसे—

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या, वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥

इस प्रकार हम यह निश्चय कर सकते हैं कि ये भगवान् शिव के उपासक थे और इनका सम्प्रदाय 'शैव' था। परन्तु यहाँ यह नहीं भूलना चाहिए कि विश्व के सर्मश्रेष्ठ महाकवि कालिदास स्वयं शैव होते हुए भी साम्प्रदायिक संङ्कीर्णता से बहुत ही दूर थे। यह बात मैं नहीं, उनका काव्य स्वयं कह रहा है। कुमारसंभव के द्वितीय सर्ग में ब्रह्माजी की स्तुति एवं रघुवंश के दशम सर्ग में की गयी 'विष्णु' की स्तुति इसका प्रमाण है। इतना ही नहीं, ये एक ही परब्रह्म के तीनों रूप (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) मानते हैं—जैसा कि कुमार संभव के सप्तम सर्ग में उन्होंने प्रतिपादित किया है। जैसे—

एकैव मूर्तिर्बिभिदे त्रिधा सा सामान्यमेषां प्रथमाऽवरत्वम्।
विष्णोर्हरेस्तस्य हरेः कदाचिद्–वेधास्तयोस्तावपि धातुराद्यौ। (७।४४।)

कालिदास का स्थितिकाल—कालिदास का स्थितिकाल संस्कृत साहित्य के इतिहास में विभिन्न इतिहासज्ञों के अन्तःसाक्ष्य प्रमाणों के आधार पर ईसा के पूर्व प्रथम शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी तक के सात सौ वर्षों के लम्बे समय में झूल रहा है। यहाँ पर संक्षेप में प्रधान मतों का उल्लेख किया जायगा। उनमें सामान्यतः चार मत प्रधान हैं। जिसमें प्रथम है—

(१) धारा नगरी के राजा भोज का समय (१००५-१०५४) खृष्ट की ग्यारहवीं शताब्दी। वल्लालसेन नामक किसी विद्वान् ने कालिदास को

राजा भोज का सभा–पण्डित माना है। वल्लालसेन ने यह बात सुनी-सुनायी बातों के आधार पर लिखी है क्योंकि वे स्वयं भोज के समकालिक नहीं थे। यह बात उन्हीं के कथनों से पुष्ट होती है। क्योंकि जहाँ पर कालिदास को भोज का सभा-पण्डित उन्होंने कहा वहीं भारवि, दण्डी, माघ आदि कवियों को भी (जो विभिन्न समय के थे) भोज के सभा-पण्डित कहा है। अत: यह मत बिल्कुल नगण्य है। क्योंकि राजा भोज ग्यारहवीं शताब्दी के थे और कादम्बरी तथा हर्षचरित के रचयिता बाणभट्ट छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुए थे। एवञ्च बाणभट्ट ने अपने 'हर्षचरित' में कालिदास की प्रशंसा में लिखा है—

'निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते।।'

यदि कालिदास भोज के सभापण्डित होते तो उनकी प्रशंसा ५०० वर्ष पूर्व कैसे होती? हो सकता है वल्लालसेन ने भोज के समय हुए परिमल कालिदास या कालिदास उपाधिवाले किसी और कवि को ही भ्रमवश दीपशिखा 'कालिदास' मान लिया हो।

(२) दूसरा मत है चौथी शताब्दी के अन्त से पाँचवी शताब्दी के पूर्वार्ध तक अर्थात् चन्द्रगुप्तविक्रमादित्य और समुद्रगुप्त का राज्यकाल। प्रो० लासेन, कर्नल विलफोर्ड, जेम्स ग्रिन्सेप, प्रो० मैक्डानल, प्रो० कीथ और विन्सेण्ट स्मिथ आदि विदेशी विद्वानों का कहना है कि गुप्तवंश के राजाओं के राज्यकाल में भारत का साहित्यसूर्य मध्याह्न के आकाश में स्थित होकर सारे संसार को अपने प्रखर किरणों से प्रभावित कर रहा था। कालिदास की रचना में जो तृप्ति और आनन्द की अजस्र धारा प्रवाहित हुई वह उसी सुख एवं समृद्धि के सौभाग्य समय में संभव हो सकती है। प्रो० विन्सेण्ट स्मिथ कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल में आये 'चीनांऽशुकमिव केतो:' इस उक्ति के आधार पर यह मानते हैं कि जिस बौद्ध धर्म के प्रभाव से भारत और चीन की पारस्परिक मैत्री होकर दोनों देशों की सभ्यता के संमिश्रण से एक तीसरी सभ्यता उत्पन्न हुई उसका पूर्ण विकास गुप्त वंश के राज्यकाल में ही हुआ।

कामं नृपा: सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम्।
नक्षत्रताराग्रहसंकुलाऽपि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रि:।। (रघुवंश, ६-२२)

रघुवंश के इन्दुमती स्वयंवर में सुनन्दा सर्वप्रथम मगध के राजा की प्रशंसा करती है। गुप्तवंश के राजा मगध पर शासन करते थे, यह बात तो निर्विवाद है ही। प्रो० कीथ सर्वप्रथम मगधेश्वर की प्रशंसा किये जाने को यह मानते हैं कि कालिदास ने इस तरह प्रच्छन्नभाव से अपने आश्रयदाता का संकेत एवं कृतज्ञता घोषित करने के लिए प्रशंसा अपने काव्यों में की है। उनका कहना है कि कालिदास ने इसी तरह रघुवंश में 'आसमुद्रक्षितीशानाम्' इस वाक्य के द्वारा समुद्रगुप्त के राज्यविस्तार का संकेत किया है, इसी तरह 'ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः' इस श्लोकांश में आये 'चन्द्र' शब्द के द्वारा अपने आश्रयदाता चन्द्रगुप्त का एवं 'कुमारकल्पं सुषुवे कुमारम्' इस श्लोक में आये 'कुमार' शब्द के द्वारा उसके पुत्र कुमारगुप्त का संकेत किया है। उनका कहना है कि 'कुमारसंम्भव' नामक महाकाव्य की रचना कालिदास ने चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त के जन्म के उपलक्ष्य में की है।

उन्होंने कालिदास को गुप्त काल में मानने के लिए कुछ ऐतिहासिक प्रमाण भी प्रस्तुत किये हैं। उनका कहना है कि अश्वघोष कनिष्क के शासनकाल में विद्यमान थे। अश्वघोष एवं कालिदास की रचनाओं में अनेक स्थल पर भाव-साम्य है। भावसाम्य के कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं—

महाकवि अश्वघोष का अपने बुद्धचरित में सिद्धार्थ के जन्म का वर्णन—

वाता ववुः स्पर्शसुखा मनोज्ञा दिव्यानि वासांस्यवपातयन्तः।
सूर्यः स एवाऽभ्यधिकं चकासे जज्वाल सौम्यार्चिरनीरितोऽग्निः॥
(बुद्धचरित, १–२२)

यदि इस तरह करते हैं तो महाकवि कालिदास भी अपने कुमारसंभव में कार्तिकेय के जन्म का भी वर्णन उसी प्रकार करते हैं—

वाता ववुः सौख्यकराः प्रसेदुः आशाविधूम्रो हुतभुग् दिदीपे।
जलान्यभूवन् विमलानि तत्रोत्सवेऽन्तरिक्षं प्रससाद सद्यः॥ (११–३७)

यदि अश्वघोष राजकुमार सिद्धार्थ जिस समय वनविहार के लिए राजमार्ग पर निकले उस समय उनको देखने के लिए उत्कण्ठित नगर-नारियों के मुख का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

वातायनेभ्यस्तु विनिःसृतानि परम्परायासितकुण्डलानि।
स्त्रीणां विरेजुर्मुखपङ्कजानि सक्तानि हर्म्येष्विव पङ्कजानि॥
(बुद्धचरित, ३–१९)

तो कालिदास भी स्वयंवर में आते हुए अज को देखने के लिए उत्कण्ठित नगरस्त्रियों के मुख का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

तासां मुखैरासवगन्धगर्भैर्व्याप्तान्तरा: सान्द्रकुतूहलानाम् ।
विलोलनेत्रभ्रमरैर्गवाक्षा: सहस्रपत्त्राभरणा इवाऽऽसन् ॥ (रघुवंश, ७-११)

बुद्धचरित में तपस्या में लीन बुद्ध को तपस्या से विरत करने के लिए प्रयत्नशील काम को आकाशस्थ विशिष्टभूत इस प्रकार फटकारता है—

मोघं श्रमं नार्हसि मार ! कर्तुं हिंस्रात्मतामुत्सृज गच्छ शर्म ।
नैष त्वया कम्पयितुं हि शक्यो महागिरिर्मेरुरिवाऽनिलेन ॥

(बुद्धचरित, १३-५७)

रघुवंश में नन्दिनी सेवा में तत्पर दिलीप की परीक्षा के लिए माया-निर्मित सिंह भी राजा को उसी प्रकार कहता है—

'अलं महीपाल! तव श्रमेण प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात् ।
न पादपोन्मूलनशक्तिरंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य ॥ (रघुवंश, २-३४)

इसी तरह सौन्दरनन्द में नन्द को बुद्ध के गौरव से एवं सुन्दरी प्रिया के अनुराग से हुई दुविधा का वर्णन अश्वघोष इस प्रकार करते हैं—

तं गौरवं बुद्धगतं चकर्ष, भार्यानुराग: पुनराचकर्ष ।
सोऽनिश्चयान्नाऽपि ययौ न तस्थौ तरंस्तरङ्गेष्विव राजहंस: ॥ (४-४२)

कुमारसंभव में तपश्चर्यारत पार्वती की परीक्षा के लिए आये हुए ब्रह्मचारी वेशधारी शिव ने शिव की निन्दा सुनाने के कारण जाती हुई पार्वती को अपना स्वरूप दिखला कर जैसी दुविधा में डाला—कालिदास के द्वारा उसका वर्णन देखिए—

तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टि–र्निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती ।
मार्गाऽचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः शैलाधिराज–तनया न ययौ न तस्थौ ॥

(५–८५)

इस प्रकार दोनों महाकवियों की रचनाओं में बहुत-से स्थलों पर समानता पायी जाती है जो इस बात को प्रमाणित करती है कि एक ने दूसरे का अनुकरण किया है। किसने अनुकरण किया और किसकी रचना अनुकार्य है इसका विवेचन यदि किया जाय तो समय की कुछ जानकारी हो सकती है। प्रो० साहेब का कहना है कि महाकवि भास ने अपने नाटकों में जैसी प्राकृत भाषा का प्रयोग किया है वह अश्वघोष के द्वारा प्रयुक्त प्राकृत से परिष्कृत और अर्वाचीन है, इससे सिद्ध होता है कि महाकवि भास अश्वघोष से अर्वाचीन हैं। महाकवि

कालिदास भास से अर्वाचीन हैं यह बात तो निर्बिवाद ही है क्योंकि कालिदास स्वयं मालविकाग्निमित्र नाटक के प्रारम्भ में भास को प्राचीन यशस्वी कवि मान चुके हैं। जैसे—प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य कृतौ कथं बहुमानः ? अब यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कालिदास ने अश्वघोष का अनुकरण किया है। हम पहले ही लिख चुके हैं कि अश्वघोष कनिष्क के समय में विद्यमान थे। कनिष्क सम्भवतः खृष्ट की प्रथम या द्वितीय शताब्दी के प्रारम्भ में पञ्जाब का शासन करते थे। इस स्थिति में भास यदि तृतीय शताब्दी के कवि माने जाएँ तो कालिदास उनसे परवर्ती कवि माने जाएँगे।

दूसरी बात बाणभट्ट की रचनाओं से पता चलता है कि वे हर्षवर्द्धन के सभा-पण्डित थे। हर्षवर्द्धन सातवीं शताब्दी के मध्यभाग में राज्य करते थे एवञ्च बाणभट्ट ने कालिदास की प्रशंसा में 'निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु' ऐसा लिखा है जिससे सिद्ध होता है कि कालिदास सातवीं शताब्दी के पूर्व विद्यमान थे।

"सविजयतां रविकीर्तिः कविताऽऽश्रितकालिदासभारविकीर्तिः" द्वितीय पुलकेशी के इस प्रस्तरलेख से सिद्ध होता है कि कालिदास द्वितीय पुलकेशी जो ६३४ खृष्टाब्द का माना जाता है, के पूर्व विद्यमान थे। इस तरह कालिदास ६३४ खृष्टाब्द से पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं।

वत्सभट्टि नाम के कवि ने प्राचीन दशपुर आधुनिक मन्दसोर नाम के स्थान के सूर्यमन्दिर के प्रशस्ति की रचना की है। जिस प्रशस्ति पर मालव संवत् ५२९ का उल्लेख है। पूर्वोक्त लेख की भाषा और शैली में कालिदास की भाषा और शैली की समानता पायी जाती है। इससे सिद्ध होता है कि कालिदास मालव सं० ५२९ से पूर्व विद्यमान थे।

प्रो० साहेब ने पूर्वोक्त प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध करना चाहा है कि कालिदास तृतीय शताब्दी से पीछे एवं पाँचवीं शताब्दी के पूर्व विद्यमान थे। एवञ्च यह सिद्ध होता है कि कालिदास गुप्त वंश के राजाओं के राज्यकाल में विद्यमान थे। इनकी आनन्दपूर्ण शान्तिप्रदायिनी काव्यधारा उसी सौभाग्य समय में प्रवाहित हुई थी। एवञ्च पूर्वोक्त पद्य में 'चन्द्र' शब्द के आधार पर इनके आश्रयदाता चन्द्रगुप्त द्वितीय को मान लिया जाता है, जिसका राज्यकाल ४१४

तक था। इस प्रकार सिद्ध हुआ कि महाकवि कालिदास द्वितीय चन्द्रगुप्त के समय में उत्पन्न हुए थे।

परन्तु पाश्चात्य विद्वानों के इस मत का यदि ठीक से विवेचन किया जाए तो उनका कथन मात्र काल्पनिक सिद्ध होगा, सत्य नहीं। जिसका विचार हम आगे करेंगे।

तीसरा मत है छठी शताब्दी अर्थात् विश्वविख्यात ज्यौतिषी वराहमिहिर का समय। इस मत को मानने वाले प्रमुख पाश्चात्य विद्वान् हैं–प्रो० मैक्स-मूलर, डॉ० भण्डारकर, प्रो. कर्न एवं डॉ. भाऊदा जी। इन लोगों का आधार भारतीय जनश्रुति है।

कालिदास के ग्रन्थों के टीकाकार मल्लिनाथजी ने मेघदूत की टीका में कालिदास को महाराज विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से एक माना है–पूर्वोक्त विद्वान् ने इसी पर निर्भर होकर इनको छठी शताब्दी का मान लिया है। क्योंकि कालिदास जिन नवरत्नों में एक थे उन्हीं में ज्योतिष के उद्भट् विद्वान् वराहमिहिर भी एक रत्न थे। ब्रह्मगुप्त के खण्डनखाद्य की टीका में अमरराज लिखते हैं—

'नवाधिक–पञ्चशतसंख्याके वराहमिहिराचार्यो दिवं गतः'।

नवाधिक पञ्चाशत का अर्थ ५०९ होगा।

इस उक्ति के आधार पर वराहमिहिर की मृत्यु ५८७ खृष्टाब्द मानी जा सकती है। इस तरह कालिदास भी छठीं शताब्दी के सिद्ध होते हैं। आचार्य दिङ्नाग और धर्मकीर्ति असङ्ग के छात्र थे। असङ्ग ५४१ खृष्टाब्द में विद्यमान थे।

स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं
दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान्।

इस श्लोक की टीका में मल्लिनाथ ने दिङ्नाग एवं निचुल शब्द को श्लिष्ट माना है। दिङ्नागाचार्य वसबन्धु के भी छात्र थे। उसी समय उज्जयिनी में 'विक्रमादित्य' नामक राजा राज्य करते थे। कालिदास उन्हीं के सभा-रत्न थे, यह बात प्रमाणित होती है परन्तु यह मत भी निःसार ही प्रतीत होता है।

अब हम कालिदास को प्रथम शताब्दी का सिद्ध करने से पहले पूर्वकथित मतों का संक्षेप में विवेचन कर वास्तविकता की ओर बढ़ें।

गुप्तकाल में ही संस्कृतविद्या का पुनर्जागरण हुआ यह नहीं कहा जा सकता है क्योंकि यह सर्वसम्मत मत नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि संस्कृत

विद्या का चरमोत्कर्ष विक्रमादित्य और राजा भोज के समय में हुआ और उसे ही संस्कृत का स्वर्णयुग कहा जा सकता है। जिन विद्वानों ने 'चीनांशुकमिव-' यहाँ प्रयुक्त 'चीन' शब्द को देशपरक मानकर तात्कालिक सभ्यता का आदान-प्रदान आदि की कल्पना की है वह भ्रम मात्र है सत्य नहीं। क्योंकि 'चीन' शब्द का मेदिनी कोश के 'चीनो देशांऽशुकव्रीहिभेदे तन्तौ मृगान्तरे' इस पंक्ति के अनुसार 'रेशमी' वस्त्र भी अर्थ है। और यही अर्थ शाकुन्तल के उक्त स्थल के उपयुक्त भी है। 'चीनांशुक' में चीन (देश) का अंशुक (कपड़ा) ऐसा षष्ठी तत्पुरुष समास न मानकर 'चीनं च तदंशुकम्' ऐसा कर्मधारय मानने से उपर्युक्त रेशमीवस्त्र वाला मत पुष्ट हो जाता है। एवञ्च इन्दुमती स्वयंवर में सर्वप्रथम मगधेश्वर की प्रशंसा करवाने के कारण कालिदास यदि मगध के राजाओं के आश्रित मान लिये जायें तो, उनकी जन्मभूमि के विषय में अनेक तरह के प्रश्न उत्पन्न हो सकते हैं। जैसे मेघदूत में अलकापुरी की अत्यधिक प्रशंसा करने से वे अलकापुरी के कोई यक्ष मान लिये जायें एवञ्च कुमारसंभव में हिमालय की पर्याप्त प्रशंसा करने के कारण वे कोई हिमालयवासी किन्नर मान लिये जाएँ, रघुवंश में रघु और अज की अत्यधिक प्रशंसा करवाने के कारण उन्हें अयोध्यावासी मान लिया जाए, शाकुन्तल में शकुन्तला प्रस्थान के समय आचार को देखकर उन्हें मिथिलावासी ही न क्यों मान लिया जाए इस प्रकार बहुतेरे प्रश्न हो सकते हैं। अतः विद्वानों का उक्त आधार भी बालू की भीति ही है।

इसी तरह 'ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः' इस श्लोकांश एवं 'गुप्तमूल प्रयत्नतः' इत्यादि स्थलों को आधार मान कर यह कहना कि कालिदास ने अपने आश्रयदाता गुप्त वंशज राजाओं का एवं 'चन्द्र' पद से 'द्वितीय चन्द्रगुप्त' का निर्देश किया है तो यह कहना भी युक्तिमूलक नहीं प्रतीत होता क्योंकि जब कवि सर्वतन्त्रस्वतन्त्र होता है एवं उन्हें यदि अपने आश्रयदाता का संकेत ही करना था तो स्पष्ट रूप से कह सकते थे। कुमारसंभव की रचना चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त के जन्मोत्सव पर की गयी यह भी कोरी कल्पना है, इसमें सत्यता नहीं क्योंकि इसमें कोई प्रबल प्रमाण नहीं है।

इसी प्रकार महाकवि कालिदास ने अश्वघोष का अनुकरण किया इस लिए वे अश्वघोष के परवर्ती हैं, यह भी नहीं कह सकते।

महाकवि कालिदास की रचना कवित्वप्रदर्शन मात्र के लिए अर्थात् 'कला कला के लिए' थी, जब कि अश्वघोष की रचना अध्यात्ममार्ग से अन्यमनस्क लोगों का ध्यान काव्य के माध्यम से अध्यात्म की ओर आकृष्ट करना था। जैसा कि उन्होंने सौन्दरनन्द में स्पष्ट रूप से लिख भी दिया है।

'इत्येषा व्युपशान्तये न रतये मोक्षाऽर्थगर्भा कृति:
श्रोतॄणां ग्रहणाऽर्थमन्यमनसां काव्योपचारात्कृता। इत्यादि

अत: रचना की समता को लेकर किसी महाकवि की रचना को मौलिक और किसी की रचना को अनुकृतिमूलक कहना साहसमात्र है। वैसे यदि कहा जाय कि अश्वघोष ने ही कालिदास का अनुकरण किया तो युक्तियुक्त भी हो सकता है। जैसे—

अपने नगर में अपने पिता द्वारा अवरुद्ध सिद्धार्थ का वन-विहार के लिए निकलने पर नगर-स्त्रियों की उत्सुकता उतनी नहीं रही होगी जितनी कि कुमारसंभव में औषधिप्रस्थ में वरयात्रा के प्रसङ्ग में शिवजी या इन्दुमती स्वयंवर के अनन्तर अज की यात्रा में उसे देखने के लिए स्त्रियों की उत्सुकता अपूर्व रही होगी, अत: महाकवि ने जो स्त्रियों के औत्सुक्य का वर्णन किया है वह स्वाभाविक है अत: मौलिक एवं मनोरम है। अश्वघोष को तो अनुकृतिमूलक है।

कालिदास ने अश्वघोष का अनुकरण नहीं किया इसमें एक युक्ति यह भी है कि अनुकरण आदर्श का; उत्तम का किया जाता है जो स्वयं अपूर्ण है उसका कोई भला क्या अनुकरण करेगा ? अश्वघोष की भाषा-शैली अपरिमार्जित है च्युति—संस्कृति दोषग्रस्त और साथ ही उतना हृदयावर्जक भी नहीं जितनी कि महाकवि कालिदास की। कालिदास की शैली परिमार्जित, सरस एवं मनोरम है।

साथ ही महाकवि कालिदास कितने निरभिमानी थे इस बात को मैंने प्रारम्भ में ही लिख दिया है। ये अपने से प्राचीन प्रतिष्ठित कवियों का यशोगान करने में थोड़ा भी नहीं हिचकिचाते और न अपनी प्रतिष्ठा भङ्ग ही मानते थे। अत: उन्होंने मालविकाग्निमित्र में लिखा है कि—

'भास-सौमिल्लककविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवे: कालिदासस्य कृतौ कथं बहुमानं' इत्यादि। यदि कालिदास महाकवि अश्वघोष का अनुकरण किये होते तो उपर्युक्त पंक्ति में क्या उनका नामोल्लेख नहीं करते ? अवश्य

करते। और भी 'चोरी' चोरी की तरह की जाती है। महाकवि कालिदास यदि अश्वघोष का अनुकरण किये होते तो वे यह साहस कभी नहीं कर सकते थे कि एक ही भाव को अपने दो महाकाव्यों (कुमारसंभव और रघुवंश) में उल्लेख करते। अतः इस आधार पर उन्हें चौथी शताब्दी के शेष भाग से पाँचवीं शताब्दी के पूर्वार्ध का मानना कल्पनामात्र है।

प्रो० मैक्समूलर का यह कहना कि संस्कृत विद्या का चरमोत्कर्ष छठी शताब्दी से हुआ और उस समय कालिदास विद्यमान थे, फर्गुसन के कथन पर आधारित है। फर्गुसन का कहना है कि "खृष्ट के ५० वर्ष पूर्व विक्रमादित्य नाम का कोई राजा था ही नहीं, अतः कालिदास प्रथम शताब्दी के नहीं माने जा सकते। अपितु, उज्जयिनी के महाराज विक्रमादित्य ने ५४४ ई० सन् में भारत से शकों को भगाकर उस विजयोपलक्ष्य में ६०० वर्ष पूर्व अपना संवत्सर स्थापित किया और उसी समय कालिदास उत्पन्न हुए।"

परन्तु फर्गुसन के इस मत का खण्डन प्रो० फ्लीट और हर्नेल ने महाकवि कालिदास के ज्योतिर्विदाभरण नामक ग्रन्थ के इस श्लोक—

धन्वन्तरिक्षपणकाऽमरसिंहशङ्कु-वेतालभट्टघटखर्पर-कालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥

को आधार मानकर किया है। कुछ यूरोपीय विद्वान् ज्योतिर्विदाभरण ग्रन्थ को महाकवि कालिदास की कृति नहीं मानते हैं। उनका कहना है कि ज्योतिर्विदाभरण ग्रन्थ में वर्णित ग्रहादि की दशा से यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित होता है कि पन्द्रहवीं शताब्दी के पश्चात् किसी नवीन विद्वान् ने इसका निर्माण किया है और कालिदास के नाम से प्रचारित कर दिया है। 'अस्तु' ज्योतिर्विदाभरण ग्रन्थ भले ही कालिदास विरचित न हो परन्तु यह तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि कालिदास विक्रम के नवरत्नों में एक थे। अब रही बात खृष्ट के ५० वर्ष पूर्व विक्रमादित्य नामक राजा के रहने और न रहने की, तो इस पर यदि विचार किया जाय तो यह भी सिद्ध हो जाता है कि खृष्ट के ५० वर्ष पूर्व विक्रम थे।

डॉ० राजबली पाण्डेय ने अपने "विक्रमादित्य" नामक ग्रन्थ में पर्याप्त प्रमाणों से सिद्ध कर दिया है कि खृष्ट से ५७ वर्ष पूर्व विक्रम नामक राजा थे। यूरोपीय विद्वान् ने जो चन्द्रगुप्त (द्वितीय) को ही उज्जयिनी के महाराज विक्रमादित्य मानकर यह लिखा है कि 'उसी ने ५४४ ई० सन् में शकों को भारत

से भगाया और ६०० साल पहले का संवत्सर चलाया' बिलकुल निराधार एवं बेतुका लगता है। यदि उसे अपने नाम से ही संवत्सर चलाना था तो ६०० साल पहले से क्यों चलाता ? साथ ही यूरोपीय विद्वानों ने अपने उक्त कथन में कोई प्रमाण भी नहीं दिया है। अतः यह भी मत अनादरणीय ही है।

अब हम भारतीय विद्वानों के सम्मत प्रथम शताब्दी वाले मत का उल्लेख करने जा रहे हैं।

भारत की बहुप्रचलित जनश्रुति के आधार पर मालवनरेश विक्रम संवत्सर के प्रवर्तक जो खृष्ट से ५७ वर्ष पूर्व हुए थे उन "विक्रमादित्य" की सभा के नवरत्नों में कालिदास भी एक रत्न थे।

महाकविकालिदास गुप्तवंश के राजाओं के आश्रित नहीं थे अपितु खृष्ट से पूर्व प्रथम शताब्दी के विक्रमादित्य के आश्रित थे, निम्नलिखित प्रमाणों से सिद्ध हो जाता है।

जे० के० सुब्रह्मण्यम् ने कालिदास के मालविकाग्निमित्र नाटक से जो सूक्ष्म प्रमाण प्रस्तुत किये हैं वह महत्त्वपूर्ण हैं। उनका कथन है कि—महाकवि ने अपनी नवीन रचना के विषय में यह लिखा है कि—

"पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चाऽपि काव्यं नवमित्यवद्यम्।"

इत्यादि। यहाँ प्रयुक्त "पुराण" पद श्लिष्ट है। महाकवि ने पुराण शब्द के द्वारा "पुराणख्यातवृत्त" का संकेत किया है। अर्थात् प्राचीन कवियों ने जो प्राचीन (रामायण, महाभारत आदि) ख्यातवृत्तों का आश्रयण लेकर अपने काव्यों की रचना की है उसका मैंने (कालिदास ने) उल्लंघन किया है, इसलिए वह उपेक्ष्य नहीं है, काव्य-मर्मज्ञजन उसकी परीक्षा करके इस बात का निर्णय कर सकते हैं। वस्तुतः महाकवि ने उक्त नियम का उल्लङ्घन किया है। मालविकाग्निमित्र के भरतवाक्य—

"आशास्यमीतिविगमप्रभृतिप्रजानां
संपत्स्यते न खलु गोप्तरि नाऽग्निमित्रे ॥"

में प्रयुक्त "गोप्तरि, अग्निमित्रे" पद की सप्तमी को भावलक्षणा मानकर उस समय "अग्निमित्र" जीवित थे यह सिद्ध होता है। अग्निमित्र पुष्यमित्रशुङ्ग के पुत्र थे। इनका समय खृष्ट से पूर्व प्रथम शताब्दी माना गया है।

महाकवि की रचनाओं के अवलोकन से यह बात (प्रथम शताब्दी की) और भी प्रमाणित हो जाती है। शुङ्गवंश के राजाओं के समय चोरी जैसे अपराधों

में मनु, वशिष्ठ और आपस्तम्ब ऋषियों की स्मृतियों के आधार पर मृत्युदण्ड का विधान था। जैसा कि 'अँगूठी की चोरी में पकड़े गये मल्लाह को प्राण-दण्ड दिया जाता है।' अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक में कालिदास ने ऐसा अभिनीत करवाया है। परन्तु गुप्तकाल में वैसा कठोर दण्ड—चोरी जैसे अपराध के लिए नहीं था। उस समय याज्ञवल्क्य-स्मृति की मान्यता थी। और भी, कालिदास ने अपने नाटकों में मृतपति के धन का दायभाग विधवा को नहीं दिया जाता है वह राज-कोष की चीज है, ऐसा वर्णित किया है जो कि मनु, वशिष्ठ, बौधायन और आपस्तम्ब स्मृतिसम्मत है। परन्तु याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार विधवा को उसके मृतपति के धन का दायभाग मिलता है—ऐसी व्यवस्था गुप्तकाल में थी। इससे सिद्ध होता है कि कालिदास शुङ्गवंश के राजाओं के समय में थे न कि गुप्तवंश के राजाओं के समय।

कालिदास अपने आश्रयदाता का स्पष्ट संकेत अपनी रचना में ही करते हैं। जैसे कि शाकुन्तल के प्रारम्भ में सूत्रधार नटी से कहता है 'आर्ये! रस-भावदीक्षागुरोर्विक्रमादित्यस्याऽभिरूपभूयिष्ठा परिषत्। अस्यां च कालिदास-ग्रथितवस्तुना नवेनाऽभिज्ञानशाकुन्तलनामधेयेन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः'। पूर्वकाल में आजकल के समान उपाधि के तौर पर नाम का प्रयोग नहीं किया जाता था अतः उक्त वाक्य में प्रयुक्त 'विक्रमादित्य' का अर्थ—

मालवनरेश खृष्ट के पूर्व प्रथम शताब्दी में विद्यमान संवत्सर-प्रवर्तक विक्रमादित्य' ही है, न कि चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य' उपाधिधारी।

महाकवि को प्रथम शताब्दी ई० पू० सिद्ध करने में उनके द्वारा प्रयुक्त शब्द भी प्रमाण है। उन्होंने कुमारसंभव के तृतीय सर्ग में एक श्लोक में लिखा है—'त्रियम्बकं संयमिनं ददर्श'

यहाँ पाणिनि व्याकरण के नियम से लोक में 'त्र्यम्बक' प्रयोग ही साधु है और उसी का प्रयोग होना चाहिए था। परन्तु उक्त प्रयोग होने के कारण यह सिद्ध होता है कि कालिदास के समय पाणिनि व्याकरण पूर्ण रूप से लोक में प्रचलित नहीं हो पाया था। इसी तरह उन्होंने 'पातयामास' का जहाँ प्रयोग उचित था वहाँ 'पातयाम्' का पृथक् और 'आस' का पृथक् प्रयोग किया है, जैसे—'तं पातयां प्रथममास पपात पश्चात्'। (रघुवंश, ९ ६१) इत्यादि।

इसी प्रकार जहाँ-जहाँ महाकवि ने प्राकृत का प्रयोग किया वहाँ-वहाँ मागधी प्राकृत का ही–जिसका उल्लेख ईसा के पूर्व में प्राप्त होता है।

इस तरह हम निश्चयपूर्वक यह कह सकते हैं कि 'महाकवि कालिदास खृष्ट के पूर्व प्रथम शताब्दी में हुए थे न कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय।'

महाकवि की जन्मभूमि

जन्मसमय की तरह इनकी जन्मभूमि भी विवादास्पद ही है। भिन्न-भिन्न प्रदेश के विद्वान् इन्हें अपने-अपने यहाँ का सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। कश्मीर प्रदेश के विद्वानों का कहना है कि कालिदास ने अपनी रचनाओं में कई बार 'प्रत्यभिज्ञान' शब्द का प्रयोग कर कश्मीर के 'प्रत्यभिज्ञान-शैव सम्प्रदाय' की ओर संकेत किया है; एवं इन्होंने हिमालय का तथा उसमें होने वाले पदार्थों का बहुत ही बारीकी से वर्णन किया है एवं केशर-पुष्प का भी वर्णन किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि कालिदास कश्मीर के रहने वाले थे। बंगाल के विद्वान् इन्हें बंगाल का सिद्ध करते हैं। उनका तर्क कालिदास के नाम पर आधारित है। काली की उपासना बंग देश में अधिक है और कालिदास काली (देवी) के उपासक थे जैसा कि उनके नाम से ही प्रतीत होता है, अतः वे बंगकवि थे ऐसा उनका कहना है। मैथिलों का कहना है कि महाकवि मिथिला के थे। वे लोग महाकवि के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के चतुर्थ अंक में दर्शायी गई परिपाटी को आधार मानकर उन्हें मैथिल कहते हैं। साथ ही मिथिला के प्रत्येक परिवार में काली-देवी का एक विशेष घर बनाया जाता है जो काली की प्रबल उपासना का द्योतक है, अतः काली के उपासक कालिदास मिथिला के थे, ऐसा सिद्ध करते हैं। वे लोग वर्तमान 'उच्चैठ' गाँव में वर्तमान काली की मूर्ति को ही कालिदास की उपास्या मानते हैं। कई लोग इन्हें मालवा का भी मानते हैं। 'अस्तु'—भारत की भिन्न-भिन्न भूमि इसे अपना पुत्र कहने को उत्सुक हैं; कहती है, परन्तु यह निराला-बच्चा कभी नहीं कहता कि मेरी माँ (जन्मभूमि) कौन है। केवल वह अपने धात्री (पालन-पोषण करने वाली) का निर्देश करता है। उज्जयिनीनरेश महाराज विक्रमादित्य की सभा में इनका जीवन निर्वाह हुआ और इनकी रचना में उज्जयिनी के प्रति इनका विशेष अनुराग देखकर (मेघदूत में) हम यह निश्चय करते हैं कि महाकवि की जन्मभूमि भी उज्जयिनी ही रही होगी।

कालिदास की काव्यकला

कालिदास की रचनाएँ साहित्य जगत् में अपनी शानी नहीं रखतीं। भाव; कल्पना, आदर्श और भाषा की आधार-शिला पर साहित्यकला की जो सुन्दर अट्टालिका का निर्माण महाकवि ने किया है वह दूसरी जगह देखने को नहीं मिलती। कला की आलोचनात्मक अग्नि-परीक्षा में भी इनकी रचनाएँ इतनी खरी, ज्योत्स्नामयी और उत्कृष्ट निकलती हैं कि विश्व की आँखें चकाचौंध में पड़ जाती हैं। इनकी रचनाओं में वाच्य अर्थ की अपेक्षा व्यङ्ग्य अर्थ की प्रधानता पायी जाती है जिसके कारण इनके काव्यों को ध्वनिप्रधान माना गया है—उत्तम माना गया है। काव्यप्रकाशकार मम्मट उत्तमकाव्य का लक्षण लिखते हैं—"इदमुत्तममतिशायिनि व्यङ्ग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः।"

(काव्यप्रकाश, १-४)

इनकी रचनाओं का भाव-तत्त्व जिसे साहित्य में रस या काव्य की आत्मा कहा जाता है, कल्पना के विविध उड़ान एवं उदात्त आदर्शों से समन्वित होकर इतना परिपक्व हो जाता है कि सर्वश्रेष्ठ कहलाने लगता है। कालिदास प्रकृति के पक्के पुजारी हैं। परन्तु इनकी प्रकृति जड़ नहीं, अपितु संवेदनशील है, सजीव है। इनकी रचनाओं में क्या तो बड़ा-से-बड़ा पर्वत और क्या तो छोटा-से-छोटा पुष्प सभी अपना-अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखते हैं और संवेदनशील हैं। यदि ऐसा न होता तो रघुवंश में दिलीप का जयकार पेड़-पौधे भला किस तरह कर सकते? शकुन्तला की विदाई पर लताएँ पाण्डुपत्र छोड़कर अपने आँसू कैसे गिराने लगतीं? कालिदास ने यद्यपि बाह्य-प्रकृति के भी वर्णन में मानव प्रकृति की तरह अन्तरतम स्तर तक घुसकर निश्चित दृष्टि रखी हैं, पर उन्होंने प्रकृति के कोमल, कान्त एवं मधुर पहलू का ही वर्णन किया है—भीषण या भद्दे का नहीं।

कालिदास की शैली साहित्यजगत् में अपना अनुपम स्थान रखती है। इनकी शैली के कारण ही इन्हें विश्व-वन्द्य कवि माना गया है। भद्दा-से-भद्दा या नीरस-से-नीरस कथानक क्यों न हो ये अपनी कल्पना के द्वारा उसका ऐसा मार्मिक एवं चमत्कृति-पूर्ण वर्णन करेंगे कि हृदय आनन्द-सागर में डूबने-सा लगता है। इनकी शैली वैदर्भी है, जिसका लक्षण विश्वनाथ ने लिखा है—

माधुर्य-व्यञ्जकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते॥ (साहित्यदर्पण)

उपर्युक्त सभी बातें कालिदास की रचनाओं में दृष्टिगत होती हैं। ऐसी ललित, परिष्कृत एवं प्रसादगुण-सम्पन्न रचना अन्यत्र दुर्लभ है।

कालिदास की रचना में अलङ्कार का भी दर्शन होता है। ये अलङ्कार आनुषङ्गिक हैं, कालिदास ने इन्हें जबरदस्ती लादने का प्रयास नहीं किया है। उनका तो कहना है— "किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाऽकृतीनाम्"। इन्हें तो उपमा का आचार्य ही माना गया है। कहा भी है 'उपमा कालिदासस्य' इति। परन्तु उपमा के अतिरिक्त उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, रूपक, निदर्शना, अर्थान्तरन्यास, स्वभावोक्ति अलङ्कारों की भी कमी इनकी कविता·कामिनी को नहीं है।

संक्षेप में उनकी काव्य-कला की छटा देखें। क्या ही स्वाभाविक एवं मनोरम युक्ति है उनकी—

अवचितबलिपुष्पवेदिसम्मार्गदक्षा ।
नियमविधिजलानां बर्हिषाञ्चोपनेत्री ॥

वे सौन्दर्य के कवि तो हैं ही, साथ ही साथ उनमें सत्यम् शिवम् की भी गरिमा भरी पड़ी है। सौन्दर्य को सत्यता की कसौटी में परख कर उससे शिवत्व का सन्देश देना कवि के लिए बाएँ हाथ का खेल लगता है। वे कहते हैं—

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः ।
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः ॥
त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ता ।
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसन्त्यः ॥

स्वभाव-चित्रण में भी वे उतने ही सिद्धहस्त हैं। उनका प्रत्येक पात्र अपने स्वाभाविक क्षेत्र से ही गुजरता है और कल्पना में भी वह अयथार्थता को नहीं छूता। इतना होने पर भी वे शिष्टता को कभी नहीं छोड़ते। पार्वती के सौन्दर्य-वर्णन में वे कहते हैं।

असम्भृतं मण्डनमङ्गयष्टेरनासवाख्यं करणं मदस्य ।
कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्रं बाल्यात्परं साऽथ वयः प्रपेदे ॥

वे मर्यादा का कुछ-कुछ उल्लङ्घन भी करते हैं तो इतनी चतुराई के साथ कि पाठक को उसका गन्ध तक नहीं आता। पार्वती के विवाह के प्रसङ्ग में उनकी सखी के द्वारा किया गया परिहास इसका उदाहरण है—

पत्युः शिरश्चन्द्रकलामनेन स्पृशेति सख्या: परिहासपूर्वम् ।
सा रञ्जयित्वा चरणौ कृताशीर्माल्येन तां निर्वचनं जघान ॥

यहाँ कितना गूढ़ एवं शिष्ट परिहास है । यह देखने लायक है । इसी तरह अन्तर्जगत् और बाह्यजगत् का चरम समन्वय महाकवि की रचनाओं में पाया जाता है । शब्दों को सजाना उनको बहुत रुचिकर है । वे उपमा के एकमात्र सिद्ध कवि माने जाते हैं । उनकी उपमाछटा सहृदयों को मोह लेती है ।

प्रभामहत्या शिखयेव दीपस्त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्गः ।
संस्कारवत्येव गिरा मनीषी तया स पूतश्च पवित्रितश्च ॥
सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा ।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपाल: ॥

उपमा के साथ यमक भी उनका प्रिय अलङ्कार है । रघुवंश में वसन्त वर्णन में इसकी छटा देखने को मिलती है ।

अनुभवन्नवदोलमृतोत्सवं पटुरपि प्रियकण्ठजिघृक्षया ।
अनयदासनरज्जुपरिग्रहे भुजलता जलतामबलाजन: ।।
कुसुमजन्म ततो नवपल्लवास्तदनुषट्पदकोकिलकूजितम् ।
इति यथाक्रममाविरभून्मधुर्द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम् ॥

वस्तुस्थिति का वर्णन तो उनका कहना ही क्या ? वे जो भी वस्तु छूते हैं उसमें स्वाभाविकता एवं सौन्दर्य का समावेश करते हैं । देखिए—

त्यजत मानमलं वत विग्रहैः न पुनरेति गतं चतुरं वय: ।
परभृताभिरितीव निवेदिते स्मरमते रमते स्म वधूजन: ॥

मृगया के सम्बन्ध में उन्होंने इस तरह कहा है—

परिचयचललक्ष्यनिपातने भयरुषोश्च तदिङ्गितवेदनम् ।
श्रमजयात्प्रगुणाञ्च करोत्यसौ तनुमतोऽनुमत: सचिवैर्ययौ ॥

कालिदास वैदर्भीरीति के कवि हैं यद्यपि उनकी रचनाओं में अन्य रीतियों का भी अच्छा खासा प्रयोग है ।

तथा समक्षं दहता मनोभवं पिनाकिना भग्नमनोरथा सती ।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता ॥

उनकी रचनाओं में प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है । जैसे—

सा हंसमाला शरदीव गङ्गां महौषधिं रत्न इवात्मभासः ।
स्थिरोपदेशामुपदेशकाले प्रपेदिरे प्राक्तनजन्मविद्याः ॥

कवि को शृङ्गार एवं वीर रस बहुत प्रिय है यद्यपि उनकी रचनाओं में अन्य रसों का भी समावेश कम नहीं है। शृङ्गार रस जैसे शाकुन्तल में—

स्निग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत्प्रेरयन्त्या तया।
यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं विलासादिव॥

वैसे तो कालिदास की सभी रचनाओं में उदात्त शृङ्गार है ही।

कालिदास की रचनाओं में अर्थान्तिरन्यास, स्वभावोक्ति, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलङ्कारों का प्रशस्त प्रयोग पाया जाता है। स्वभावोक्ति की छटा देखिए—

शरीरमात्रेण नरेन्द्र तिष्ठन्नाभासि तीर्थप्रतिपादितार्द्धिः।
आरण्यकोपात्तफलप्रसूतिस्तम्बेन नीवार इवावशिष्टः॥

एक वनवासी के द्वारा यह कहना कितना सुहावना लगता है।

कालिदास अभिधा के कवि तो कहे जाते हैं लेकिन इससे यह नहीं समझना चाहिए कि उनकी रचनाओं में ध्वनि तत्त्व है ही नहीं। इनमें पर्याप्त ध्वनि है अतः इनका काव्य उत्तम काव्य में आता है।

इनकी रचनाओं में भावपक्ष और कलापक्ष का बहुत अच्छा समन्वय दिखाई पड़ता है। वे आर्य-संस्कृति के एक सफल उद्घोषक थे परन्तु उनकी रचनाओं में यही नहीं, अपितु विश्वजनीनता ही अधिकतर झलकती है। यही उनकी उच्चता का परिचय है कि वे विश्वजनीन कवि थे और हरेक दृष्टिकोण उनकी आँखों से ओझल नहीं था। दर्शन, संस्कृति, आध्यात्मिकता, सौन्दर्य आदि विविध विषयों पर उनका उदात्त विचार उनकी रचनाओं में मिलता है। इतना सब-कुछ होने पर भी आत्मश्लाघा इनमें जरा-सी भी नहीं थी। वे कहते हैं—

मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवाऽस्ति मे गतिः।

इसका अर्थ यह नहीं कि वे प्राचीनता के अन्धभक्त थे। वे तो सही अर्थ में सुधारक भी थे। उनका कहना था—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूर्खं परप्रत्ययनेव बुद्धिः॥

कुछ आलोचक कालिदास के कवित्व में यह आरोप लगाते हैं कि वे समस्या तो उभारते हैं लेकिन समाधान प्रस्तुत नहीं करते। यह उन आलोचकों

की अल्पदृष्टिता से और कुछ नहीं। कालिदास की रचनाओं में सर्वत्र समस्या के साथ समाधान भी दिये हुए हैं। जरूरत है उनको समझ पाने की दृष्टि का। मानव के मन में उठ सकने वाले भावों की चिरन्तनता एवं ऊहापोह को वे इस प्रकार वर्णन करते हैं—

क्व कार्यं शशलक्षण: क्व च कुलं भूयोऽपि दृश्येत सा
दोषाणां प्रशमाय न: श्रुतमहो कोपेऽपि कान्तं मुखम्।
किं वक्ष्यन्त्यकल्मषा: कृतधिय: स्वप्नेऽपि सा दुर्लभा
चेत: स्वास्थ्यमुपैहि का खलु युवा धन्योऽधरं पास्यति ।।

यह श्रेय कालिदास को ही जाता है कि संस्कृत-साहित्य विश्वसाहित्य में उच्चतम स्थान पाया हुआ है।

कालिदास की कृतियाँ

वैसे तो कालिदास की रचनाएँ बहुत-सी हैं। जैसे—ऋतुसंहार, कुमारसंभव, रघुवंश, मेघदूत, श्रुतबोध (छन्दोग्रन्थ) शृङ्गारतिलक, नलोदय, नवरत्नमाला, घटकर्परकाव्य, पुष्पबाणविलास, चिद्गमनचन्द्रिका, ज्योतिर्विदाभरण (ज्योतिषग्रन्थ), कुन्तेश्वरदौत्य, अम्बास्तव, कल्याणस्तव, कालीस्तोत्र, काव्यनाटकालङ्कार; गङ्गाष्टक, चण्डिकादण्डक स्तोत्र, चर्चास्तव, दुर्घटकाव्य, मकरन्दस्तव, मङ्गलाष्टक, महापद्याष्टक, रत्नकोश, राक्षसकाव्य, लक्ष्मीस्तव, लघुस्तव, विद्वद्विनोदकाव्य, वृन्दावनकाव्य, वैद्यमनोरमा, शुद्धचन्द्रिका, शृङ्गाररसाष्टक, शृङ्गारसार काव्य, श्यामलादण्डक, सेतुबन्ध, मालविकाऽग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय एवं अभिज्ञानशाकुन्तल आदि। परन्तु रचनाशैली की विभिन्नता के कारण आलोचकों ने इनमें से कुछ को ही सर्वसम्मत से कालिदास की कृति माना है। सर्वसम्मत से जो रचनाएँ कालिदास की मानी जा चुकी हैं वे हैं— (१) ऋतुसंहार, (२) कुमारसंभव, (३) रघुवंश, (४) मालविकाऽग्निमित्र, (५) विक्रमोर्वशीय, (६) अभिज्ञानशाकुन्तल तथा मेघदूत।

अब हम इन प्रसिद्ध कृतियों के सम्बन्ध में संक्षिप्त परिचय देते हैं—

(१) ऋतुसंहार :—प्रस्तुत रचना कालिदास की प्राथमिक मानी जाती है क्योंकि इसमें वैसी प्रौढि नहीं पायी जाती जैसी कवि की अन्य कृतियों में

दृष्टिगोचर होती है। इसमें आये पद्य अन्यत्र कहीं लक्षणादिग्रन्थों में उदाहरण के तौर पर नहीं पाये जाते और मल्लिनाथ ने इस पर टीका भी नहीं लिखी है इसीलिए पहले कुछ विद्वान् इसको महाकवि की रचना नहीं मानते थे, परन्तु कतिपय सूक्ष्म प्रमाणों के मिलने पर पुन: इसे उनकी कृति मान लिया गया है। इसमें ग्रीष्म से लेकर वसन्त तक के षट् ऋतुओं का वड़ा ही मनोरम चित्रण छ: सर्गों में किया गया है। इसमें १४४ पद्य हैं।

(२) **कुमारसंभव** :—१७ सर्गों का यह महाकाव्य महाकवि की दूसरी रचना मानी जाती है। इसमें कार्तिकेय का जन्म एवं उनके चरित्र का वर्णन ही प्रधान विषय है। इसमें प्रथम सर्ग से लेकर सप्तम सर्ग तक क्रमश: हिमालय पर्वत का वर्णन एवं पार्वती का जन्म, तारकासुर की उच्छृङ्खलता, उसके वध के लिए शिवजी के औरस पुत्र हेतु तपस्या में लीन शिवजी के तपोभङ्ग के लिए देवताओं के द्वारा कामदेव को शिवजी के पास भेजना, उनके तृतीय नेत्र से उत्पन्न अग्नि के द्वारा कामदाह, काम की पत्नी रति का विलाप, रति को सान्त्वना देना, पार्वती की तपश्चर्या और उनका शिवजी से विवाह वर्णित है। अष्टम सर्ग में शिव और पार्वती के काम-केलि का वर्णन है। महामहोपाध्याय मल्लिनाथजी की टीका यहीं तक उपलब्ध है, अर्वाचीन विद्वान् इसीलिए नवम सर्ग से लेकर अन्त तक के सर्गो की शैली में कालिदास की शैली से भिन्नता होने के कारण भी 'अष्टम' सर्ग तक को ही कालिदास की रचना मानते हैं। परन्तु यह महाकाव्य है और उसका लक्षण है कि 'सर्गाऽष्टाधिका इह' अर्थात् महाकाव्यों को आठ सर्गों से अधिक होना चाहिए। साथ ही आठ सर्ग तक केवल कामकेलि का वर्णन है जो कार्तिकेय के जन्म की भूमिका मात्र है। यदि इसे आठ सर्गों का ही माना जाये तो 'कुमारसंभव' यह नाम भी युक्ति-संगत नहीं हो पायेगा। अत: इसे कालिदास की ही रचना मान लीजिए, या आठ सर्गों तक की रचना महाकवि ने की और नवम से सत्रहवें सर्ग तक की किसी परवर्ती कवि ने की होगी, ऐसा मानना चाहिए।

(३) **रघुवंश** :–१९ सर्गो का यह महाकाव्य है। इसमें दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक के सूर्यवंश के राजाओं के चरित्र का वर्णन बड़े ही प्रौढ़ एवं मनोरम ढंग से किया गया है। भारतीय संस्कृति का लोकोत्तर चित्रण इसमें

है। किंवदन्ती है कि इसके पञ्चम सर्ग में सरस्वती का बीजमन्त्र है एवं इस सर्ग के अन्तिम १३ श्लोकों की रचना स्वयं सरस्वती ने की है। कान्तासम्मित उपदेश का यह अनूठा उदाहरण है।

(४) मालविकाग्निमित्र :—पाँच अङ्क का यह रूपक, रूपकरचना में महाकवि की प्रथम कृति है। इसमें तात्कालिक विदिशाधिप राजा अग्निमित्र एवं मालविका के उत्कृष्ट प्रेम का वर्णन बड़े ही मर्मस्पर्शी ढंग से किया गया है।

(५) विक्रमोर्वशीय :—यह पाँच अङ्कों का त्रोटक है। इसमें महाभारत की कथा के आधार पर पुरूरवा और उर्वशी के प्रेम का वर्णन है। इसमें विप्रलम्भ शृङ्गार का मनोरम ढंग से वर्णन कर 'न विना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टिमश्नुते' वाले सिद्धान्त को महाकवि ने और भी पुष्ट किया है। महाकवि ने अपने आश्रयदाता का संकेत इसके नामकरण से किया है।

(६) अभिज्ञानशाकुन्तल :—यह संस्कृत साहित्य में ही नहीं अपितु विश्वसाहित्य में अद्वितीय नाटक है। इसमें सात अङ्क हैं। इसमें महाभारत के कथानक के आधारपर चन्द्रवंशी महाराज दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रेम का वर्णन है। कहा जाता है कि विश्वसाहित्य में कालिदास अद्वितीय हैं और उनकी रचनाओं में शाकुन्तल उत्कृष्ट है और इसमें भी चौथा अङ्क उत्कृष्ट है और उस अङ्क में निम्नलिखित चौथा श्लोक हृदयस्पर्शी है, जो वास्तविक है और सहृदय-संवेद्य है। जैसे—

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संश्लिष्टमुत्कण्ठया
कण्ठस्तम्भित–बाष्प–वृत्ति–कलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमपि स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनया विश्लेषदुखैर्नवैः॥

अर्थात् (कण्व कह रहे हैं) आज शकुन्तला (अपने पति-गृह) चली जायगी यह सोचकर ही उत्कण्ठा के कारण मेरा हृदय भरा-सा जा रहा है, गला रुँधा-सा जा रहा है और आँसुओं से परिप्लुत आँखों से देखा नहीं जाता। स्नेह के कारण (धर्मपुत्री के लिए) यदि मुझ जैसे वनवासी को भी इतनी विकलता है तो फिर भला जो गृहस्थ अपनी औरस पुत्री को विदा करता होगा उसे कितना कष्ट होता होगा। संभवतः कालिदास की ऐसी ही रचना को देखकर पाश्चात्य कवि गेटे ने कहा था—

वासन्तं कुसुमं फलं च युगपद्ग्रीष्मस्य सर्वं च यद् ।
यच्चान्यन्मनसो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम् ॥
एकीभूतमभूतपूर्वमथवा स्वर्लोकभूलोकयो-
रैश्वर्यं यदि वाञ्छसि प्रियसखे ! शाकुन्तलं सेव्यताम् ॥

इसमें कालिदास ने आर्यनारी के पातिव्रत्य को विरहाग्नि में तपाकर कुन्दन-सा चमकाकर उसकी महत्ता का चूडान्त निदर्शन किया है ।

मेघदूत

काव्य दो प्रकार का होता है—(१) महाकाव्य, (२) खण्डकाव्य । महाकाव्य एक विस्तृत-प्रबंधकाव्य होता है, जैसे रघुवंश, कुमारसंभव आदि । खण्डकाव्य, इसमें पूर्ण जीवन वृत्तान्त नहीं होता अपितु जीवन के एक भाग का वर्णन होता है। प्रकृति में मेघदूत वैसा ही एक खण्डकाव्य है इसे लोग 'गीतिकाव्य' भी कहते हैं ।

यह संस्कृत साहित्य के गीतिकाव्यों में सर्वप्रथम गिना जाने वाला है । कला का चरमपरिपाक, कल्पना की ऊँची उड़ान, परिष्कृत मधुरिमामयी सरस भाषा, विषय की अक्षुण्णगति एवं छन्द की एकतानता का जो समन्वय कालिदास की इस कृति में पाया जाता है वैसा संसार में अन्यत्र मिलना दुर्लभ क्या असंभव ही है । इसका वर्ण्य विषय अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। इसमें दो भाग हैं, पूर्व एवं उत्तर ।

कोई यक्ष अपनी नवोढा प्रिया के प्रणयपाश में उलझकर अपने कर्त्तव्य में प्रमाद कर जाता है, अतः स्वामी कुबेर के कोप का भाजन ही नहीं शाप का पात्र भी बन जाता है। इस तरह वह यक्ष प्रभु कुबेर के शाप से अपनी भूमि अलकापुरी से निर्वासित होकर एक वर्ष के लिए रामगिरि-पर्वत पर रहता है । पूर्वमेघ में इसी यक्ष की करुण कहानी है ।

पूर्वमेघ :—अपनी प्राणेश्वरी के विरह में कृश, कामुक वह यक्ष आषाढ़ मास के प्रारम्भ में मेघ को देखकर जड़-चेतन के विवेक से शून्य-सा होकर उससे अपनी प्रिया के पास संदेश ले जाने के लिए कहता है । पहले मेघ की प्रशंसा करता है, अलकापुरी जाने के लिए उसे रास्ते में कहाँ-कहाँ जाना होगा, इन सबका वर्णन पूर्वमेघ में जिस ढंग से किया है वैसा तो कोई भी कवि

आज तक नहीं कर सका। अलकापुरी के रास्ते में मेघ को कहीं तो भोली-भाली ग्रामीण युवतियों की आनन्दभरी कटाक्षरहित आशान्वित आँखें पीयेंगी तो कहीं वह अपने गर्जन से आकाश में उड़ती बलाकाओं को गिनती हुई सिद्धवनिताओं को डराकर उनके द्वारा अपने प्रियों का आलिङ्गन करवाकर उनके धन्यवाद का पात्र बनेगा। आगे वह उज्जयिनी में महाकालेश्वर का दर्शन करेगा एवं अपनी विद्युत् के द्वारा अभिसारिकाओं को केवल मार्ग ही दिखायेगा—गरजकर उन्हें डरायेगा नहीं। इसके बाद ज्ञातास्वाद रसिक की तरह वह मेघ विवृत-जघना नायिका के समान गम्भीरा नदी का रसास्वाद करेगा। इस प्रकार वह ब्रह्मावर्त, क्रौंचपर्वत आदि मार्गों का अतिक्रमण कर अलका में पहुँचेगा।

उत्तरमेघ :—मेघ उस अलका में पहुँचेगा जहाँ की लड़कियाँ रत्नों को धूल में छिपा-छिपाकर आँखमिचौनी खेला करती हैं, जहाँ की कामिनियाँ अपने को विवस्त्रा होती देखकर लज्जा से चूर्णमुष्टियों से मणिदीपों को बुझाना तो चाहती हैं पर बुझा नहीं पातीं और जहाँ के राजमार्ग प्रातःकाल अभिसारिकाओं के कानों से गिरे कनक-कमल धागे के टूट जाने से बिखरी हुई मालाएँ और पैरों से कुचले हुए मन्दार पुष्पों के द्वारा उनके अभिसरण की सूचना देते हैं। तदनन्तर यक्ष, मेघ से अपने निवास स्थान का सरस एवं विलासपूर्ण वर्णन करता है तथा तन्वी अपनी प्रिया की जो स्त्रियों के सम्बन्ध में विधाता की सर्वप्रथम सृष्टि है विरहविदग्ध क्लान्तदशा का बड़ा ही हृदयस्पर्शी वर्णन करता है। अन्त में यक्ष मेघ से अपनी प्रिया के लिए वह सन्देश कहता है जिससे सहृदयों का हृदय करुणा एवं आनन्द के अपारसागर में निमग्न हो जाता है, जिसमें कालिदास ने अपने प्रेमी की भावना को भर दिया है।

मेघदूत का उद्गम

कालिदास की कृतियों के प्रसिद्ध टीकाकार महामहोपाध्याय मल्लिनाथजी ने मेघदूत का उपजीव्य रामायण माना है 'सीतां प्रति रामस्य हनुमत्सन्देशं मनसि निधाय मेघदूत संदेशं कविः कृतवानित्याहुः' अर्थात् कालिदास ने वाल्मीकि-रामायण में भगवान् रामचन्द्र ने सीताजी के लिए हनूमान् को जो संदेश दिया था उसी को मन में रखकर 'मेघदूत' इस गीतिकाव्य की रचना

की। मेघदूत में आये 'जनकतनया–स्नान–पुण्योदकेषु' 'रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु' 'दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः' एवं 'इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा' इत्यादि पद्यांश महामहोपाध्याय की शक्ति को और प्रबल बनाते हैं। मेघदूत के कथानक का उद्गम संभवतः ब्रह्मवैवर्तपुराण का वह स्थल है जहाँ 'भगवान् श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से 'आषाढ कृष्ण पक्ष की 'योगिनी' नामक एकादशी के माहात्म्य को कहा है।' माहात्म्य इस प्रकार है—

'अलकाऽधिपतिर्नाम्ना कुबेरः शिवपूजकः।
तस्यासीत् पुष्पबटुको हेममालीति नामतः॥
तस्य पत्नी सुरूपाऽऽसीद्विशालाक्षीति नामतः।
स तस्यां स्नेहसंयुक्तः कामपाशवशंगतः॥
मानसात् पुष्पनिचयमानीय स्वगृहे स्थितः
पत्नीप्रेमसमायुक्तो न कुबेरालयं गतः॥
कुबेरो देवसदने करोति शिवपूजनम्।
मध्याह्नसमये राजन् पुष्पाणि प्रसमीक्षते॥
हेममाली स्वभवने रमते कान्तया सह।
यक्षराट् प्रत्युवाचाऽथ कालाऽतिक्रमकोपितः॥
'कस्मान्नायाति भो यक्षा, हेममाली दुरात्मवान्।
निश्चयः क्रियतामस्य' प्रत्युवाच पुनः पुनः॥

यक्षा ऊचुः

'वनिता कामुको गेहे रमते स्वेच्छया नृप'।
तेषां वाक्यं समाकर्ण्य कुबेरः कोपपूरितः॥
आह्वयामास तं तूर्णं बटुकं हेममालिनम्।
ज्ञात्वा कालाऽत्ययं सोऽपि भयव्याकुललोचनः॥
आजगाम नमस्कृत्य कुबेरस्याऽग्रतः स्थितः।
तं दृष्ट्वा धनदः क्रुद्धः कोपसंरक्तलोचनः॥
प्रत्युवाच रुषाविष्टः कोपाद्विस्फुरिताऽधरः।

कुबेर उवाच

रे पाप! दुष्ट! दुर्वृत्त! कृतवान्देवहेलनम्॥
अतो भव श्वित्रयुक्तो वियुक्तः कान्तया सह।

अस्मात्स्थानादपध्वस्तो गच्छस्यानमथाऽधमम् ॥
इत्युक्ते वचने तेन तस्मात् स्थानात् पपात सः ।

अर्थात् "अलका के स्वामी यक्षराज कुबेर शिवजी के भक्त थे। वे प्रतिदिन भगवान् शिव की पूजा करते थे। पूजा के लिए फूल तोड़कर लाने वाला कुबेर का अनुचर 'हेममाली' नाम का था। उसकी पत्नी अत्यन्त सुन्दर रूप वाली 'विशालाक्षी' नाम की थी। एक दिन हेममाली मानसरोवर से फूल तोड़कर कुबेर के यहाँ न पहुँचाकर अपने घर ही अपनी प्रिया के पास रह गया। उधर दोपहर में शिवजी की पूजा पर बैठे कुबेर फूल की प्रतीक्षा कर रहे थे। समय के बीत जाने पर क्रुद्ध होकर उन्होंने दूसरे सेवकों से जब पूछा कि 'हेममाली क्यों नहीं आया, पता लगाओ ?' तो यक्षों ने कहा कि 'वह अपने घर अपनी प्रिया के साथ विहार कर रहा है'। इसे सुनकर कुबेर आग-बबूला हो गये और तुरन्त यक्ष को बुलवाया। यक्ष ने भी कुबेर की बुलाहट जब सुनी तब उसे अपना कार्य स्मरण आया फिर क्या ? डर के मारे वह थरथराता हुआ कुबेर के सामने प्रणाम कर एवं हाथ जोड़कर खड़ा हुआ। तब कुबेर ने यह कहकर कि तुमने जिस प्रिया के प्रणय-पाश में आबद्ध होकर देवता का निरादर किया है, उस प्रिया से एक वर्ष के लिए वियुक्त हो जाओ एवं हमारे इस अलकापुरी से गिर कर नीचे के लोक में जाओ।' कुबेर के ऐसा शाप देने पर वह यक्ष वहाँ से गिर पड़ा। मेघदूत के कथानक का मूल तो यह है ऐसा कहा जा सकता है। परन्तु कालिदास ने अपनी कल्पना-प्रसूत सृष्टि-नैपुण्य से जो कलेवर इसे प्रदान किया है उसके कारण कवि की यह कृति मौलिक हो गयी है, यह कहने से हम नहीं चूक सकते।

मेघदूत का वैशिष्टच—कल्पना का विविध विलास, भावों की कोमल व्यञ्जना तथा माधुर्य के सतत प्रवाह का अनुपम समन्वय होने के कारण मेघदूत ने, महाकवि को, जो प्रतिष्ठा रघुवंश एवं कुमारसंभव से मिली, उसमें चार-चाँद लगा दिया। मेघदूत वस्तुतः विरह-पीड़ित मानव का सम्पूर्ण अन्तर्जगत् आशा हो या निराशा, हर्ष हो या विषाद सब भावों को हमारे सामने खड़ा कर देता है। मेघदूत के प्रतिश्लोक के हर एक शब्द में विरह-पीड़ित हृदय की कसक और सूक्ष्म धड़कन सुनाई देती है। कवि ने उसके उपयुक्त मन्दाक्रान्ता छन्द का भी उपयोग किया है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने—

'निसृष्टार्थो मितार्थश्च तथा सन्देशहारकः ।
कार्यप्रेष्यस्त्रिधा दूतो दूत्यश्चापि तथाविधाः ।।" (३-५८)

यह लिखकर दूत के तीन भेद माने हैं—(१) निसृष्टार्थ, (२) मितार्थ, (३) सन्देशहारक । अब हम तीनों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं ।

(१) निसृष्टार्थ—विश्वनाथ ने इसके सम्बन्ध में लिखा है—

"उभयोर्भावमुन्नीय स्वयं वदति चोत्तरम् ।
सुश्लिष्टं कुरुते कार्यं निसृष्टार्थस्तु स स्मृतः ।।"

अर्थात् निसृष्टार्थ दूत वह है जो दोनों—(३-५९) पक्षों (जिसने भेजा एवं जिसके पास भेजा) के भावों को जानकर स्वयं संन्देश कहे और पूछे जाने पर वैसा ही उपयुक्त उत्तर भी दे और कार्य को सफल करे ।

(२) मितार्थ—'मितार्थभासी कार्यस्य सिद्धकारी मितार्थकः' (साहित्य दर्पण, ३-६०) अर्थात्-जो दूत कम बोलकर कार्य सिद्ध कर दे उसे मितार्थ-भाषी कहते हैं ।

(३) सन्देशहारक—'सन्देशहारक' वह दूत है जो भेजने वाले व्यक्ति के द्वारा जितना ही कहा जाय उसी वाक्य को वह वहाँ कहे । जैसा कि विश्वनाथ लिखते हैं—

'यावद्भाषितसन्देशहारः सन्देशहारकः' ।। (सा० द०, ३-७०)

वाल्मीकि-रामायण में राम के सन्देश को सीता के पास पहुँचाने वाले श्री हनुमान् जी 'निसृष्टार्थ' दूत हैं, इसी प्रकार श्रीमद्भागवत में रुक्मिणी के संदेश को भगवान् श्रीकृष्ण के पास पहुँचाने वाले ब्राह्मण भी निसृष्टार्थ दूत हैं । अभिज्ञान शाकुन्तल का 'मिश्रकेशी' मितार्थदूती है । मालतीमाधव में नन्दन से भेजा गया पुरुष 'सन्देशहारक' दूत है ।

प्रकृत प्रबन्ध में महाकवि ने मेघ का ऐसा चित्रण किया है कि वह उपर्युक्त तीनों दूतों में से किसी में भी अन्तर्भूत नहीं हो सकता । क्योंकि सन्देश पहुँचाने वाले दूत के लिए चाहे वह जिस श्रेणी का दूत हो चेतन होना आवश्यक है । अन्यथा वह वक्ता के भाव को कैसे समझ सकता है । प्रस्तुत काव्य का दूत तो 'धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः' है । परन्तु यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि साधारण व्यक्ति प्रायः (सन्देशहारक) अभिधावृत्ति से अपने अभिप्राय का प्रतिपादन कर अपना पिंड छुड़ा लेता है, वहाँ मध्यम प्रतिभा

वाला (मितार्थ) 'लक्षणावृत्ति' के द्वारा अपने भावों को लक्षित कराकर कार्यनिष्पन्न करता है। परन्तु अद्‌भुत प्रतिभा सम्पन्न परिपक्व विचारवाला (निसृष्टार्थ) दूत, लक्षणा से भी ऊपर उठकर व्यञ्जना वृत्ति के द्वारा अपने वक्तव्य को अभिव्यक्त करता है।

प्रकृत में महाकवि कालिदास ध्वनिकवि हैं। व्यङ्‌ग्यप्रधानवाक्य ही 'ध्वनि' कहलाता है। महाकवि ने इसीलिए प्रस्तुत रचना मे व्यञ्जनावृत्ति के द्वारा संदेश अभिव्यक्त कराकर अपनी अद्‌भुत कल्पना का चमत्कार दिखलाया है।

मेघदूत की अमरवाणी

(१) 'मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्तिचेतः
कण्ठाऽऽश्लेष–प्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे' ? [१–३]

(२) 'कामार्ता हि प्रकृति-कृपणाश्चेतनाऽचेतनेषु। [१–५]

(३) 'याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाऽधमे लब्धकामा। [१–६]

(४) 'आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यःपाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगे रुणद्धि'। [१–१०]

(५) 'न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृताऽपेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः'। [१–१७]

(६) 'रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय'। [१–२०]

(७) 'स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु'। [१–२८]

(८) 'मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेताऽर्थकृत्या'। [१–३८]

(९) 'ज्ञाताऽऽस्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः'। [१–४१]

(१०) 'आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम्। [१–५३]

(११) 'के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलाऽऽरम्भयत्नाः'। [१–५४]

(१२) 'सूर्याऽपाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम्'। [२–१९]

(१३) 'प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्राऽन्तरात्मा'। [२–३२]

(१४) 'कान्तोदान्तः सुहृदुपगतः सङ्गमात्किञ्चिदूनः'। [२–३९]

(१५) 'कस्याऽत्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा।
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण' । [२–४८]

(१६) स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति'। [२–५१]

(१७) प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सिताऽर्थ-क्रियैव। [२–५३]

आभार

रचना में उन व्यक्तियों के प्रति जिनसे लेखक लाभान्वित होता है लेख के माध्यम से आभार प्रदर्शन एक प्रथा है जिसका मैं निर्वाह कर रहा हूँ नहीं तो परम पूज्य गुरुवर पं० श्री कीर्त्यानन्द झा जी (न्याय प्रवक्ता का० हि० वि० वि०) के लिए भी मेरे पास कोई ऐसा शब्द हो सकेगा जिसके माध्यम से उनका आभार व्यक्त कर सकूँ ? सच्ची कृतज्ञता तो हृदय से होती हैं। मेघदूत की इस इन्दुकलाटीका में जो कुछ भी लिख सका हूँ वह सब पूज्य गुरुजी के कारण ही। अतः श्री चरण में शतकोटि प्रणाम करता हुआ आशा करता हूँ कि आगे भी इसी प्रकार आपके वात्सल्य की सुखद छाया हमें मिलती रहेगी।

अग्रज रूप पं० श्री हरेकान्त जी मिश्र का भी मैं परम आभारी हूँ जिनके सुन्दर पथ-प्रदर्शन के कारण ही मैं इस टीका को पूर्ण कर सका हूँ। सतीर्थ्य श्री वौआनन्द जी झा एवं श्री राधारमण ठाकुर जी का भी उपकृत हूँ। अतः हृदय से आभारी हूँ। एवं जिनके वस्तुतत्त्वनिर्देशन एवं सदुत्साहवर्द्धन के कारण ही यह टीका सम्पूर्ण हो सकी और जिनके अमोघ आशीर्वाद का मैं आजीवन अभिलाषी हूँ उन पूज्य गुरुचरण पं० श्री रतिनाथ झा (रीडर का० हि० वि० वि०) के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन के अतिरिक्त मैं क्या निवेदन कर सकता हूँ ?

अन्त में प्रकाशक महोदय का भी आभारी हूँ जिनके सदुत्साहपूर्ण प्रेरणा के कारण ही, मैं सरस्वती की इस उपासना में लग सका हूँ। यद्यपि मेघदूत की अन्य बहुत-सी टीकाएँ उपलब्ध हैं परन्तु मैंने अपनी इस टीका में उन सब अभावों की पूर्ति का प्रयास किया है जिनका अन्य टीकाओं में अभाव रहा है या कठिनाई रही है। टीका के शब्द प्रायः सरल हैं, अतः यदि इसके माध्यम से छात्र-गण थोड़ा भी लाभान्वित हो सकेंगे तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा। इस टीका में कतिपय अन्य टीका एवं ऐतिहासिक ग्रंथों की सहायता मुझे लेनी पड़ी है, अतः उन सब के प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ।

प्रकाशन की भूल से या मेरे मतिभ्रम से यदि टीका में किसी प्रकार की त्रुटि रह गई हो तो—इस रीति से क्षमा करेंगे।

'गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः,
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ॥

ग्राम—अलपुरा, पो०—रतुपाड़ (ताजपुर)
अनु०—झंझारपुर, जि०—मधुबनी (बिहार)

विनीत
—वैद्यनाथ झा

श्लोकानुक्रमणिका

पूर्वमेघः

उत्तरमेघ:

॥ श्रीः ॥

मेघदूतम्

'इन्दुकला' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

अथ पूर्वमेघः

कश्चित् कान्ता-विरहगुरुणा स्वाधिकारात् प्रमत्तः
शापेनास्तङ्गमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः ।
यक्षश्चक्रे जनक-तनया-स्नान-पुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥ १ ॥

अन्वयः—स्वाधिकारात् प्रमत्तः कान्ताविरहगुरुणा वर्षभोग्येण भर्तुः शापेन अस्तङ्गमितमहिमा कश्चित् यक्षः जनक-तनया-स्नानपुण्योदकेषु स्निग्धच्छाया-तरुषु रामगिर्याश्रमेषु वसतिं चक्रे ।

व्याख्या—स्वाधिकारात् = निजकर्तव्यात्, प्रमत्तः = असावधानः, कान्ता-विरहगुरुणा = प्रेयसीवियोगदुःसहेन, वर्षभोग्येण = संवत्सरयाप्येण, भर्तुः = स्वामिनः कुबेरस्येति यावत्, शापेन = दुरेषणया, अस्तङ्गमितमहिमा = अक्षम-महत्त्वः, कश्चित् = अकथ्यनामा, यक्षः = गुह्यकः, जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु = सीतामज्जनपूतजलेषु, स्निग्धच्छायातरुषु = सान्द्रच्छायावृक्षेषु, रामगिर्याश्रमेषु = रामगिरिनामकपर्वताश्रमेषु, वसतिं = वासं, चक्रे = चकार ।

शब्दार्थः—स्वाधिकारात् = अपने कर्तव्य से, प्रमत्तः = असावधान, कान्ता-विरहगुरुणा = प्रेयसी के वियोग से दुःसह, वर्षभोग्येण = (एक) वर्ष तक भोगे जाने वाले, भर्तुः = मालिक (कुबेर) के, शापेन = शापसे, अस्तंगमितमहिमा = जिसकी महिमा मलिन (असमर्थ) बना दी गयी है, यक्षः = गुह्यक "एक

देवयोनिविशेष," जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु=सीता जी के स्नान करने के कारण पवित्र हो गया है जल जहाँ का, स्निग्धच्छायातरुषु=घने छाया वाले वृक्ष हैं जहाँ पर, (ऐसे) रामगिर्याश्रमेषु=रामगिरि नामक पर्वत के आश्रमों में वसतिं=अपना निवास, चक्रे=बनाया।

भावार्थः—स्वकर्तव्ये असावधानः कश्चिदज्ञातनामधेयो यक्षः, स्वामिनः कुबेरस्य प्रियावियोगरूपैकवर्षभोग्यात् शापात्, (तमभिशप्तसमयमतिवाहयितुम्) गहनच्छायायुक्तवृक्षेषु "रामगिरि" पर्वतकुटीरेषु स्वनिवासं कृतवान्।

हिन्दी—अपने कर्तव्य में असावधानी करने वाले, (अत एव) अपनी प्रियतमा के वियोग के कारण दुःसह एवं एक वर्ष तक भोगे जाने वाले स्वामी कुबेर के शाप से असमर्थ महिमावाले, किसी यक्ष ने, "रामगिरि" नामक पर्वत के आश्रमों में अपना निवासस्थान बनाया।

समास:—कान्ताविरहगुरुणा=कान्तायाः विरहः कान्ताविरहः (ष० तत्०) कान्ताविरहेण गुरुः (तृ० तत्०) कान्ताविरहगुरुस्तेत कान्ताविरहगुरुणा। स्वाधिकारात्=स्वस्य अधिकारः स्वाधिकारः (ष० तत्०) अथवा स्वः अधिकारः=स्वाधिकारः (कर्मधारय)। अस्तंगमितमहिमा= अस्तंगमितो महिमा यस्य (बहुव्रीहि) स अस्तंगमितमहिमा। वर्षभोग्येण= वर्षं भोग्यः वर्षभोग्यः, यहाँ पर वर्ष के आगे जो द्वितीया विभक्ति है वह "कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे च" इस सूत्र से विहित है; पश्चात् "अत्यन्तसंयोगे च" इस सूत्र से समास किया गया है। जनकतनयायाः स्नानं=जनकतनयास्नानम् (ष० तत्०) जनकतनयास्नानैः पुण्यानि उदकानि येषु (बहुव्री०) जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु। स्निग्धच्छायातरुषु=स्निग्धा च सा छाया स्निग्धच्छाया (कर्मधारय), यहाँ पर "पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु" इस सूत्र से "स्निग्धा" इस स्त्रीवाचक शब्दको पुंवद्भाव होकर स्निग्ध ऐसा रूप बना; पश्चात् तुगादि करके स्निग्धच्छाया ऐसा प्रयोग बनाया जाता है। स्निग्धच्छाया प्रधानास्तरवो येषु स्निग्धच्छायातरुषु,यहाँ पर "शाकपार्थिवादीनां सिद्धय उत्तरपदलोपश्च" इस वार्तिक से "प्रधान" इस मध्यम पद का लोप कर समास किया गया है।

कोशः—प्रमादोऽनवधानता इत्यमरः। गुरुस्तु गीष्पते श्रेष्ठे गुरौ पितरि दुर्भरे इति शब्दार्णवः। शापाक्रोशौ दुरेषणा इत्यमरः। विद्याधरोऽप्सरोयक्षरक्षो-गन्धर्वकिन्नराः इत्यमरः। वत्सरे वर्षमस्त्रियाम् इत्यमरः। स्निग्धं तु मसृणे सान्द्रे इति शब्दार्णवः। छाया वृक्षो नमेरुः स्यात्।

टिप्पणी—स्वाधिकारात्—अधिक्रियते अस्मिन्निति अधिकारः, यहाँ पर 'अधि' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से अधिकरण में 'हलश्च' (पा० अ० ३।३।१) सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय होकर 'अधिकारः' यह शब्द निष्पन्न हुआ है। 'स्वाधि-कारात्' यहाँ जो पञ्चमी विभक्ति आयी है, वह 'प्रमत्तः' इस पद का योग रहने के कारण 'जुगुप्सा–विराम–प्रमादाऽर्थानामुपसंख्यानम्' इस वार्तिक से अपादान संज्ञा होकर 'अपादाने पञ्चमी' से पंचमी हुई है। **प्रमत्तः**–'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'मद्' धातु से 'क्त' प्रत्यय होकर 'प्रमत्तः' ऐसा रूप बना है। (प्र+मद्+क्त=प्रमत्तः)। **वर्षभोग्येण**–इस पद का विभक्त्यादि विश्लेषण तो समास के सन्दर्भ में ही प्रदर्शित कर दिया गया है, यहाँ पर 'भोग्य' इस पद के साधुत्व पर थोड़ा विचार किया जा रहा है—"भोक्तुं योग्यः' इस विग्रह में पालन और अभ्यवहार (भक्षण) इस अर्थ में स्थित रुधादिगणस्थ 'भुज्' धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' इस से 'यत्' प्रत्यय का विधान करके 'चजोः कुघिण्यतोः' इस सूत्र से जकार को कुत्व गकार होकर गुणादि करके 'भोग्य' ऐसा रूप बनता है। इसी धातु से भक्षण अर्थ में 'भोज्यं भक्ष्ये' इस सूत्र से कुत्व का अभाव विधान करके 'भोज्य' ऐसा रूप बनता है। **भर्त्तुः**–बिभर्ति इति भर्त्ता तस्य भर्त्तुः, धारण और पोषण अर्थ में विद्यमान '(डु) भृञ्' धातु से 'ण्वुलतृचौ' इस सूत्र से कर्त्ता में तृच् प्रत्यय होकर 'भर्तृ' शब्द सिद्ध होता है, उक्त प्रयोग उसी शब्द के षष्ठी एकवचन का है। **शापेन**—शपनं शापः शप्यते इति शापः इन दोनों विग्रहों से आक्रोश अर्थ में विद्यमान 'शप्' धातु से भाव में 'भावे' इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय हुआ है; यहाँ पर 'शाप' शब्द से हेतु में तृतीया विभक्ति 'हेतौ' इस सूत्र से हुई है, क्योंकि यक्ष की महिमा शाप के कारण ही अस्तंगत हुई थी। **अस्तङ्गमितमहिमा**—'अस्तम्' यह मान्त अव्यय है। गमित=गत्यर्थक 'गम्' धातु से 'हेतुमति च' इस सूत्र से 'णिच्' प्रत्यय होकर

'गमि' धातु बना, उससे कृदन्तीय 'क्त' प्रत्यय होकर 'गमितः' ऐसा रूप बनता है (गम् + णिच् + क्त = गमितः) महिमा = महतो भावः इस विग्रह में 'महत्' शब्द मे 'पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा' इस सूत्र से 'इमनिच्' प्रत्यय होकर 'महिमा' यह शब्द बना है। कवि ने 'अस्तङ्गमित-महिमा' यह विशेषण जो यक्ष के साथ लगाया है वह साभिप्राय है, क्योंकि स्वामी के शाप के द्वारा यदि उसकी महिमा असमर्थ न बना दी गयी होती तो वह अणिमा, महिमा आदि अष्ट सिद्धियों के मध्य पाँचवीं सिद्धि 'प्राप्तिः' के द्वारा अथवा अदृश्यरूप होकर स्वयं प्रिया से मिल सकता था; अतः कवि ने मेघदूतत्त्व के निर्वाह के लिए यह विशेषण दिया है। **रामगिर्याश्रमेषु**—यहाँ पर बहुवचनान्त प्रयोग को देख कर यह प्रतीत होता है कि यक्ष अपनी प्रिया के विरह से इतना खिन्न किंवा अव्यवस्थितचित्त हो गया था कि वह स्थिर रूप से किसी एक आश्रम में नहीं रह पाता था, अतः एक आश्रम से दूसरे आश्रम में अपना डेरा बदलता रहता था। वल्लभदेव और मल्लिनाथ के मतानुसार चित्रकूट पर्वत ही रामगिरि है। डा० विलसन के मतानुसार नागपुर से उत्तर रामटेक पर्वत ही रामगिरि है। परन्तु आधुनिक अन्वेषकों का कहना है कि मध्यप्रदेश में जो 'रामगढ़' पर्वत है, जो कि अमरकूट या आम्रकूट के समीप है एवं नर्मदा का उद्गम स्थान है 'रामगिरि' है। यह मत युक्ति युक्त भी प्रतीत होता है, क्योंकि महाकवि ने भी आगे चलकर इन दोनों वस्तुओं की चर्चा की है। **वसति**-निवास अर्थ में स्थित 'वस' धातु से 'वहिवस्यर्तिभ्यश्च' इस औणादिक सूत्र से 'अति' प्रत्यय होने पर 'वसति' रूप बनता है। **चक्रे**-(डुकृञ् = करणे) करण अर्थ में वर्तमान एवं जिसके अन्त में अकार की इत्संज्ञा की गयी है ऐसे 'कृ' धातु से परोक्षभूत 'लिट्' लकार आने पर 'चक्रे' यह रूप बनता है। यहाँ पर क्रिया का फल कर्ता को प्राप्त होने के कारण एवं धातु के 'ञित्' होने के कारण 'स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले' से आत्मनेपद हुआ है। मेघदूत कौन-सा काव्य माना जाय इस प्रकार का प्रश्न उपस्थित होने पर कुछ विद्वानों का कहना है कि 'प्रस्तुत काव्य खण्डकाव्य है,' इस उक्ति की पुष्टि में उनका प्रमाण साहित्यदर्पण की 'खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि यत्'

यह पङ्क्ति है। महाकवि ने "वर्णन के सौष्ठव" को महाकाव्य का प्रयोजक माना है। अतः उनके मतानुयायी विद्वज्जन मेघदूत को महाकाव्य की गणना में रखते हैं। उक्त ग्रन्थ गीतिप्रधान होने के कारण पाश्चात्य विद्वान् मैक्डोनल्ड ने इसे "गीति काव्य" माना है। **मेघदूतः**—"मेघ एव दूतः=मेघदूतः' इस तरह रूपक समास की यदि विवक्षा की जाय तो यह पद पुँल्लिङ्ग एवं अभेद लक्षणया ग्रन्थवाचक बन जायगा। यदि मेघ एव दूतो यस्मिस्तत् मेघदूतम् अर्थात् मेघ ही हो दूत जिसमें इस प्रकार अन्यपद प्रधान बहुव्रीहि समास की विवक्षा की जाय तो यह पद नपुंसक हो जाता है। निर्विघ्नतापूर्वक गन्थ की समाप्ति के लिए ग्रन्थ के आरम्भ में, ग्रन्थ के मध्य में एवं ग्रन्थ के अन्त में "मङ्गल" किया जाता है, ऐसा शिष्टों का अर्थात् आप्त पुरुषों का आचार है। वह मङ्गल तीन प्रकार का होता है, जैसे कि "आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशोऽपि तन्मुखम्"। अर्थात् (१) आशीर्वादात्मक (२) नमस्क्रियात्मक और (३) वस्तु-निर्देशात्मक, इस प्रकार तीन तरह के मंगल होते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ 'क' अक्षर से प्रारम्भ होता है जो कोश के अनुसार वायु, ब्रह्मा और सूर्य का वाचक है (मरुते वेधसि ब्रध्ने) अतः यहाँ भी मंगल किया गया है ऐसा समझना चाहिए। यहाँ वस्तु-निर्देशात्मक मंगल किया गया है। **रस**—प्रस्तुत ग्रन्थ में शृङ्गार रस है। शृंगार रस के दो भेद होते हैं—(१) संयोग और (२) विप्रलम्भ। विप्रलम्भ के भी चार भेद हैं—(१) पूर्वराग (२) मान (३) प्रवास और (४) करुण। यहाँ पर यक्षाधिप के शाप से इस अज्ञात नामा यक्ष को 'प्रवास' मिला है, अतः इस काव्य में प्रवास रूप विप्रलम्भ शृङ्गार है। **कश्चित्**—जिस कविचक्रचूड़ामणि कालिदास के लिए वागधिष्ठात्री देवता वाणी ने स्वयं 'त्वमेवाहं' का सुस्पष्ट उद्घोष किया था, क्या वे अपने ग्रन्थ में उस यक्ष का नाम नहीं लिख सकते थे ? पर उन्होंने नहीं लिखा, इसका क्या कारण ? इस पर विचार करने से यही कहा जा सकता है कि धर्मशास्त्र ने अभिशप्त व्यक्ति का नाम लेने का निषेध किया है। 'भर्तुराज्ञां न कुर्वन्ति ये च विश्वासघातकाः। तेषां नामापि न ग्राह्यं शास्त्रादौ तु विशेषतः॥' इत्यादि। आधुनिक टीकाकार तो इसका हेतु यह प्रस्तुत करते हैं कि काल्पनिक वृत्त वाले काव्यों में नाम बतलाने की जरूरत नहीं थी!

अलंकार—(क)—यहाँ पर शाप के प्रति 'स्वाधिकारात्प्रमत्तः' को हेतु बताया गया है एवञ्च 'अस्तङ्गमितमहिमा' के प्रति शाप को हेतुक बताया गया है अतः यहाँ पदार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

(ख) विशेषण यदि साभिप्राय हो तो 'परिकरांकुर' अलंकार होता है ऐसा आलंकारिकों का सिद्धान्त है। यहाँ 'अस्तङ्गमितमहिमा' रूप विशेषण साभिप्राय है अतः यहाँ पर भी परिकरांकुर अलङ्कार है।

छन्द—'मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैम्भौं नतौ ताद्‌गुरू चेत्'। इस लक्षण के अनुसार मेघदूत में मगण (SSS), भगण (SII), नगण (III), तगण (SSI), तगण (SSI) और दो गुरु (SS) होने से मन्दाक्रान्ता छन्द है। यह छन्द समवृत्त है; इसमें चौथे, छठे एवं सातवें अक्षरों पर यति (विश्राम) होता है। जैसा कि—

कश्चित्का न्ताविर हगुरु णास्वाधि कारात्प्र मत्तः ।।१।।
S S S S I I I I I S S I S S I S S

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबला-- वप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान् कनकवलय--भ्रंशरिक्त--प्रकोष्ठः ।
आषाढस्य प्रथम--दिवसे मेघमाश्लिष्ट--सानुं
वप्रक्रीडा--परिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ।। २ ।।

अन्वयः—तस्मिन् अद्रौ अबला-विप्रयुक्तः कनकवलयभ्रंश-रिक्त-प्रकोष्ठः कामी सः कतिचित् मासान् नीत्वा, आषाढस्य प्रथमदिवसे आश्लिष्टसानुम् वप्रक्रीडा-परिणतगजप्रेक्षणीयम् मेघम् ददर्श।

व्याख्या—तस्मिन्=पूर्वोक्ते, अद्रौ=पर्वते, रामगिरौ इति यावत्, अबलाविप्रयुक्तः=प्रियाविरहितः, कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः=स्वर्णकटक-पातशून्य-कक्षान्तरः, कामी=कामुकः, कतिचित्=कतिपयान्, मासान्=त्रिशद्दिवससमूहात्मक-मासाभिधेयान्, अष्टौमासानित्यर्थः, 'शेषान् मासान् गमय चतुरः' इति सप्तचत्वारिंशत्तमे (४७) श्लोके कथयिष्यति, अतः। नीत्वा=व्यतीत्य, आषाढस्य=

एतन्नामकस्य मासस्य, प्रथमदिवसे=आद्याह्नी, आश्लिष्टसानुम्=समालिङ्गित-शृङ्गम्, वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयम्=उत्खातकेलि-संलग्न–तिर्यग्दन्त–प्रहार-हस्तिविलोकनीयम्। मेघम्=वारिदम्, ददर्श=अवलोकयामास।

शब्दार्थः—तस्मिन्=उस (पहले कहे गये) में, अद्रौ=पर्वत में, अर्थात् रामगिरि में, अबलाविप्रयुक्तः=अपनी प्रिया से बिछुड़ा हुआ, कनकवलय-भ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः=सोने के कङ्कण गिरजाने से सूनी हो गयी है कलाई जिसकी, कामी=विषयविलासी, सः=वह यक्ष, कतिचित्=कुछ (आठ), मासान्=महीनों को, नीत्वा=बिताकर, आषाढस्य=आषाढ़ महीने के, प्रथमदिवसे=पहले दिन, आश्लिष्ट-सानुम्=पहाड़ की चोटी को जकड़े हुए, वप्रकीडा-परिणत-गजप्रेक्षणीयम्=टेढ़े होकर खेल में टीले पर दाँतों से प्रहार करने वाले हाथी के समान देखने योग्य, मेघम्=बादल को, ददर्श=देखा।

भावार्थः—वल्लभावियुक्तः सः कामुको यक्षः, अत्यन्तकार्श्यात् यस्य मणिबन्धतः कनक-कटकोऽपि भ्रष्टः सः पूर्वोक्त-रामगिरौ अष्टौ मासान् व्यतीत्य आषाढस्य प्रारम्भ एव दिने पर्वतशृङ्गसंलग्नं, यस्यां क्रीडायां हस्तिनः तिर्यग्भूय दन्तैः उच्चस्थानेषु प्रहारं कुर्वन्ति (मृत्तिकादिकमुत्खनन्ति) तस्यां क्रीडायां संलग्नं दर्शनीयं हस्तिनमिव मेघं ददर्श।

हिन्दी—अपनी प्राणप्रिया से वियुक्त, (अत एव) दुबले होने के कारण स्वर्णकङ्कण के गिर जाने से शून्य मणिबन्ध वाले कामी उस यक्ष ने, आषाढ़ महीने के पहले ही दिन, पर्वत की चोटी से सटे हुए एवं टीले पर तिरछे होकर दाँतों से प्रहार करने वाली क्रीडा में लगे हुए हाथी की तरह देखने योग्य मेघ को देखा।

समासः—अबलाविप्रयुक्तः=अबलया विप्रयुक्तः अबलाविप्रयुक्तः (तृ० तत्०), कनकस्य वलयः कनकवलयः (ष० तत्०) तस्य भ्रंशेन रिक्त-प्रकोष्ठो यस्य स कनकवलयभ्रंश-रिक्तप्रकोष्ठः (बहुव्रीहि), वप्रक्रीडासु परिणतः=वप्रक्रीडापरिणतः (स० त०), स चासौ गजश्च इति वप्रकीडा-परिणतगजः (कर्मधारय) तद्वत् प्रेक्षणीयम् वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयम् (उपमान कर्मधारय)।

कोश:—स्त्री योषिदबला इत्यमर:। कटकं वलयोऽस्त्रियाम् इत्यमर:। कक्षान्तरं प्रकोष्ठ: स्यात् इति शाश्वत:। तिर्यग्दन्तप्रहारस्तु गज: परिणतो मत: इति हलायुध:। उत्खातकेलि: शृङ्गाद्यैर्वप्रक्रीडा निगद्यते इति शब्दार्णव:। अद्रिगोत्र-गिरि-ग्रावा-चल-शैल-शिलोच्चया: इत्यमर:। अभ्रं मेघो वारिवाह: इत्यमर:।

टिप्पणी—**अबला**=अविद्यमानं बलं यस्या: सा अबला, यहाँ पर "नञो-स्त्यर्थानां वाच्यो वाचोत्तरलोप:" इस वार्तिक से नञ् बहुव्रीहि समास हुआ है। यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिए कि अबला में अपुत्र: की तरह समास न होकर 'अनुदरा कन्या' की तरह समास हुआ है, क्योंकि नञ् का केवल अभाव मात्र ही अर्थ नहीं है अपितु ६ अर्थ हैं—

"तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता।
अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्था: षट् प्रकीर्तिता:॥

इसका अभिप्राय यह है कि नञ् के सादृश्य, अभाव, भिन्नता, अल्पता, अप्रशस्तता और विरोध ये ६ अर्थ हैं। यहाँ अल्प अर्थ में "नञ्" है।

विप्रयुक्त:—(विप्र+युज्+क्त) यद्यपि यहाँ पर योग (सम्बन्ध) अर्थ में विद्यमान "युज्" धातु से "क्त" प्रत्यय होकर उक्तरूप निष्पन्न हुआ है, परन्तु "वि" और "प्र" ये दो उपसर्ग लग जाने से अर्थ बिल्कुल विपरीत हो गया। कहा भी गया है—

"उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहारसंहार-विहार-परिहारवत् ॥

कामी—उक्त पद की निष्पत्ति दो प्रकार से की जा सकती है—

१—'कामयते तच्छील: अस्यास्तीति' इस विग्रह में इच्छार्थक 'कम्' धातु से "सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये" इस सूत्र से "णिनि" प्रत्यय करके "कामिन्" शब्द बनाके—"कामी" की निष्पत्ति हो गयी। २—कमनं काम: इस विग्रह में "कम्" धातु से भाव में "भावे" इस सूत्र से "घञ्" प्रत्यय करके "काम:" बना लेंगे पश्चात् "काम: अस्ति" इस विग्रह में "अत इनिठनौ" इस सूत्र से इनि प्रत्यय करके "कामिन्" शब्द बनायेंगे। यक्ष का यह विशेषण

देकर कवि ने यक्ष के लिए प्रिया-वियोग की असह्यता बताई है। **कतिचित्**–"किम्" शब्द से "किमः संख्या परिमाणे डति च" इस सूत्र से "डति" प्रत्यय करके (किम्+डति) "कति" शब्द बनाके उससे "चित्" अव्यय जोड़कर "कतिचित्" शब्द बनाते हैं। कतिशब्द हमेशा बहुवचन में ही प्रयोग किया जाता है। **आषाढः**—"आषाढा इति नामकेन नक्षत्रेण युक्ता पौर्णमासी" ऐसे विग्रह में, आषाढा इस प्रातिपदिक से "नक्षत्रेण युक्तः कालः" इस सूत्र से अण् प्रत्यय का विधान करते हैं पश्चात् णित् होने के कारण स्त्रीत्व की विवक्षा में "टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः" इस सूत्र से "ङीप्" करके "आषाढी" ऐसा पद बनाते हैं (आषाढा+अण्+ङीप्=आषाढी)। आषाढयस्ति अस्मिन् मासे इस विग्रह में "आषाढी" इस पदसे "साऽस्मिन् पौर्णमासी" इस सूत्र से अण् प्रत्यय करके "आषाढ" ऐसा मास वाचक पद निष्पन्न होता है। **प्रथमदिवसे**–कुछ लोग "प्रत्यासन्ने नभसि" अर्थात् श्रावण महीने के समीप आने पर इस पद के सामञ्जस्य के लिए प्रथमदिवसे के स्थान पर 'प्रशम-दिवसे' अर्थात् आषाढ़ के बीत जाने पर ऐसा पाठ मानते हैं। परन्तु मल्लिनाथ जी ने इसका विरोध किया है और उन्होंने लिखा है कि यहाँ पर श्रावण का सामीप्य विवक्षित है अतः उल्लिखित पाठ ही युक्त है। **वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयम्**—उत्खात-केलिः श्रृङ्गाद्यैः वप्रक्रीडा निगद्यते। इति शब्दार्णवः। अर्थात् जिस खेल में पशु सींग या दाँत इत्यादि से प्रहार कर मिट्टी आदि कुरेदें उसे 'वप्रक्रीडा' कहते हैं। 'तिर्यग्दन्तप्रहारस्तु गजः परिणतो मतः' हलायुध कोश के इस वाक्य के द्वारा तिरछे होकर जो प्रहार करे उस हाथी को 'परिणत' कहते हैं, तब तो 'परिणत' शब्द से ही 'गज' शब्द का बोध हो जाता है पुनः गज पद देना पुनरुक्त दोष है। अतः उसके निवारण के लिए परिणत का अर्थ उक्त हाथी नहीं अपितु सामान्य 'संलग्न' माना जाय और उसका गज के साथ कर्मधारय समास किया जाय तो काम बन जायेगा। वप्रक्रीडायां परिणतः=वप्रक्रीडापरिणतः, स चासौ गजश्च इति वप्रक्रीडापरिणतगजः इति। इस तरह पुनरुक्त दोष का वारण हो जायेगा।

अलंकार—यहाँ पर मेघ की उपमा हाथी से दी गयी है, 'इव' आदि उपमावाचक शब्द का लोप होने से 'लुप्तोपमा' अलंकार है ॥ २ ॥

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतो-
रन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ ।
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथा-वृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूर-संस्थे ॥ ३ ॥

अन्वयः—राजराजस्य अनुचरः अन्तर्बाष्पः (सन्) कौतुकाधानहेतोः तस्य पुरः कथमपि स्थित्वा चिरं दध्यौ मेघालोके सुखिनः अपि चेतः अन्यथावृत्ति भवति कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने दूरसंस्थे (सति) किं पुनः ।

व्याख्या—राजराजस्य=कुबेरस्य, अनुचरः=सेवकः स यक्ष इत्यर्थः, अन्तर्बाष्पः=अवरुद्धाक्षिजलः (सन्); कौतुकाधानहेतोः=उत्कण्ठोत्पत्तिकारणस्य, तस्य=मेघस्य, पुरः=सम्मुखे, कथमपि=येन केनाऽपि प्रकारेण, बहुप्रयासानन्तरमिति भावः । स्थित्वा=आत्मानं स्थिरीकृत्य, चिरं=बहुसमयपर्यन्तम्, दध्यौ=ध्यानं कृतवान्, निजवल्लभां चिन्तयामासेति भावः । स कथं चिरकालं प्रियां दध्यौ इति प्रश्नं कविः स्वयं समाधत्ते मेघालोके=जलदविलोकने, सुखिनः अपि=प्रियापार्श्वस्थस्यापि, चेतः=चित्तम्, अन्यथावृत्ति=विचलितप्राय इव (झङ्कृत इव) भवति=जायते । कण्ठाश्लेषप्रणयिनि=गलाऽऽलिङ्गनाभिलाषिणि, जने=प्रियारूपे जने, दूरसंस्थे=असमीपस्थे (सति), किं पुनः=का वार्ता (विरहिणो जनस्य) ।

शब्दार्थ—राजराजस्य=कुबेर के, अनुचरः=सेवक ने, अन्तर्बाष्पः=आँखों के अन्दर ही अश्रु को रोके हुए, कौतुकाधानहेतोः=उत्कण्ठा होने के कारणीभूत, मेघस्य=मेघके, पुरः=सामने, कथमपि=किसी तरह (बहुत प्रयास करने के बाद), स्थित्वा=बैठकर, चिरम्=बहुत देर तक, दध्यौ=ध्यान किया, अर्थात् अपनी प्रिया का स्मरण किया । उसने प्रिया का स्मरण क्यों किया, उसमें कारण बताते हैं—मेघालाके=बादल के दीख जाने पर, सुखिनः

अपि=सुखी (व्यक्ति) का भी, अर्थात् जो लोग अपनी प्रिया के पास हैं उनका भी, चेतः=चित्त, अन्यथा-वृत्ति और ही तरह का अर्थात् विकृत, भवति= हो जाता है (तो फिर), कण्ठाश्लेषप्रणयिनि=गले लगाने की अभिलाषा वाले व्यक्ति के, या गले लगाने की अभिलाषा वाली प्रिया के, दूरसंस्थे=दूर रहने (पर), किं पुनः=तो फिर क्या कहना ।

भावार्थः—धनाधिपस्य सोऽनुचरः निजोत्कण्ठोत्पादकस्य जलदस्य सम्मुखं बहुप्रयासेन स्थित्वा निजवल्लभां बहुकालपर्यन्तं चिन्तयामास । यतो हि मेघसमालोकनेन प्रियासमीपस्थस्यापि जनस्य चित्तं विकृतं भवति, तस्य जनस्य पुनः का कथा यः खलु प्रिया-गलाश्लेषाभिलाषी वर्तते अथच दूरस्थोऽपीति ।

हिन्दी—कुबेर का वह सेवक (यक्ष), अन्दर ही अन्दर आँसुओं को थामे हुए, उत्कण्ठा पैदा करने वाले उस मेघ के सामने किसी तरह (बहुत प्रयास के बाद) रुककर बहुत देर तक (प्रिया के विषय में) सोचता रहा । क्योंकि बादल के दीखने पर सुखी (प्रिया युक्त) व्यक्ति का भी चित्त विकृत हो जाता है; तो फिर गले मिलने वाली प्रिया के, अथवा गले मिलने वाले व्यक्ति के दूर रहने पर कहना ही क्या ?

समासः—राज्ञां राजा=राजराजः (ष० तत्०) तस्य=राजराजस्य, अन्तःस्तम्भितं बाष्पं यस्य स अंतर्बाष्पः (मध्यमपदलोपी बहुव्रीहि), कौतुकस्य आधानम्=कौतुकाधानम् (ष० तत्०) कौतुकाधानस्य हेतुः तस्य कौतुकाधानहेतोः, मेघस्य आलोकः=मेघालोकः (ष० तत्०), अन्यथा वृत्तिर्यस्य सः अन्यथावृत्तिः (बहुव्रीहि), दूरे संस्था यस्य (बहुव्रीहि) सः दूरसंस्थः तस्मिन् दूरसंस्थे । कण्ठस्य आश्लेषः=कण्ठाश्लेषः (ष० तत्०) तस्य प्रणयी कण्ठाश्लेषप्रणयी (ष० तत्०) तस्मिन् कण्ठाश्लेषप्रणयिनि ।

कोशः—राजराजो धनाधिपः इत्यमरः । अस्रु-नेत्राम्बुरोदनञ्चास्रमश्रु चेत्यमरः । कौतुकं चाभिलाषे स्यादुत्सवे नर्महर्षयोः इति विश्वः । कथमादि तथाप्यन्तं यत्न-गौरव-बाढयोः इत्युज्ज्वलः । चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः इत्यमरः । आलोको दर्शनोद्योतौ इत्यमरः ।

टिप्पणी—राज्ञां राजा=राजराजः (ष० तत्०) यहाँ पर समासप्रयुक्त सुप्लोपादि कार्य हो जाने पर "राजाहःसखिभ्यष्टच्" इस सूत्र से समासान्तटच् प्रत्यय होकर "राजराज" यह प्रातिपदिक बना पश्चात् षष्ठी विभक्ति के आने पर 'राजराजस्य' यह रूप निष्पन्न होगा।

अनुचरः—अनु=पश्चात् चरति (गच्छति) इति अनुचरः, यहाँ पर अनु उपसर्ग पूर्वक गत्यर्थक एवं भक्षणार्थक "चर" धातु से गति अर्थ की विवक्षा में "नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः" इस सूत्र से अच् प्रत्यय हुआ है। **कौतुकम्**—कुतुकमेव कौतुकम्=यहाँ स्वार्थ में 'प्रज्ञादिभ्यश्च' इस सूत्र से अण् प्रत्यय हुआ पश्चात् णित्वात् वृद्धि करके 'कौतुकम्' रूप बनता है। कुतुक+अण्=कौतुकम्। **आधानम्**=आङ् उपसर्ग पूर्वक 'धा' 'धातु' से अधिकरण में ल्युट् प्रत्यय होकर आधानम्, यह बनता है। (आ+धा+अन) **पुरः**=यह अव्यय है। 'पूर्वा' शब्द के स्थान पर 'पूर्वाऽधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम्' इस सूत्र से 'पुर्' आदेश होकर 'असि' प्रत्यय होकर 'पुरः' यह निष्पन्न होता है। **स्थित्वा**=गतिनिवृत्त्यर्थक 'स्था' धातुसे 'क्त्वा' प्रत्यय होकर स्थित्वा यह रूप बनता है। **दध्यौ**=यह चिन्तार्थक 'ध्यै' धातुके लिट् लकार के प्रथमपुरुष एकवचन का रूप है। **आलोकः**=आङ् उपसर्ग पूर्वक दर्शन अर्थ में (कृ) धातु से स्वार्थ में घञ् प्रत्यय हुआ है। (आ+लोक+घञ्) **आश्लेषः**=आश्लेषणम् आश्लेषः=आङ् उपसर्गपूर्वक श्लिषधातु से भाव में 'घञ्' प्रत्यय हुआ है। **प्रणयी**='प्रणयमस्यास्तीति' विग्रह में 'अत इनिठनौ' इस सूत्र से इनि प्रत्यय होकर 'प्रणयी' बना है। **दूरसंस्थे**=संस्थानं संस्था 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'स्था' धातु से भाव में 'आतश्चोपसर्गे' इस सूत्र से 'अङ्' प्रत्यय होकर 'संस्था' यह रूप बनता है।

अलंकार—यहाँ पर बाद के दो चरणों के द्वारा, पहले के चरण में कही गयी 'चिन्ता' का समर्थन किया गया है अतः अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। एवञ्च उत्तरार्ध में 'किं पुनर्दूरसंस्थे' इस पद के द्वारा 'कैमुतिकन्यायेन अर्थापत्ति अलंकार है। इस तरह साहित्य-दर्पण के 'मिथोऽनपेक्षयैतेषां स्थितिः संसृष्टि-रुच्यते।' इस लक्षण के अनुसार यहाँ 'संसृष्टि' अलङ्कार है।

प्रत्यासन्ने नभसि दयिता-जीविता-लम्बनार्थी
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम् ।
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ।। ४ ।।

अन्वयः—सः नभसि प्रत्यासन्ने दयिताजीवितालम्बनार्थी जीमूतेन स्वकुशलमयीं प्रवृत्तिं हारयिष्यन् प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै प्रीतप्रमुख-वचनं स्वागतम् व्याजहार ।

व्याख्या—ध्यानानन्तरं, सः=यक्षः (प्रियाचिन्तकः) नभसि=श्रावणे मासि, प्रत्यासन्ने=बहुनिकटवर्तिनि (सति), दयिताजीवितालम्बनार्थी= प्रियाप्राणधारणाभिलाषी, (सन्) जीमूतेन=मेघेन, स्वकुशलमयीं=निजक्षेम-मुख्याम्; प्रवृत्तिं=वार्ताम्; हारयिष्यन्=वाहयिष्यन्, प्रत्यग्रैः=नवीनैः, कुटजकुसुमैः, वासकसुमनैः, कल्पितार्घाय=विहितानुष्ठानविधये, तस्मै= दूतत्वेन सम्प्रेष्यमानाय जीमूतायेत्यर्थः। प्रीतः=प्रहृष्टः (सन्) प्रीतिप्रमुखवचनम् =स्नेहप्रधानोक्तिम्, यथास्यात्तथा, स्वागतम्=शुभागमनम्, व्याजहार=उवाच, मेघस्य स्वागतञ्चकारेत्यर्थः ।

शब्दार्थः—ध्यान के बाद, सः=उस यक्ष ने, नभसि=श्रावण मास के, प्रत्यासन्ने=अत्यन्त नजदीक आ जाने पर दयिताजीवितालम्बनार्थी=प्रिया के जीवन का अभिलाषी, जीमूतेन=मेघ के द्वारा, स्वकुशलमयीम्=अपने कुशल प्रवृत्तिम्=समाचार को, हारयिष्यन्=भेजने की इच्छा करता हुआ, प्रत्यग्रैः= नवीन, कुटजकुसमैः=पर्वतीय पुष्पविशेष के द्वारा, कल्पितार्घाय=जिसके लिए अर्घ (पूजा की विधि) तैयार की गयी है (ऐसे) मेघाय=मेघ के लिए, प्रीतः=प्रसन्न होकर, प्रीतिप्रमुखवचनं=प्रेमपूर्ण शब्दों में, स्वागतम्= शुभागमन, व्याजहार=कहा ।

भावार्थः—ध्यानं विधाय सः यक्षः श्रावणे मासे समीपे आगते सति प्रियायाः प्राणधारणाभिलाषया मेघेन निजकुशलपूर्णां वार्तां प्रेषणकामः सन् नूतन–गिरि-मल्लिकापुष्पैः तमर्चयित्वा प्रसन्नः सन् प्रेमपूर्णवाणिभिः तस्य स्वागतं चकार ।

हिन्दी—श्रावण महीने के समीप आ जाने पर प्रिया के जीवन धारण को चाहने वाले उस यक्ष ने मेघ के माध्यम से अपना कुशल समाचार भेजने की इच्छा से कुटजपुष्पों के द्वारा मेघ की पूजा करके प्रसन्न होकर प्रेमपूर्ण वाक्यों द्वारा उसका स्वागत किया।

समासः—दयितायाः जीवितं=दयिताजीवितं (ष० तत्०) तस्य आलम्बनं (ष० तत्०)—तस्य अर्थी (ष० तत्०) दयिताजीवितालम्बनार्थी, कुटजस्य कुसुमम् = कुटजकुसमम् (ष० तत्०) तैः; कल्पितः अर्घो यस्मै स कल्पितार्घः (बहुव्रीहि) तस्मै कल्पितार्घाय; प्रीतिप्रमुखानि वचनानि यस्मिन् यथा स्यात्तथा इति प्रीतिप्रमुखवचनम् (बहुव्रीहिः)।

कोशः—नभाः श्रावणिकश्च सः, नभः खं श्रवणे नभा इत्यमरः। भावुकं भविकं भव्यं कुशल इत्यमरः। कुटजः शक्रो वासको गिरिमल्लिका इति हलायुधः। मूल्ये पूजाविधावर्घः इन्यमरः। मुत् प्रीतिः प्रमदो हर्षः इत्यमरः।

टिप्पणी—**प्रत्यासन्ने**—'प्रति' और 'आङ्' उपसर्ग पूर्वक, 'सद्' धातु से कर्ता में क्त प्रत्यय होकर 'प्रत्यासन्न' (प्रति+आ+सद्+क्त) बनता है और 'भाव' में सप्तमी विभक्ति आयी है। **दयिताजीवितालम्बनार्थी**—जीवितम् = प्राणधारण अर्थ में विद्यमान 'जीव' धातु से 'नपुंसके भावे क्तः' इस सूत्र से क्त प्रत्यय लाकर 'जीवितम्' यह रूप बनाया जाता है। **आलम्बनम्**—'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'लबि' धातु से करण में ल्युट् प्रत्यय लाकर 'आलम्बनम्' यह रूप बनता है (आङ्+लबि+अन्)। दयिताजीवितालम्बनमर्थयते तच्छीलः इस विग्रह में 'दयिता-जीवितालम्बन्' उपपदवाले याच्या अर्थ में विद्यमान 'अर्थ' धातु से 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' इस सूत्र से णिनि प्रत्यय हुआ है एवं 'उपपदमतिङ्' इस सूत्र से उपपद समास हुआ है। **जीमूतः**—जीवनस्य मूतः=जीमूतः; यहाँ पर "पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्" इस सूत्र से समास एवं "जीवन" इस पदवर्ती "वन" का लोप करके जीमूत शब्द बना है। जीमूतेन यह प्रयोज्य कर्ता है एवं मेघ प्रयोजक कर्ता है। **स्वकुशलमयीम्**—यहाँ 'स्वकुशल" शब्द से "तत्प्रकृतवचने मयट्" इस सूत्र से 'मयट्' प्रत्यय हुआ है।

पश्चात् स्त्रीत्व की विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्' इत्यादि सूत्र से ङीप् प्रत्यय करके 'स्वकुशलमयी' यह शब्द बना है। **हारयिष्यन्**=हरणार्थक 'हृ' धातु से 'हेतुमति च' से णिच् प्रत्यय करके 'हारि' धातु बना करके पश्चात् 'लृट् शेषे च' इस सूत्र से लृट् लकार लाकर पश्चात् उसके स्थान में 'लृटः सद्वा' इस सूत्र से शतृ प्रत्यय आदेश करके 'हारयिष्यन्' यह रूप साधु होता है। **कुटजकुसुमैः**=यहाँ 'अर्घं' क्रिया के अत्यन्त उपकारक होने के कारण 'साधकतमं करणम्' इस सूत्र से 'कुटजकुसुम' शब्द की करण संज्ञा हुई और 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' से तृतीया विभक्ति आयी है। **प्रीतिः**='प्रीञ्' धातु से 'स्त्रियां क्तिन्' इस सूत्र से क्तिन् प्रत्यय होकर 'प्रीतिः' शब्द बनता है। प्रस्तुत पद्य में कवि यह प्रदर्शित करना चाहते हैं कि यक्षप्रिया अपने प्रिय से वियुक्त है और वर्षा ऋतु आ गयी है, ऐसी अवस्था में अपने प्रिय का कुशल-क्षेम न जानकर कहीं प्राण त्याग न कर ले इसलिए 'यक्ष' अपना कुशल-क्षेम मेघ के द्वारा भेजना चाहता है॥ ४॥

धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः ?
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ?
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतना-चेतनेषु ॥ ५ ॥

अन्वयः—धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः मेघः क्व ? पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः सन्देशार्थाः क्व ? इति औत्सुक्यात् अपरिगणयन् गुह्यकः तं ययाचे हि कामाऽर्ताः चेतनाऽचेतनेषु प्रकृतिकृपणाः।

व्याख्या—धूमज्योतिःसलिलमरुतां=धूमतेजोवारिवायूनाम्, सन्निपातः=समवायः, मेघः=वारिदः, क्व=कुत्र, पटुकरणैः=कार्योपयुक्तेन्द्रियवद्भिः, प्राणिभिः=चेतनैः; प्रापणीयाः=वासनीयाः, सन्देशार्थाः=वाचिकाभिधेयाः, क्व=कुत्र, इति उभयोर्महदन्तरम्, इति=एवमन्तरम्, औत्सुक्यात्=इष्टार्थोद्युक्तत्वात्, अपरिगणयन्=अविवेचयन्, गुह्यकः=यक्षः, तं मेघम्, ययाचे=याचयामास, पूर्वो-

क्तार्थमर्थान्तरन्यासेन प्रदर्शयति कामाऽर्तेति । हि=यतः, कामाऽऽर्ताः=माराऽऽकुलाः, चेतनऽचेतनेषु=सजीव-निर्जीवेषु, प्रकृतिकृपणाः=औत्सर्गिककदर्याः (भवन्ति)। मदनेन व्याकुलीकृतानां कर्तव्याऽकर्तव्यविषयकविवेकशून्यत्वेन अचेतनमपि मेघं प्रति याचना नाऽनुपयुक्ता इति भावः ।

शब्दार्थः—धूमज्योतिःसलिलमरुतां=धुआँ, तेजः, जल और वायु का सन्निपात=मिश्रित समूह, मेघः=बादल, क्व=कहाँ, पटुकरणैः=कार्य में समर्थ इन्द्रिय वाले, प्राणिभिः=प्राणियों के द्वारा, प्रापणीयः=भेजे जाने योग्य, सन्देशार्थाः=सन्देश की बात, क्व=कहाँ, दोनों में महान् अन्तर है, इति=इस अन्तर को, औत्सुक्यात्=उत्सुकता के कारण, अपरिगणयन्=बिना विचार किये गुह्यकः=यक्ष ने, तं=उस मेघ से, ययाचे=याचना की, हि=क्योंकि, कामाऽऽर्ताः= =कामान्ध, चेतनाचेतनेषु=सजीव और निर्जीव वस्तुओं के विषय में, प्रकृतिकृपणाः=स्वाभाविक रूप से दीन, अर्थात् विवेकशून्य हो जाते हैं ।

भावार्थः—धूमाग्निजलमरुतां समवायरूपोऽयमचेतनः जलदः कुत्र ? कार्यसमर्थेन्द्रिययुक्तैश्चेतनैः वाहनीयाः सन्देशवचनाः कुत्र ? इत्युभयोर्मध्ये महदन्तरं वर्तते, तथापि औत्सुक्यादेवमन्तरं यक्षः अविचारयन् 'मत्संदेशं मत्प्रियापार्श्वं नय' इति ययाचे, अर्थान्तरन्यासेन तं द्रढयति यतो हि कामपीडिताः जनाः 'अयं चेतनः अयमचेतनः' इति विवेकशून्याः स्वभावेनैव भवन्ति ।

हिन्दी—धुआँ, अग्नि, जल और वायु के संमिश्रण से बना कहाँ यह अचेतन मेघ ? और अच्छी इन्द्रियों से युक्त प्राणियों के द्वारा पहुँचाये जाने योग्य सन्देश की बातें कहाँ ? दोनों में कितना अन्तर है, फिर भी उत्कण्ठावश यक्ष ने इस अन्तर को बिना विचारे मेघ से सन्देश ले जाने की याचना की, क्योंकि काम से पीडित जन यह चेतन है यह अचेतन है इस प्रकार के विवेक से शून्य स्वाभाविक रूप से हो जाते हैं ।

समासः—धूमश्च ज्योतिश्च सलिलञ्च मरुच्च=धूमज्योतिः-सलिलमरुतः, तेषाम् (द्वन्द्व)। पटूनि करणानि येषां तैः=पटुकरणैः (बहुव्रीहि)। सन्देशा एव अर्थाः=सन्देशार्थाः (कर्मधारय)। कामेन आर्ताः=कामार्ताः (तृ० तत्०)। चेतनाश्च अचेतनाश्च, चेतनाऽचेतनाः (द्वन्द्व) तेषु ।

कोशः—प्राणी तु चेतनो जन्मी जन्तुजन्युशरीरिणः इत्यमरः, करणं साधकतमं क्षेत्रगात्रेन्द्रियेष्वपि इत्यमरः, इष्टार्थोद्युक्त इत्यमरः, सलिलं कमलं जलम् इत्यमरः, यक्षराड्गुह्यकेश्वर इत्यमरः, कामः पञ्चशरः इत्यमरः।

टिप्पणी—सन्निपातः—सम्+नि+पत्+अ=सन्निपातः यहाँ 'सम्' और 'नि' इन उपसर्ग पूर्व गिरने के अर्थ में विद्यमान पत् (ऌ) धातु से भाव में 'घञ्' प्रत्यय होकर सन्निपातः यह रूप बना है। **पटुकरणैः**—क्रियन्त एभिरिति करणानि करण अर्थ में विद्यमान (डु) कृञ् धातु से ल्युट् प्रत्यय होकर करण यह शब्द बना है। पटु विशेषण है। (कृ+अन=करण)। **प्राणी**—प्राणमस्यास्तीति, इस विग्रह में "प्राण" शब्द से "इनि" प्रत्यय हुआ है। **प्रापणीयाः**—प्रापयितुं योग्याः इस विग्रह में 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'आप्' धातु से 'अनीयर्' प्रत्यय करके प्रापणीयाः बनाया जाता है। **संदेशाः**—सम्+दिश+अ='सम्' उपसर्गपूर्वक दिश् धातु से भाव में घञ् प्रत्यय होकर सन्देश यह रूप निष्पन्न होता है। **अपरिगणयन्**—परि+गण+शतृ=परिगणयन् 'परि' उपसर्गपूर्वक गिनने के अर्थ में विद्यमान 'गण' (संस्थाने) धातु के प्रथमा के समानाधिकरण में भी 'लटः शतृशानचावप्रथमा समानाधिकरणे' इस सूत्र से शतृ प्रत्यय हुआ है, क्योंकि यहाँ लट् की अनुवृत्ति पहले से ही आती ही थी पुनः 'लट्' का विधान किया जाने के कारण। परिगणयन् यहाँ 'नञ्' सूत्र से समास हुआ है एवं 'नलोपो 'नञ्' से नकार का लोप हो गया और तदन्तवर्ति अकार बच गया है। **गुह्यकः**—संवरण अर्थ में विद्यमान 'गुह' धातु से 'ण्वुल्तृचौ' इस सूत्र से ण्वुल् प्रत्यय होकर 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्' इस सूत्र से 'यक्' का आगम करके 'गुह्यक' यह रूप बनता है। गूहति धनं रक्षति इति गुह्यकः (गुह+य+अक=गुह्यकः)। यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि अमरकोषकार ने प्रथमकाण्ड के स्वर्गवर्ग में ही गुह्यक एवं यक्ष को अलग-अलग देवयोनि विशेष माना है। जैसे—

'विद्याधराऽप्सरो' 'यक्ष' रक्षोगन्धर्व-किन्नराः।
'पिशाचो' गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमीदेवयोनयः॥

परन्तु कालिदास ने इन दोनों शब्दों को पर्यायवाची माना है; क्योंकि प्रथम श्लोक में उन्होंने 'यक्ष' शब्द का प्रयोग करके पुनः पञ्चम श्लोक में उसी अभिप्राय से 'गुह्यक' शब्द का प्रयोग किया है। इस तरह इन दोनों में मतभेद प्रतीत होता है परन्तु उसका परिहार 'गोबलीवर्द' न्याय से किया जा सकता है। यहाँ कोशकार ने दोनों को अलग-अलग 'गोबलीवर्द न्याय' से माना है। जैसे 'गो' इस शब्द का अर्थ 'गाय' भी है और बलीवर्द (बैल) भी है। बलीवर्द में बलीवर्द रूप 'गो' का अभेद है एवं 'गाय' रूप गो का भेद है। इस प्रकार कोषकार व्याडि ने 'गुह्यक' शब्द का अर्थ 'धनरक्षक यक्ष' माना है। इस प्रकार एक पक्ष सामान्य हुआ और दूसरा गुह्यक धनरक्षक रूप विशेष। इस तरह दोनों के विरोध का परिहार—हो जाता है। धनं रक्षति ये यक्षास्ते स्युर्गुह्यकसंज्ञकाः इति व्याडिः। **ययाचे**=याचना अर्थ में प्रयुक्त होने वाले 'याच्' धातु के लिट् लकार के प्रथमपुरुष के एक वचन का यह रूप है। **प्रकृतिकृपणाः**=प्रकृत्या कृपणाः यहाँ 'प्रकृत्यादिभ्यः उपसंख्यानम्' इस सूत्र से तृतीया होकर तृ० तत्पुरुष समास हुआ है।

अलंकारः—इस श्लोक में विषमाऽलङ्कार एवं अर्थान्तरन्यासालङ्कार का अङ्गाङ्गिभाव होने के कारण 'सङ्कर' अलंकार है। क्योंकि श्लोक के पूर्वार्ध के प्रथम चरण में 'मेघ' एवं द्वितीय चरण में 'सन्देश' इन दो विरूप पदार्थों के संघटन होने के कारण साहित्यदर्पण के 'विरूपयोः संघटना या च तद्विषमं स्मृतम्' इस लक्षण के अनुसार यहाँ विषमाऽलङ्कार है। एवञ्च 'कामार्ता: हि प्रकृत' इत्यादि सामान्य से ऊपर के कहे गये विशेष का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यासाऽलङ्कार है॥ ५॥

जातं वंशे भुवन–विदिते पुष्करावर्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः।
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद्दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा॥ ६॥

अन्वयः—त्वां भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां वंशे जातं कामरूपं मघोनः प्रकृतिपुरुषं जानामि तेन विधिवशात् दूरबन्धुः अहं त्वयि अर्थित्वं गतः अधिगुणे मोघा याच्ञा वरम् अधमे लब्धकामा अपि न (वरम्)।

व्याख्या—(हे मेघ !) त्वाम्=भवन्तम्, भुवनविदिते=लोक-विख्याते, पुष्करावर्तकानां=पुष्करावर्तकाऽऽख्यानां मेघानां, वंशे=अन्वये, जातम्=उत्पन्नम्, कामरूपं=यथेच्छविग्रहम्, मघोनः=इन्द्रस्य, प्रकृतिपुरुषम्=प्रधान-पुरुषम्, जानामि=वेद्मि परिचिनोमीतियावत्। तेन=उच्चकुलोत्पन्नो भवानतः, विधिवशात्=दैवदुर्विपाकात्, दूरबन्धुः=वियुक्तप्रियः, अहं=यक्षः, त्वयि=भवति, भवत्समीपे इत्यर्थः, अर्थित्वम्=याचकत्वम्, गतः=प्राप्तः। अधिगुणे=गुणशालिनि पुरुषे, याच्ञा=याचना, मोघा अपि=व्यर्था अपि, वरम्=श्रेष्ठा, अधमे=गुणरहिते पुरुषे, लब्धकामा अपि=पूर्णमनोरथा अपि (याच्ञा) न (वरम्) इति।

शब्दार्थः—(हे मेघ !) त्वाम्=तुमको, भुवन—विदिते=लोकविख्यात, पुष्करावर्तकानाम्=पुष्करावर्तक नाम वाले मेघों के (श्रेष्ठ), वंशे=कुल में, जातम्=उत्पन्न हुए को, कामरूपम्=अपना इच्छानुसार शरीर धारण करने वाले को, मघोनः=इन्द्र के, प्रकृतिपुरुषम्=प्रधान पुरुष को, जानामि=(मैं) जानता हूँ। तेन=चूँकि तुम अच्छे कुल में उत्पन्न हुए हो, इसलिये, विधि-वशात्=दुर्भाग्यवश, दूरबन्धुः=प्रियजन से वियुक्त, अहम्=मैं, त्वयि=तुम्हारे पास, अर्थित्वम्=याचक रूप में, गतः=आया। अधिगुणे=गुणी व्यक्ति के पास, याच्ञा=याचना, मोघा अपि=निष्फला भी, वरम्=अच्छी है; परन्तु अधमे=गुणरहित व्यक्ति के पास, लब्धकामा अपि=पूर्ण अभिलाषा होने पर भी, न वरम्=श्रेष्ठ नहीं है।

भावार्थः—हे जलद ! भुवनविख्याते, पुष्करावर्तकाभिधेयानां मेघानां वंशे उत्पन्नं यथेच्छ-विग्रहधारिणमिन्द्रस्य प्रधानपुरुषं भवन्तमहं जानामि, अत एव दैवदुर्विपाकात् प्रियायाः दूरस्थोऽहं भवत्सकाशं याचकत्वेनागतः। भवादृशे गुण-शालिपुरुषे निष्फला अपि याचना श्रेष्ठा भवति, अधमे पुरुषे पूर्णाभिलाषा अपि न श्रेष्ठा भवति।

हिन्दी—हे मेघ ! भुवनविख्यात पुष्करावर्तक नामक मेघ के वंश में उत्पन्न, अपने इच्छानुकूल शरीर धारण करने में समर्थ, इन्द्र के प्रधान पुरुष आपको मैं जातना हूँ । इसलिए, दुर्भाग्यवश पत्नी से बिछुड़ा हुआ मैं आपके पास याचक बन के आया हूँ । क्योंकि (आप के समान) गुणी व्यक्ति के पास यदि याचना निष्फल भी हो जाय तो अच्छी है, परन्तु निर्गुणी व्यक्ति के पास यदि सफल हो जाय तो भी अच्छी नहीं है ।

समासः—भुवनेषु विदित इति भुवनविदितः (स० तत्०) तस्मिन्, पुष्कराश्च आवर्तकाश्च इति पुष्करावर्तकाः (द्वन्द्व) इति मल्लिनाथमतानुसारम् अन्ये तु एतन्नामकैक एव मेघः । प्रकृतिषु पुरुषः प्रकृतिपुरुषः (स० तत्०) तम् । कामकृतानि रूपाणि यस्य तम् (मध्यम पदलोपी बहुव्रीहिः) । दूरे बन्धुर्यस्य स (बहुव्रीहिः) । लब्धः कामः यया सा लब्धकामा (बहुव्रीहिः) ।

कोशः—'जगती लोको विष्टपं भुवनं जगत् इत्यमरः । पुष्करं करिशुण्डाग्रे वाद्यभाण्डमुखे जले इत्यमरः । इन्द्रो मरुत्वान् मघवा इत्यमरः । प्रकृतिर्गुण–साम्ये स्यादमात्यादिस्वभावयोः इति मेदिनी । दैवं दिष्टं भागधेय भाग्य स्त्री नियतिर्विधिः इत्यमरः । सगोत्र–बान्धवज्ञाति बन्धु स्व-स्वजनाः समाः इत्यमरः । बनीयको याचनको मार्गणो याचकार्थिनो इत्यमरः ।

टिप्पणी—भुवनविदिते यह सप्तमी समासान्त शब्द है । यहाँ ज्ञानार्थक 'विद्' धातु से भूताऽर्थ में 'निष्ठा' इस सूत्र से 'क्त' प्रत्यय किया गया है, न कि 'मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च' इस सूत्र से । क्योंकि यदि 'मतिबुद्धि०' इस सूत्र से वर्तमान अर्थ में 'क्त' प्रत्यय करेंगे तो 'क्तस्य च वर्तमाने' इस सूत्र से 'भुवन' शब्द से षष्ठी विभक्ति आयेगी एवञ्च 'क्तेन च पूजायाम्' इस सूत्र से समास का निषेध हो जायगा । फलस्वरूप 'भुवनविदिते' ऐसे शब्द निष्पन्न न होकर बल्कि 'भुवनानां विदिते' ऐसा असमस्त रूप होने लगेगा जो यहाँ इष्ट नहीं है । **पुष्करावर्तकानाम्**=मल्लिनाथजी ने 'पुष्कराश्च आवर्तकाश्च' ऐसा विग्रह करके उक्तपद को द्वन्द्व समासान्त माना है । परन्तु एक ही मेघ दो वंशों में कैसे उत्पन्न हो सकेगा ? इसलिए कुछ लोग विष्णुपुराण के—

'पुष्करा नाम ये मेघा बृहन्तस्तोयमत्सराः ।
पुष्कराऽवर्तकास्तेन कारणेनेह शब्दिताः ॥'

इस उद्धरण के अनुसार प्रलयङ्कारी एक मेघवंश को ही 'पुष्करावर्तक' कहते हैं। मातृगोत्र एवं पितृगोत्र के प्रधान पुरुष 'पुष्कर' और 'आवर्तक' हो सकते हैं एवं उन दोनों की सन्तति एक मेघ हो सकता है, इस प्रकार मल्लिनाथ जी का भी व्याख्यान युक्तियुक्त माना जा सकता है। **जातम्**=प्रादुर्भाव अर्थ में विद्यमान 'जन्' धातु से 'क्त' प्रत्यय करके 'जातम्' शब्द निष्पन्न हुआ है। **कामम्**=काममस्यास्तीति इस विग्रह में 'काम' शब्द से 'अर्श आदिभ्योऽच्' इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय करके 'कामम्' शब्द बना है। **जानामि**='ज्ञा' धातु के उत्तम पुरुष के एकवचन का रूप जानामि होता है। 'ज्ञाजनोर्जा' इस सूत्र से ज्ञा के स्थान पर 'जा' आदेश है। **अर्थित्वम्**=असन्निहितोऽर्थोऽस्यास्तीति अर्थी' यहाँ पर जिसके पास अर्थ न हो, अर्थात् अर्थ के असन्निधान में 'अर्थ' शब्द से 'अर्थच्चासन्निहिते' इस सूत्र से इनि प्रत्यय हुआ है तथा 'अर्थी' (अर्थ+इन्) यह रूप बना है। अर्थिनो भावः अर्थित्वम् 'तस्य भावस्त्वतलौ' इस सूत्र से भाव में 'अर्थी' शब्द से 'त्व' प्रत्यय होकर 'त्वान्तं क्लीबम्' के नियमनुसार नपुंसकान्त 'अर्थित्वम्' यह रूप बना है। अर्थ के सन्निधान में तो 'अर्थवान्' हुआ और जिसके पास अर्थ न हो वह 'अर्थी' हुआ। **याच्ञा**—याचन=याच्ञा याचना अर्थ में विद्यमान 'याच' धातु से 'यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्' इस सूत्र से 'नङ्' प्रत्यय हुआ है पश्चात् 'स्तोः श्चुना श्चुः' इस सूत्र से श्चुत्व एवं स्त्रीत्व विवक्षा में 'टाप्' करके 'याच्ञा' शब्द बना है।

अलङ्कार—यहाँ अर्थित्व प्राप्तरूप विशेष अर्थ का समर्थन चतुर्थचरणस्थ सामान्यार्थ के द्वारा होने के कारण 'अर्थान्तरन्यास अलंकार है ॥ ६ ॥

सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद ! प्रियायाः
सदेशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य ।

गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणाम्
बाह्योद्यान-स्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥७॥

अन्वयः—हे पयोद ! त्वं सन्तप्तानां शरणम् असि, तत् धनपतिक्रोध-विश्लेषितस्य मे सन्देशं प्रियाया हर । बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या अलका नाम यक्षेश्वराणां वसतिः ते गन्तव्या ।

व्याख्या—हे पयोद !=हे जलद ! त्वम् सन्तप्तानाम्=आतपेन विरहेण वा पीडितानाम्, शरणं=रक्षकः, असि=वर्त्तसे, आतपपीडितं जलदानेन, विरहपीडितं स्वस्थान-प्रेरणया वा रक्ष्यसे इति भावः । तत्=तस्माद्धेतोः, रक्षकत्वादिति भावः । धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य=कुबेरकोपवियुक्तस्य, मे=मम यक्षस्य, सन्देशम्=वार्तां, प्रियायाः=प्रेयस्याः, पार्श्वम् इति शेषः । हर=नय । सा मत्प्रिया कुत्र वर्तते, तस्य स्थानस्य किन्नामेतिजिज्ञासायामाह । बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या=बाह्योद्याने=बहिरारामे, स्थितस्य=वर्तमानस्य, हरस्य=शम्भोः, शिरसि=मस्तके या चन्द्रिका=ज्योत्स्ना, तया धौतहर्म्या=प्रक्षालिताट्टालिका अलका, नाम=एतन्नामिका यक्षेश्वराणाम्=गुह्यकाधिपतीनांम्, वसतिः=स्थानम्, ते=मेघस्य, गन्तव्या=यातव्या ।

शब्दार्थः—हे पयोद !=हे मेघ ! त्वम्=तुम, सन्तप्तानाम्=धूप से पीड़ित अथवा वियोग से पीड़ित जनों के, शरणम्=रक्षक, असि=हो । तत्=तुम रक्षक हो इसलिए, धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य=कुबेर के क्रोध के कारण अपनी प्रिया से वियुक्त, मे=मेरा (यक्ष का), सन्देशम्=सन्देश, प्रियायाः=प्रिया के पास, हर=पहुँचा दो । यदि तुम कहो कि, मेरी प्रिया कहाँ रहती है, उस स्थान का क्या नाम है तो सुनो, बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या=नगर से बाहर के उद्यान में विद्यमान शिव जी के मस्तक पर स्थित चन्द्रमा की ज्योत्स्ना से जहाँ के महल धुल रहे हैं, अलका नाम=अलका नाम की यक्षेश्वराणाम्=कुबेर की (वही) वसतिः=नगरी, ते=तुम्हें, गन्तव्या=जाना है ।

भावार्थः—हे मेघ ! धर्मपीडितानां विरहसन्तप्तानां वा त्वं रक्षकोऽसि, अतः कुबेरकोपवियुक्तस्य मे यक्षस्य सन्देशं मत्प्रियायाः पार्श्वं प्रापय । यत्र मे प्रिया वसति तत्स्थानं कथयामि तथाहि यस्याः नगर्याः हर्म्याणि नगरबहिरारामस्थशिवशिरश्चन्द्रमसः कान्तिभिः सततं प्रक्षाल्यन्ते, सा अलका नाम्नी कुबेरस्य निवासभूमिरेव त्वया गन्तव्या । तत्रैव मत्प्रिया वर्तते इति भावः ।

हिन्दी—हे मेघ ! तुम सन्तप्त जनों के रक्षक हो, (वह चाहे धूप से पीड़ित हों या विरह से) अतः कुबेर के क्रोध के कारण अपनी प्रिया से वियुक्त मेरा सन्देश मेरी प्रिया के पास पहुँचा दो । जहाँ के भवन, नगर के बाहर स्थित बाग में विद्यमान शिवजी के मस्तक पर स्थित चन्द्रमा की ज्योत्स्ना से धुलते रहते हैं, अलका नाम की उसी कुबेर की निवास भूमि में तुम्हें जाना है ।

समासः—धनपतेः क्रोध = धनपतिक्रोधः (ष० तत्०) तेन विश्लेषितः तस्य (तृ० तत्०) धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य, बाह्यश्च तदुद्यानं=बाह्योद्यानम् (प्र० तत्०) स्थितश्चासौ हर=स्थितहरः (कर्मधारय) बाह्योद्याने स्थितहरः=बाह्योद्यानस्थितहरः (स० तत्०) तस्य शिरः (ष० तत्०) तस्मिन् या चन्द्रिका (स० तत्०) तया धौतानि हर्म्याणि यत्र सा (बहुव्रीहिः) ।

कोशः—सन्तापः सञ्ज्वरः समौ इत्यमरः । शरणं गृहरक्षित्रोः इत्यमरः । चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना इत्यमरः । सन्देशवाग् वाचिकं स्यात् इत्यमरः । हर्म्यादि धनिनां वासः इत्यमरः । नाम प्रकाश्य सम्भाव्य क्रोधोपगमकुत्सने इत्यमरः ।

टिप्पणी—पयोद—पयो ददाति इति पयोदः उसके सम्बोधन में हे पयोद ! 'पयस्' उपपद रहते '(डु) दा' धातु से 'अतोऽनुपसर्गे कः' इस सूत्र से क प्रत्यय होकर 'पयोद' यह रूप बना है । **सन्तप्तः**—सम् + तप् + क्त = सम् उपसर्ग-पूर्वक 'तप्' धातु से क्त प्रत्यय होकर 'सन्तप्त' यह शब्द बना है । **विश्लेषितः**-वि + श्लिष + क्त = वि उपसर्गपूर्वक 'श्लिष्' धातु से 'क्त' प्रत्यय हुआ है । **प्रियायाः**—'प्रीञ्' धातु से 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' से 'क' प्रत्यय करके स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् करके प्रिया यह रूप बना है । **बाह्यम्**—'बहिस्' इस अव्यय से 'बहिषष्टिलोपो यञ्च' इस सूत्र से 'यञ्' प्रत्यय एवं टि रूप 'इस' का लोप

करके 'तद्धितेष्वचामादेः' इस सूत्र से ञित्त्वात् वृद्धि करके 'बाह्यम्' यह रूप बनता है। **गन्तव्या**—'गम्' धातु से तव्यत् प्रत्यय होकर स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् करके 'गन्तव्या' यह रूप निष्पन्न होता है। 'तव्यत्' प्रत्यय कृत्य प्रत्यय है अतः 'गन्तव्या' के योग में 'कृत्यानां कर्तरि वा' इस सूत्र से कर्ता में विकल्प से षष्ठी हुई है ॥ ७ ॥

त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसन्त्यः ।।
कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः ॥ ८ ॥

अन्वयः—पवनपदवीम् आरूढम् त्वाम् पथिकवनिताः प्रत्ययात् आश्वसन्त्यः उद्गृहीतालकान्ताः प्रेक्षिष्यन्ते। त्वयि संनद्धे अहम् इव यो जनः पराधीनवृत्तिः न स्यात् कः अन्यः अपि विरहविधुराम् जायम् उपेक्षेत।

व्याख्या—पवनपदवीम्=पवनाध्वानम् गगनमितियावत्। आरूढम्=गतम्, त्वाम्=मेघम्, पथिकवनिताः=पान्थप्रियाः प्रोषितभर्तृका इत्यर्थः, प्रत्ययात्=विश्वासात् वल्लभागमनस्येति बोध्यः, आश्वसन्त्यः=प्राप्तविश्वासाः, उद्गृहीतालकान्ताः=उद्धृतकेशप्रान्ताः (सत्यः), इतस्ततः द्रष्टुम् उन्नमय्य केशाग्रभागं धृत्वेत्यर्थः। प्रेक्षिष्यन्ते=विलोकयिष्यन्ति। त्वयि=जलदे, संनद्धे=वृष्टये समुद्यते, अहमिव=मत्समानः, यः जनः=यो नरः, पराधीनवृत्तिः=पराधिकृतजीवनः, न स्यात्=नभवेत्, (तादृशः) कः=प्रियाविलासानभिज्ञः, अन्योऽपि=अपरोऽपि (जनः), विरहविधुराम्=विप्रलम्भव्यग्राम्, जायाम्=प्रियाम्; उपेक्षेत=उपेक्षां कुर्यात्, मेघाच्छन्ने न कोऽपि स्वतन्त्रः प्रियाविलासज्ञः जनः प्रियायाः उपेक्षां करोतीतिभावः।

शब्दार्थः—पवनपदवीम्=आकाश में, आरूढम्=स्थित, त्वाम्=तुमको; पथिकवनिताः=पथिकों की पत्नियाँ, प्रत्ययात्=विश्वास के कारण, आश्वसन्त्यः=आश्वस्त होकर, उद्गृहीतालकान्ताः=केशों के अग्रभागको उठाकर

प्रेक्षिष्यन्ते=देखेंगी । त्वयि=तुम्हारे, अर्थात् मेघ के, संनद्धे=छा जाने पर; अहमिव=मेरे समान, यः जनः=जो पुरुष, पराधीनवृत्तिः=पराधीन जीवन वाला, न स्यात्=न हो (ऐसा) कः=कौन, अन्योऽपि=दूसरा व्यक्ति (होगा) जो, विरह-विधुराम्=विरह से व्याकुल, जायाम्=प्रिया को, उपेक्षेत=उपेक्षा करेगा । अर्थात् कोई भी नहीं करेगा ।

भावार्थः–आकाशे विद्यमानं त्वां प्रोषितभर्तृकाः नार्यः विश्वासात् आश्वसन्त्यः सत्यः केशाग्रभागमुन्नमय्य अवलोकयिष्यन्ति । वर्षणाय समुद्यते त्वयि-आगते को जन ईदृग् स्यात् यः खलु मत्सदृशः पराधीनजीवनः न स्यात् विरह-व्याकुलायाः प्रियायाः उपेक्षां कुर्यात् । न कोऽपि कुर्यादिति भावः ।

हिन्दी—हे मेघ ! जब तुम आकाश में छा जाओगे–उस समय तुमको पथिकों की प्रियाएँ अपने प्रिय के आगमन के विश्वास से आश्वस्त होकर अपने केशों के अग्रभाग को ऊपर उठाकर देखेंगी । तुम्हारे आ जाने पर मेरे समान जो पराधीन न हो ऐसा कौन पुरुष होगा जो अपनी विरह से व्याकुल प्रिया की उपेक्षा करेगा ।

समासः—पवनस्य पदवी=पवनपदवी ताम् (ष० तत्०) । उद्गृहीताः अलकानामन्ताः याभिस्ताः=उद्गृहीतालकान्ताः (बहुव्रीहिः) । पथिकानां वनिताः पथिकवनिताः (ष० तत्०) । विरहेण विधुरा=विरह–विधुरा (तृ० तत्०) विगताः धूः यस्याः सा विधुरा (बहुव्रीहिः) । परस्मिन्नधीना वृत्तिर्यस्य स पराधीनवृत्तिः (बहुव्रीहिः) ।

कोशः—पन्थानः पदवी सृतिः इत्यमरः । प्रत्ययोऽधीनशपथज्ञानविश्वास-हेतुषु इत्यमरः । अलकाश्चूर्णकुन्तलाः इत्यमरः । परतन्त्रः पराधीनः परवान्नाथ-वानपि इत्यमरः । विधुरं तु प्रविश्लेषे इत्यमरः । वृत्तिर्वर्तनं जीवने इत्यमरः ।

टिप्पणी–आरूढ=आ+रुह+क्त 'आङ्' उपसर्गपूर्वक रुह धातु से क्त प्रत्यय होकर आरूढ यह पद बना है ।

पथिकः—'पथिन्' शब्द से 'पथःष्कन्' इस सूत्र से 'ष्कन्' प्रत्यय का विधान करके 'षः प्रत्ययस्य' इस सूत्र से प्रत्यय के 'ष' कार का लोप आदि

करके 'पथिक' शब्द की निष्पत्ति होती है। **आश्वसन्त्यः**—यहाँ पर महोपाध्याय श्रीमल्लिनाथ के मतानुसार 'आश्वसत्यः' ऐसा ही पाठ होना चाहिए, क्योंकि 'श्वस्' धातु का पाठ अदादि गण में होने के कारण 'शप्' का 'अदः प्रभृतिभ्यः शपः' इस सूत्र से लोप हो जाने के कारण 'शप्श्यनोर्नित्यम्' इस सूत्र के द्वारा जो 'नुम्' होता है वह नहीं होगा। अतः आश्वसत्यः ऐसा होना चाहिए। परन्तु महावैयाकरण भारवि का 'आश्वसेयुर्निशाचराः' एवं महाभारत का 'न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नाऽति विश्वसेत्' इत्यादि प्रयोगों के आधार पर—'भ्वादिस्तु आकृतिगणः तेन चुलुम्पतीत्यादिसंग्रहः' सिद्धान्तकौमुदी की इस पंक्ति के आधार पर 'श्वस्' धातु को भ्वादिगणी मानकर 'शप्' का लोप नहीं होने के कारण 'नुम्' हो जाने से 'आश्वसन्त्यः' यह पाठ भी समीचीन हो जाता है। **पराधीनवृत्तिः**—वर्तनं वृत्तिः। वर्तनार्थक वृत धातु में भाव में क्तिन् प्रत्यय होने से 'वृत्ति' यह शब्द बना है। परस्मिन्नधीना वृत्तिः= पराधीनवृत्तिः। **विरहविधुरा**—विगता धूः=भारः (पुष्टिः) यस्याः सा विधुरा। यहाँ वि उपसर्गपूर्वक 'धुर्' शब्द से उपपद समास करके 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' इस सूत्र से समासान्त 'अ' प्रत्यय होकर एवं स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् होकर 'विधुरा' यह शब्द बना है। **जाया**—जायते अस्यां (पुत्ररूपेण) इति जाया ताम्। 'पुत्ररूपेण' इसमें मनुस्मृति का निम्नलिखित उक्ति प्रमाण है—

'पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते।
जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः॥

अर्थात्—पति, पत्नी में गर्भ रूप से प्रवेश होकर उत्पन्न (जात) होता है इसलिए पत्नी, 'जाया' कहलाती है। 'जनि प्रादुर्भावे' धातु से औणादिक 'जनेर्यक्' इस सूत्र से यक् प्रत्यय करके टाप् करके जाया यह शब्द बना है।

अलङ्कार—यहाँ पर भी पूर्व श्लोकों की तरह सामान्य से विशेष का समर्थन होने के कारण 'अर्थान्तरन्यास' नामक अलंकार है॥ ८॥

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः ।
गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्ध–मालाः
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः ॥ ९ ॥

अन्वयः—अनुकूलः पवनो मन्दं यथा त्वां मन्दं नुदति । अयं सगन्धः ते वामः चातको मधुरं नदति । गर्भाधान-क्षणपरिचयात् आबद्धमालाः बलाकाः खे नयनसुभगं भवन्तं नूनं सेविष्यन्ते ।

व्याख्या—त्वत्यात्रा-काले शकुनान्यपि शुभानि वर्तन्त इति कथयति मन्दं मन्दमित्यादिना । अनुकूलः=अनुगुणः, पवनः=वायुः मन्दं यथा=स्थिरमिव, त्वाम्=भवन्तं, मन्दं=शनैः शनैः यथा स्यात्तथा, नुदति=चोदयति । अयं= पार्श्वस्थः, सगन्धः=सगर्वः, ते=भवत; वामः=अपसव्यभागे (सुन्दरो वा) चातकः=पक्षिविशेषः, मधुरं=मनोरमं यथा स्यात्तथा नदति=वक्ति । गर्भाधानक्षणपरिचयात्=रतिसमय–जातसंस्तवात्, आबद्धमालाः=रचितपङ्क्तयः, बलाकाः=बकप्रियाः, खे=गगने, नयनसुभगम्=दर्शनप्रियम्, भवन्तम्= मेघम्, नूनम्=अवश्यं, सेविष्यन्ते=समुपचारयिष्यन्ति । यात्राकाले पवनानुकूल्यं चातकध्वनिः बलाकादर्शनं शुभ–सूचकमिति वदन्ति दैवज्ञाः ।

शब्दार्थः—अनुकूलः=अनुरूप, पवनः=हवा, मन्दं=मन्दगति वाला, त्वाम्=तुमको, मन्दम्=धीरे धीरे, नुदति=प्रेरित करता है । अयं=यह, सगर्वः=गर्वयुक्त, ते=तुम्हारे, वामः=बायें भाग मे अथवा सुन्दर, चातकः= पपीहा, मधुरं=श्रवणप्रिय, नदति=शब्द कर रहा है । गर्भाधानक्षणपरिचयात्=गर्भाधान के समय परिचय होने के कारण, आबद्धमालाः=पंक्तिबद्ध, बलाकाः=बगुलियाँ, खे=आकाश में, नयनसुभगम्=देखने में सुन्दर, भवन्तम्=तुम्हारा, नूनम्=अवश्य, सेविष्यन्ते=आश्रयण करेंगी ।

भावार्थः–हे पयोद ! तव यात्रा–समये इमानि शुभसूचकानि शकुनान्यपि दृश्यन्ते । यथा–त्वदनुरूप एवं मन्दगतिर्वायुः शनैः शनैस्त्वां प्रेरयति एवञ्च त्वद्-

वामभागे सुन्दरश्चातकः कर्णप्रियं शब्दङ्करोति । अन्यदपि वर्तते शकुनम् । यथा-संभोगसमये भवता सह परिचयजननात् बद्धपङ्क्तयः बकाङ्गनाः नयनसुभगं भवन्तमवश्यमेव सेविष्यन्ते ।

हिन्दी—हे मेघ ! तुम्हारी यात्रा के समय ये शुभशकुन भी दिखाई दे रहे हैं—जैसे तुम्हारे अनुकूल ही पवन मंद गति वाले तुम्हें धीरे-धीरे प्रेरित कर रहा है एवं तुम्हारे बायीं ओर पपीहा कर्णप्रिय शब्द बोल रहा है और भी शकुन हैं जैसे संभोग के समय तुमसे परिचय होने के कारण ये पंक्तिबद्ध बगु-लियाँ आँखों को अच्छे लगने वाले तेरा जरूर आश्रय लेंगीं ।

समासः—गन्धेन सहितः=सगन्धः (तृ० बहुव्री०) । गर्भस्य आधानं गर्भाधानम् (ष० तत्०) तदेव क्षणः=गर्भाधानक्षणः (रूपक) तस्मिन् परिचयः=गर्भाधानक्षण-परिचयः (स० तत्०) तस्मात् । आबद्धा माला याभिस्ताः आबद्धमालाः (बहुव्रीहिः) ।

कोशः—यथा सादृश्य-योग्यत्वं वीप्सा स्वार्थानतिक्रमे इति यादवः । गन्धो गन्धक आमोदे लेशे सम्बन्धगर्वयोः इति विश्वः । वामस्तु वक्रे रम्ये स्यात् सव्ये वामगतेऽपि च इति शब्दार्णवः । सारङ्गाः स्तोकश्चातकः समाः इत्यमरः । गर्भोपकारके ह्यग्नौ मुखे पनस-कण्टके । कुक्षौ कुक्षिस्थजन्तौ च इति यादवः । क्षण उद्धर्षो मह उद्धव उत्सवः इत्यमरः । संस्तवः स्यात्परिचयः इत्यमरः । बलाका विसकण्ठिका इत्यमरः । लोचनं नयनं नेत्रमीक्षणं चक्षुरक्षिणीं दृग्दृष्टी इत्यमरः ।

टिप्पणी—मन्दं मन्दमिति—इस पद को कई लोग 'नुदन' का विशेषण मानकर उसकी व्याख्या करते हैं । परंतु गुणवाचक पदों की वीप्सा न होने के कारण एवं 'मन्दं' इस शब्द के गुणवाचक होने के कारण 'वीप्सा' में द्वित्व नहीं होगा । यदि इस अर्थ में 'प्रकारे गुणवचनस्य' इस सूत्र से द्वित्व विधान करें तब भी 'कर्मधारयवदुत्तरेषु' इस सूत्र से सुब्विभक्ति का लोप हो जाने पर 'मन्दमन्दम्' ऐसा अनीप्सित रूप बनने लगेगा । इसकी अपेक्षा यदि हम प्रथम मन्दं को मेघ का विशेषण मानकर दूसरे मन्दं को 'नुदन'

क्रिया का विशेषण मानें और 'मन्दं त्वां यथा स्यात्तथा मन्दं नुदति' ऐसा अन्वय माने तो महाकवि की प्रामाणिकता के साथ ही अर्थ भी सुसंगत हो जायगा। वैसे तो 'निरङ्कुशाः हि कवयो भवन्ति' इसका आश्रय लेकर :मन्दंमन्दं' इसको क्रियाविशेषण भी माना जा सकता है। **नुदति**–प्रेरणार्थक 'नुद्' धातु के लट् लकार के प्रथम पुरुष एक वचन का यह रूप है। **सगन्धः**–गन्धेन सहितः इस विग्रह में 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इस सूत्र से (बहुब्रीहि) समास होकर 'वोपसर्जनस्य' इस सूत्र से 'सह' के स्थान पर 'स' यह आदेश विकल्प से होकर 'सगन्धः' ऐसा रूप बना है। जहाँ सह को स आदेश नहीं होगा वहाँ 'सहगन्धः' ऐसा रूप भी बनता है। **श्लोकक्रम**–कुछ टीकाकार 'तां चावश्यम्' इस श्लोक को नवम स्थान पर, जिसे मल्लिनाथ जी ने दशम स्थान पर रखा है रखते हैं और 'मन्दंमन्दं' को दशम स्थान पर। परन्तु यह क्रम उचित नहीं जँचता। इस काव्य का मुख्य अभिधेय 'सन्देश' पहुँचाना है। इसका कथन कवि ने -सन्तप्तानाम्' इस सातवें श्लोक में कर दिया। तदनन्तर आनुषंगिक पथिक वनिताओं को आश्वासन का कथन 'अष्टम' में किया। तदनन्तर शुभशकुन का प्रदर्शन 'मन्दं मन्दं' इस श्लोक में यात्रानुरूप उचित ही है। तदनन्तर वह अवश्य जीवित है। अतः तुम्हारा जाना निरर्थक नहीं होगा इसकी पुष्टि 'तां चावश्यं' इस दशम श्लोक में उचित है॥ ९॥

तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी-
मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम्।
आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि॥१०॥

अन्वयः—(हे मेघ) दिवसगणनातत्पराम् अव्यापन्नाम् एकपत्नीम् भ्रातृजायाम् ताम् अविहतगतिः (त्वम्) अवश्यं द्रक्ष्यसि आशाबन्धः प्रणयि कुसुमसदृशम् विप्रयोगे सद्यःपाति अंगनानां हृदयं प्रायशो रुणद्धि।

व्याख्या—हे मेघ! मत्प्रिया 'मृता अथवा व्रतभ्रष्टा' इति विनिश्चित्य त्वं स्वयात्रायाः वैयर्थ्यं नाऽशङ्कय। यतोहि-दिवसगणनातत्पराम्=

याप्यवासरसंख्यानाऽसक्ताम्: अव्यापन्नाम्=जीविताम् (अनेन स न मृता इति द्रढयति यक्ष:) एवञ्च एकपत्नीम्=पतिव्रताम्, (इत्यनेन तस्या व्रतास्खलनत्वञ्च प्रतिपादयति) शापान्ते स आगमिष्यतीति पातिव्रत्यपूर्वकं साऽवश्यं प्राणान् धारयति इति भाव: । भ्रातृजायाम्=बन्धुप्रियाम्, ताम्=मत्प्रियाम्, अविहतगति:=अव्याहतगमन: (सन् त्वम्) अवश्यम्=नूनम्, द्रक्ष्यसि=अवलोकयिष्यसि । आशाबन्ध:=तृष्णाबन्धनम्, प्रणयि=प्रेमपूर्णम्, कुसुमसदृशम्=पुष्पवन्मृदुभवतीति भाव: । अत एव विप्रयोगे=विरहे प्रेमिण: इति शेष: । सद्य:पाति=तत्क्षणविनाशशीलम्, अङ्गनानाम्=वधूनाम्, हृदयम्=जीवनम्, प्रायश:=प्रायेण, रुणद्धि=नह्यति ।

शब्दार्थ:—दिवसगणनातत्पराम्=अवधि के दिनों को गिनने में संलग्न, अव्यापन्नाम्=जीवित (प्रिय आयेंगे इस आशा में), एकपत्नीम्=पतिव्रता, भातृजायाम्=अपनी भाभी, ताम्=उस मेरी पत्नी को, अविहतगति:=बेरोकटोक जाने वाले तुम, अवश्यं=निश्चित, द्रक्ष्यसि=देखोगे । आशाबंध:=आशा का बन्धन:, प्रणयि=प्रेमयुक्त, कुसुमसदृशम्=फूल की तरह कोमल, विप्रयोगे=विरह में, सद्य:पाति=तुरंत टूट जाने वाले, अंगनानाम्=स्त्रियों के, हृदयम्=हृदय को, प्रायश:=प्राय:, रुणद्धि=थामे रहता है ।

भावार्थ:—हे मेघ विरहावशिष्टदिवसगणनासंलग्नाम्, प्रियागमनाशयाप्राणान्धारयन्तीमपासुलां मत्प्रियामविरुद्धगतिस्त्वमवश्यं विलोकयिष्यसि । आशारूपं बंधनं प्रेमपूर्णं कुसुमतुल्यमृदु प्रेमास्पदविरहे सद्योविनाशशालि वधूनां जीवितं प्रायश: रुणद्धि ।

हिन्दी—हे मेघ ! विरह के बचे दिनों को गिनने में लगी, मेरे आने की आशा से जीवित, पतिव्रता अपनी भाभी को (मेरी पत्नी को), अविहतगति वाले तुम अवश्य देखोगे, क्योंकि आशारूपी बंधन प्रेमपूर्ण फूल की तरह कोमल तथा प्रिय के विरह में तुरंत टूट जाने वाले अबलाओं के हृदय को प्राय: रोके रहता है ।

समास:—दिवसानां गणना=दिवसगणना (ष० तत्०) तस्यां तत्परा=दिवसगणनातत्परा (स० तत्०) ताम् । भ्रातु: जायाम् भ्रातृजायाम् (ष०

तत्०) । आशा एव बन्धः=आशाबन्धः (कर्मधारय) । कुसुमैः सदृशं=कुसुम-सदृशम् (तृ० तत्०) ।

कोशः—तत्परे प्रसितासक्तौ इत्यमरः, आशादिगति तृष्णयोः इति यादवः । आशाबन्धः समाश्वासे तथा मर्कटवासके इति मेदिनी । विप्रलम्भो विप्रयोगः इत्यमरः । हृदयं जीविते चित्ते वृक्षस्याकृतहृद्ययोः इति शब्दार्णवः ।

टिप्पणी—गणना—संख्यानार्थक "गण" धातु से णिच् प्रत्यय करके पश्चात् "युच्" प्रत्यय करके अनादेश करके स्त्रीत्वविवक्षा में "टाप्" करके "गणना" ऐसा रूप बनता है । (गण्+इ+अन् (युच्)+टाप्) । **अव्यापन्ना**—वि एवं आङ् उपसर्गपूर्वक गत्यर्थक पत् धातु से "क्त" प्रत्यय करके टाप् करके व्यापन्ना बनाते हैं । न व्यापन्ना=अव्यापन्ना ताम् (नञ०) **एकपत्नीम्**—एकः पतिर्यस्याः सा=एकपत्नी (बहुव्रीहि) ताम् । यहाँ "नित्यं सपत्न्यादिषु" इस सूत्र से "न" और "ङीप्" प्रत्यय हुआ है । **अविहतगतिः**—न विहता=अविहता गतिः यस्य सः अविहतगतिः (बहुव्रीहिः) । "गम्" धातु से क्तिन् प्रत्यय होकर "गतिः" ऐसा साधु होता है । **विप्रयोगे**-वि और प्र उपसर्गपूर्वक युज् (युजिर) धातु से भाव में "घञ्" प्रत्यय करके विप्रयोग ऐसा रूप बनता है । **सद्यःपाति**—सद्यः पतितुं शीलमस्य इस विग्रह में सद्यस् इस उपपदपूर्वक "पत्" धातु से "णिनि" प्रत्यय करके 'उपपदमतिङ्' से समास करके वृद्ध्यादि करके सद्यःपाति ऐसा रूप बनता है । **अंगना**-प्रशस्तानि अङ्गानि यासाम्, इस विग्रह में "अङ्ग" शब्द से "अङ्गात् कल्याणे" इस वार्तिक के अनुसार "लोमाऽदिपामाऽऽदिपिच्छाऽऽदिभ्यः शनेलचः" इस सूत्र से "न" प्रत्यय हुआ है ॥ १० ॥

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां
तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः ।
आकैलासाद्बिस-किसलयच्छेद-पाथेय-वन्तः
सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः ॥ ११ ॥

अन्वयः—यत् महीम् उच्छिलीन्ध्राम् अवन्ध्यां च कर्तुं प्रभवति तत् श्रवणसुभगं ते गर्जितं श्रुत्वा मानसोत्काः विसकिसलयच्छेद—पाथेयवन्तः राजहंसाः नभसि आकैलासात् भवतः सहाया सम्पत्स्यन्ते ।

व्याख्या—मार्गे भवतां सहायका अपि भविष्यन्ति इति प्रतिपादयति यत्= गर्जितं, महीम्=पृथ्वीम्, उच्छिलीन्ध्राम्=उद्गतकन्दलीम्, अत एव अवन्ध्याम्=उर्वराम्, कर्तुं=रचयितुम्, प्रभवति=शक्नोति। तत्=तथाभूतम्, (लोकानाम्) श्रवण-सुभगम्=कर्णपेयम्, ते=तव मेघस्येति भावः। गर्जितं=निर्घोषम्, श्रुत्वा=आकर्ण्य, मानसोत्काः=मानसरोवरं गन्तुमुन्मनाः, बिसकिसलयच्छेद-पाथेयवन्तः=मृणालाग्रभाग-शकल-सम्बलवन्तः, राजहंसाः= श्रेष्ठहंसाः, नभसि=आकाशे, आकैलासात्=कैलासं यावत्, भवतः=मेघस्य, सहायाः=सहगामिनः, संपत्स्यन्ते=भविष्यन्ति ।

सरलार्थ—यत्=जो (गर्जन), महीम्=पृथ्वी को, उच्छिलीन्ध्राम्= कन्दली युक्त, अबन्ध्याम्=फल युक्त, कर्तुं=करने में, प्रभवति=समर्थ है, तत्=उस, श्रवणसुभगं=सुनने में प्रिय, ते=तुम्हारा, गर्जितं=गर्जन को, श्रुत्वा=सुनकर, मानसोत्काः=मान-सरोवर जाने को उत्कण्ठित, बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः=कमलनाल के अग्रभाग के टुकड़ों को रास्ते के लिए जलपान बनाने वाले, राजहंसाः=श्रेष्ठहंस, नभसि=आकाश में, आकैलासात्= कैलास पर्वत तक, भवतः=तुम्हारा, सहायाः=साथ जानेवाले, सम्पत्स्यन्ते= बनेंगे।

भावार्थः—हे जलद ! लोकानां श्रोत्रानन्ददं यद्भवदीयगर्जनं महीं कन्दलिकायुक्तां सफलां च सम्पादयति तदाकर्ण्य मानसरोवरं गन्तुमुत्कण्ठिताः मृणालाग्रभागं मार्गभक्ष्यत्वेन गृहीताः राजहंसाः कैलासपर्वतपर्यन्तं भवतः सहगामिनो भविष्यन्ति ।

हिन्दी—हे मेघ ! तुम्हारा जो गर्जन कानों को सुख देने वाला है और पृथ्वी को शिलीन्ध्रपुष्प से युक्त करने में तथा उर्वरा बनाने में समर्थ है तुम्हारे उस गर्जन को सुनकर मानसरोवर आने को उत्कण्ठित, रास्ते के भोजन के लिए मृणाल के आगे के भाग के टुकड़ों को लेकर चलने वाले राजहंस (श्रेष्ठ हंस) कैलास पर्वत तक तुम्हारा साथ देंगे ।

टिप्पणी—कर्तुम्—'कृञ्' धातु से "समानकर्तृकेषु तुमुन्" इस सूत्र से तुमुन् प्रत्यय होकर "कर्तुम्" ऐसा रूप बना है। **प्रभवति**—प्र उपसर्गपूर्वक 'भू' धातु के लट् लकार का रूप है प्रभवति। यद्यपि "भू" धातु का सत्ता (स्थिति) अर्थ है फिर भी "उपसर्गेणैव धात्वर्थो, बलादन्यत्र नीयते" इस युक्ति के अनुसार "प्र" उपसर्ग लग जाने के कारण यहाँ उसी धातु का अर्थ समर्थ हो गया। वैसे तो वैयाकरणों के मत में सभी अपेक्षित अर्थ धातु में ही रहते हैं, "अनेकार्था: हि धातव:" इस वचन के अनुसार उपसर्ग तो द्योतक-मात्र है बोधक नहीं। **गर्जितम्**—"गर्ज" धातु के भाव में "नपुंसके भावे क्तः" इस सूत्र से "क्त" प्रत्यय और इडादि करके "गर्जितम्" ऐसा रूप बना है। **मानसरोवरः**—मानसम् (ब्रह्मणा) मनसा निर्मितं "मानसम्"। ब्रह्माजी ने इस तालाब की रचना मन से की थी अतः इसको "मानस" या मानसरोवर कहते हैं। कविप्रसिद्धि है कि वर्षा ऋतु में ही हंसगण मानसरोवर जाते हैं; क्योंकि अन्य ऋतुओं में उसमें बर्फ जम जाती है जो हंसों के लिए हानिकारक होती है। **पाथेयम्**—"पथिन्" शब्द से पथ्यतिथिवसति स्वपतेर्ढञ्" इस सूत्र से "ढञ्" प्रत्यय का विधान करते हैं पश्चात् उसके स्थान पर "आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्" इस सूत्र से "एय्" आदेश होकर ञित्त्वात् वृद्धि होकर "पाथेयम्" ऐसा रूप बना है ॥ ११ ॥

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिङ्ग्य शैलं
वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु।
काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य
स्नेह-व्यक्तिश्चिर-विरहजं मुञ्चतो बाष्पमुष्णम् ॥ १२ ॥

अन्वयः—पुंसां वन्द्यैः रघुपतिपदैः मेखलासु अङ्कितम् तुङ्गम् प्रिय-सखम् अमुम् शैलम् आलिङ्ग्य आपृच्छस्व। काले काले भवतः संयोगम् एत्य चिरविरहजम् उष्णम् बाष्पम् मुञ्चतः यस्य स्नेहव्यक्तिः भवति।

व्याख्या—पुंसाम्=मानवानाम्, वन्द्यैः=पूज्यैः, रघुपतिपदैः=रामचन्द्र-चरणैः, मेखलासु=कटिप्रदेशेषु, अङ्कितम्=चिह्नितम्, तुङ्गम्=अत्युच्चम्,

प्रियसखम्=मित्रवर्यम्, अमुम्=सम्मुखस्थम् रामगिरिम्, शैलम्=पर्वतम्, आलिङ्ग्य=आश्लिष्य, आपृच्छस्व=सभाजयस्व, हे मित्र ! अहं गच्छामीति संसूचयेतिभावः। काले काले=समये समये, भवतः=मेघस्य, संयोगम्=सान्निध्यम्; एत्य=प्राप्य, चिरविरहजम्=दीर्घकालिक-विरहजन्यम्, उष्णम्=तप्तम्, बाष्पम्=अश्रु, मुञ्चतः=त्यजतः, यस्य=रामगिरेः, स्नेहव्यक्तिः=प्रेमप्राकट्यं, भवति=वरीवर्तते इति अनुमीये।

शब्दार्थः—पुंसाम्=मानवों के, वन्द्यैः=पूज्य, रघुपतिपदैः=रामचन्द्रजी के चरणों से, मेखलासु=मध्यभाग में, अङ्कितम्=चिह्नित, तुङ्गम्=अत्यन्त ऊँचे, प्रियसखम्=अपने प्रिय मित्र, अमुम्=इस रामगिरि, शैलम्=पर्वत का, आलिङ्ग्य=आलिगन कर, उससे, आपृच्छस्व=अनुमति ले लो। काले काले=समय समय पर, भवतः=तुम्हारे, संयोगम्=मिलने को, एत्य=प्राप्तकर, चिरविरहजम्=बहुत दिनों के वियोग से उत्पन्न, उष्णम्=गर्म, बाष्पम्=आँसू, त्यजतः=छोड़ते हुए; यस्य=जिसकी स्नेहव्यक्तिः=प्रेमाभिव्यक्ति; भवति=होती है।

भावार्थः—हे मेघ ! मानवाराध्यैः रामचन्द्रचरणविन्यासैः मेखलासु चिह्नितमेनं प्रियमित्रमत्युन्नतं रामगिरिमाश्लिष्य ततः अनुमितिं गृहाण। तव संयोगं प्राप्य समये समये यस्य गिरेः चिरवियोगत्पन्नाश्रुभिः स्नेहाभिव्यक्तिः भवति।

हिन्दी—हे मेघ ! मानवमात्र के पूज्य श्रीरामचन्द्रजी के चरणों से चिह्नित मध्यप्रदेश वाले इस अपने मित्र रामगिरि से मिलकर उससे (अलका जाने की) अनुमति ले लो। तुम्हारा संयोग पाकर, समय-समय पर, बहुत दिनों के वियोग के कारण उत्पन्न उष्ण अश्रुओं के द्वारा जिसकी स्नेहव्यक्ति हुआ करती है।

समासः—रघूणां पतिः=रघुपतिः (ष० तत्०) तस्य पदानि=रघुपतिपदम् (ष० तत्०) तैः। प्रियश्चासौ सखा=प्रियसखः, तम् (कर्मधारय)। चिरविरहात् जातः=चिरविरहजः तम् (पञ्चमी तत्०)। स्नेहस्य व्यक्तिः स्नेहव्यक्तिः (ष० तत्०)।

कोशः—मेखला श्रोणि–स्थानेऽद्रि कटके कटि-बन्धने, इति यादवः। आमन्त्रणसभाजने आप्रच्छनम्, इत्यमरः। उष्ण उष्मागमस्तपः, इत्यमरः। बाष्पं नेत्रजलोष्मणः विश्वः।

टिप्पणी— प्रियसखम्=प्रियश्चासौ सखा इस प्रकार कर्मधारय समास होने के पश्चात् 'राजाहःसखिभ्यष्टच्'-इस सूत्र से समासान्त टच् प्रत्यय करके "प्रिय सख" शब्द बना है उसी के द्वितीया विभक्ति का यह रूप है। **वन्द्यैः पुंसाम्**—यहाँ कृत्य प्रत्ययान्त "वन्द्य" के योग में पुंस शब्द से वैकल्पिक षष्ठी "कृत्यानां कर्तरि वा" से हुई है। पक्ष में तृतीया भी होती है। **आपृच्छस्व**—"आङ्" उपसर्गपूर्वक "प्रच्छ" धातु के लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन का यह रूप है। यद्यपि यह धातु परस्मैपदी है फिर भी आङ् उपसर्ग हो जाने के कारण "आङि नुप्रच्छ्योः" इस सूत्र से आत्मनेपद होकर यह रूप बना है। **काले काले**—यहाँ वीप्सा में "नित्यवीप्सयोः' इस सूत्र से द्विरुक्ति हुई। **स्नेह**—स्निह् धातु से भाव में घञ् प्रत्यय हुआ है। **व्यक्तिः**—'वि' उपसर्गपूर्वक 'अञ्ज्' धातु से क्तिन् प्रत्यय करके 'व्यक्तिः' यह रूप बना है। **चिरविरहजं मुञ्चतो बाष्पमुष्णम्**—बहुत दिनों के बाद मिलन होने पर मित्रों के आँखों से आँसू गिरना स्वाभाविक है। वर्षा ऋतु में पर्वत से 'भाप' उत्पन्न होता है। कवि ने इसी को उपरोक्त भाव से 'उत्प्रेक्षित' किया है॥ १२॥

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्—प्रयाणानुरूपं
सन्देशं मे तदनुजलद ! श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम्।
खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः स्रोतसां चोपभुज्य॥ १३॥

अन्वयः—हे जलद ! तावत् कथयतः त्वत् प्रयाणानुरूपं मार्गं श्रृणु, तदनु श्रोत्रपेयं मे सन्देशं श्रोष्यसि। यत्र खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य क्षीणः क्षीणः (सन्) स्रोतसां परिलघु पयश्च उपभुज्य गन्तासि॥ १३॥

व्याख्या—हे जलद ! हे मेघ ! तावत्=प्रथमम्, कथयतः=वदतः, यक्षादिति शेषः, त्वत्प्रयाणानुरूपम्=भवदीययात्रानुकूलम्, मार्गम्=अध्वानम्,

शृणु=आकर्णय, तदनु=पश्चात्, श्रोत्रपेयम्=कर्णप्रियम्, मे=यक्षस्य, सन्देशम्=वार्ताम्, श्रोष्यसि=श्रवणङ्करिष्यसि । यत्र=मार्गे, खिन्नः खिन्नः=वारंवारं क्षीणः शक्तिर्भूय, शिखरिषु=गिरिषु, पदं=पादम्, न्यस्य=स्थाप्य, शक्तिसंचयार्थं पर्वतेषु विश्रम्येत्यर्थः, क्षीणः क्षीणः=भूयानल्पशरीरः सन् स्रोतसां=पर्वतनदी-प्रवाहाणाम्, परिलघु=गौरवदोषहीनम्, पयश्च=जलञ्च, उपभुज्य=पीत्वा, गन्तासि=यास्यसि ।

शब्दार्थ—हे जलद !=हे मेघ ! तावत् कथयतः=कहते हुए (मुझसे), त्वत्प्रयाणानुरूपम्=अपनी यात्रानुकूल, मार्गम्=रास्ते को शृणु=सुन लो; तदनु=तत्पश्चात्, श्रोत्रपेयम्=कानों को अच्छा लगने वाला, मे=मेरा, सन्देशम्=सन्देश, श्रोष्यसि=सुनना । यत्र=जहाँ रास्ते में, खिन्नः खिन्नः=थक-थककर, शिखरिषु=पर्वतों पर, पदं=पैर, न्यस्य=रखकर, (शक्ति प्राप्त करने के लिए थोड़ा रुककर) क्षीणः क्षीणः=बार, बार दुबला होकर, स्रोतसाम्=पर्वतीय नदियों के, परिलघु=हल्के, पयश्च=जल को, उपभुज्य=पीकर, गन्तासि=जाने वाले हो ।

भावार्थः—हे मेघ ! प्रथमं मत्तः, निज-यात्रानुकूलं मार्गं शृणु तदनन्तरं कर्णप्रियं मत्सन्देशं श्रोष्यसि । यत्र मार्गे त्वं वारंवारं यात्राऽऽयासेन परिश्रान्तः सन् पर्वतेषु विश्रम्य तनुकायः (सन्) पर्वतीयनदीप्रवाहाणां जलमुपभुज्य यास्यसि ।

हिन्दी—हे मेघ ! पहले (तुम) मुझ से अपनी यात्रा के अनुकूल रास्ते का श्रवण कर लो, पश्चात् कर्णमधुर मेरे सन्देश को सुनना । जिस मार्ग में थक-थक कर पर्वतों पर कुछ विश्राम करके, अत्यन्त दुर्बल होकर पर्वतीय नदी के प्रवाहों का जल पीकर जाने वाले हो ।

समासः—जलं ददाति इति जलदः तत् सम्बुद्धौ हे जलद ! तव प्रयाण-स्त्वत्प्रयाणः (ष० तत्०) त्वत्प्रयाणस्यानुरूपम् त्वत्प्रयाणानुरूपम् (ष० तत्०) । श्रोत्राभ्यां पेयम्-श्रोत्रपेयम् (तृ० तत्०) ।

कोशः—अयनं वर्त्म मार्गाध्वः पन्थानः पदवी सृतिः, इत्यमरः । सन्देश-वाग्वाचिकं स्यात्, इत्यमरः । पयः क्षीरं पयोऽम्बु च, इत्यमरः ।

टिप्पणी—जलद !—जल उपपदपूर्वक दानार्थक दो धातु से 'आतोऽनुपसर्गे कः' इस सूत्र से क प्रत्यय होकर 'उपपदमतिङ्' इस सूत्र से समास होकर जलद यह रूप बनता है। **कथयतः**—यहाँ णिजन्त 'कथि' धातु से 'लटः शतृशानचावाऽप्रथमा समानाधिकरणे' से शतृ प्रत्यय होकर कथयत् शब्द से 'आख्यातोपयोगे' इस सूत्र से पञ्चमी विभक्ति हुई है। **प्रयाणम्**—'प्र' उपसर्ग पूर्वक प्रयाणार्थक 'या' धातु से करण में 'ल्युट्' प्रत्यय करके 'प्रयाण' यह शब्द निष्पन्न होता है। **तदनु**—यहाँ 'अनु' को 'अनुर्लक्षणे' इस सूत्र से कर्म प्रवचनीय संज्ञा होकर 'कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया' इस से द्वितीया विभक्ति हुई है। **श्रोत्रपेयम्**—श्रूयते आभ्यामिति श्रोत्रम्। श्रु धातु से औणादिक ष्ट्रन् प्रत्यय होकर 'श्रोत्र' शब्द बनता है। पातुं योग्यं पेयम्= पानार्थक पा धातु से 'अचो यत्' इस सूत्र से यत् प्रत्यय होकर 'ईद्यति' इस सूत्र से धातु के 'आकार' को ईत्व कर के 'पेयम्' यह रूप बनता है। **सन्देशम्**—'सम' उपसर्गपूर्वक दिश् धातु से घञ् प्रत्यय का विधान कर 'सन्देश' यह शब्द निष्पन्न होता है। **खिन्नः खिन्नः**—क्षीणः क्षीणः यहाँ नित्यार्थ में 'नित्यवीसयोः' इस सूत्र से द्वित्व हुआ है। **क्षीणः**—क्षयार्थक 'क्षि' धातु से 'क्त' प्रत्यय होकर 'क्षियो दीर्घात्' इस सूत्र से दीर्घ होकर नत्व, णत्वादि होकर क्षीण शब्द बना है। **परिलघु**—परितः लघुः परिलघु। यहाँ 'कुगतिप्रादयः' इस सूत्र से समास हुआ है। **उपभुज्य**—'उप' उपसर्ग पूर्वक भुज् धातु से क्त्वा प्रत्यय करके उसके स्थान में 'ल्यप्' आदेश करके उपभुज्य यह रूप बना है। **अलङ्कार**—यहाँ 'समासोक्ति' नामक अलंकार है ॥ १३ ॥

अद्रेः शृङ्गं हरति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभि-
र्दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः ।
स्थानादस्मात् सरस-निचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं
दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ॥१४॥

अन्वयः—अद्रेः शृङ्गं पवनः हरति किंस्वित् इति उन्मुखीभिः मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः चकितचकितं दृष्टोत्साहः सरसनिचुलात् अस्मात् स्थानात् पथि दिङ्नागानां स्थूलहस्तावलेपान् परिहरन् उदङ्मुखः खम् उत्पत ।

व्याख्या—अद्रेः=पर्वतस्य, शृङ्गम्=सानुम्, पवनः=वायुः, हरति किंस्वित् ?=कर्षति किम्, इति=एतादृश्याशंकयेति यावत्, उन्मुखीभिः=उन्नतास्याभिः, मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः=मूढसिद्धवधूभिः, चकितचकितम्=आश्चर्यसहितं यथा स्यात्तथा, दृष्टोत्साहः=प्रदर्शितोद्योगः, (सन्), सरसनिचुलात्=आर्द्रभूमिवेतसात्, अस्मात्=पुरोदृश्यमानात्, स्थानात्=आश्रमात्, पथि=अध्वनि, आकाशे इति भावः । दिङ्नागानां=दिग्गजानाम्, स्थूलहस्तावलेपान्=विशालशुण्डप्रहारान्, परिहरन्=परित्यजन्, उदङ्मुखः=उत्तराभिवदनः, (सन्) । खम्=आकाशम्, उत्पत=उद्गच्छ ।

शब्दार्थः—अद्रेः=पहाड़ की, शृंगम्=चोटी को, पवनः=वायु, हरति=ले जा रहा है, किंस्वित्=क्या ? (इस शंका से) उन्मुखीभिः=ऊपर को मुँह किये हुए, मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः=सीधी-सादी सिद्धों की वधुओं के द्वारा, चकितचकितम्=अत्यन्त आश्चर्य से, दृष्टोत्साहः=देखे गये उत्साह वाला, सरसनिचुलात्=गीले स्थल की वेतों से युक्त, पथि=रास्ते में, दिङ्नागानाम्=दिग्गजों के, स्थूलहस्तावलेपान्=लम्बी-लम्बी सूड़ों के प्रहारों को, परिहरन्=छोड़ता हुआ (उनसे बचता हुआ) उदङ्मुखः=उत्तर दिशा की ओर मुँह करके, खम्=आकाश में, उत्पत=उड़ जाना ।

भावार्थः—हे मेघ ! अत्यधिकवेगेन गच्छतः भवत उद्योगमवलोक्य 'पवनः पर्वतशृङ्गं हरति किम्' ? इत्याशङ्कया मूढाः सिद्धप्रियाः आश्चर्यान्विताः भविष्यन्ति । तत आर्द्रस्थलवेतसात् पुरोदृश्यमानादस्मात् स्थानादाकाशमार्गे अन्तरायाणां दिग्गजानां पीवरशुण्डप्रहारान् परित्यजनलकागमनार्थमुत्तराभिमुखीभूय गगनमुत्पत ।

हिन्दी—हे मेघ ! अत्यधिक वेग से जाते हुए, तुम्हें देखकर भोली-भाली सिद्धों की प्रियाएँ 'वायु पर्वत की चोटी उड़ा कर ले जा रहा है क्या' ? ऐसा सोचकर अत्यन्त आश्चर्यान्वित हो जाएँगी । तुम भीगे स्थलवेतसों से परिपूर्ण

इस आश्रम से गगनमार्ग में दिग्गजों की बड़ी-बड़ी सूड़ों के आक्रमण से गगन मार्ग में बचते हुए अलकापुरी जाने के लिए उत्तर की ओर मुँह करके ऊपर उड़ जाओ।

समासः—उन्मुखीभिः—उन्नतं मुखं यासां ताः उन्मुखाः ताभिः (बहुव्रीहिः) **मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः—**सिद्धानाम् अङ्गनाः सिद्धाङ्गनाः (ष० त०) मुग्धाश्च ताः सिद्धाङ्गना मुग्धसिद्धाङ्गनाः (कर्म०) ताभिः। **दृष्टोत्साहः**—दृष्ट उत्साहो यस्य स दृष्टोत्साहः (बहु०)। **सरस-निचुलात्**—सरसा निचुला यस्मिस्तत् सरसनिचुलम् (बहुव्री०) तस्मात्। **दिङ्नागानां**—दिशां नागाः=दिङ्नागाः (ष० तत्०)। तेषाम्। **स्थूलहस्तावलेपान्**—स्थूलाश्च ते हस्ताः=स्थूलहस्तावलेपान् (ष० त०)। **उदङ्मुखः**—उदक् मुखं यस्य स उदङ्मुखः (बहु०)।

कोशः—कूटोऽस्त्री शिखरं शृङ्गम्, इत्यमरः। वानीरे कविभेदे स्यान्निचुलः स्थल–वेतसे। शब्दार्णवः मतङ्गजो। गजो नागः कुञ्जरो वारणः करी इत्यमरः।

टिप्पणी—हरति—हरणार्थक हृधातु के वर्तमानकालिक लट् लकार के प्रथमपुरुष के एक वचन का रूप है (हृ+अ+ति)। **किंस्वित्**—"किम्" यह अव्यय है, और "स्वित्" यह अव्यय है—दोनों अव्यय मिलकर विकल्प और वितर्क इन दो अर्थों को प्रकाशित करते हैं। **उन्मुखीभिः—**यहाँ उन्मुख शब्द से स्त्रीत्व विवक्षा में "स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्" इस सूत्र से "ङीष्" प्रत्यय हुआ है। **चकितचकितम्—**चकितं यथा स्यात्तथा; यहाँ पर प्रकार अर्थ में "प्रकारे गुणवचनस्य" इस सूत्र से द्वित्त्व होकर 'कर्मधारयवदुत्तरेषु' इससे सु का लोप हो गया है। **दृष्टः**—दृश् धातु से 'क्त' प्रत्यय होकर दृष्टः यह शब्द निष्पन्न होता है। **स्थानात्—**'ष्ठा' गतिनिवृत्तौ इस धातु से ल्युट् प्रत्यय होकर स्थान यह रूप बना है, उस शब्द के पञ्चमी विभक्ति का यह रूप है। **परिहरन्—**'परि' उपसर्गपूर्वक 'हृ' धातु से वर्तमानकालिक लट् लकार के स्थान में 'शतृ' आदेश करके 'परिहरन्' यह रूप बनाया जाता

है। यहाँ महोपाध्याय मल्लिनाथ ने 'सरसनिचुलात्' और 'दिङ्नागानाम्' इन दो शब्दों के अधार पर उक्तार्थ के अलावे दूसरे अर्थ का भी प्रतिपादन किया है जो कि इस प्रकार है—सरसनिचुलात्=अर्थात् रसिक 'निचुल' नामक कालिदास के समकालीन कवि, जो कि दूसरे विरोधी कवियों द्वारा दिखाये गये दोषों का परिहरन करने वाले थे, ऐसे कवि के आश्रम से निर्दोष होने के कारण ऊँचे मुखवाले होते हुए मार्ग में अर्थात् सारस्वत मार्ग में विरोधी 'दिङ्नाग' जैसे आदरणीय कवि में हस्तावलेप=अर्थात् हस्तविन्यासपूर्वक दिखाये गये दोषों को दूर करते हुए अद्रेः=अर्थात् पर्वत की तरह ऊँचे दिङ्-नागाचार्य की शृङ्गम्=प्रधानता को परिहरति=नष्ट करता है क्या? इस कारण से सिद्धैः=महाकवियों द्वारा और अङ्गनाभिश्र=गुणशालिनी स्त्रियों द्वारा, दृष्टोत्साहः=उद्योग देखे जाते हुए, खम् उत्पत=आकाश में उड़ जाओ। परन्तु महोपाध्याय मल्लिनाथ जी का यह मत सर्वसम्मत नहीं है। दिङ्नागाचार्य कालिदास के विरोधी थे, यह भी एक विचारणीय विषय ही है। क्योंकि 'दिङ्नाग' नाम के अनेक विद्वान् हो गये हैं। बौद्ध दर्शन के विद्वान् वसुबन्धु के शिष्य 'दिङ्नाग' कालिदास के विरोधी इसलिए नहीं माने जा सकते, क्योंकि दोनों का समय भिन्न है। यदि यह कहा जाय कि कालभेद होने पर भी पूर्वकालिक विद्वान् के मत का खण्डन उत्तरकालिक कवि कर सकता है अतः दिङ्नाग का विरोधी महाकवि हैं, तो यह भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि कालिदास का काल आधुनिक वहुत से विद्वानों के मत में विक्रमीय प्रथम शताब्दी है जब कि दिङ्नागाचार्य का काल पाँचवीं शताब्दी है। और भी सम्प्रदायान्तर के विद्वान् के लिए आदरार्थक बहुवचनान्त का प्रयोग भी आपत्तिपूर्ण नहीं प्रतीत होता। अब समस्या यहाँ यह खड़ी हो जाती है कि—उत्तरदिशा जब एक है और एक दिशा में एक ही दिग्गज होता है तो महाकवि ने 'दिङ्नागानाम्' यह बहुवचनान्त का प्रयोग कैसे किया? तो इसका समाधान यह है कि एक उत्तर दिशा में एक उत्तर दिशा के अलावे अन्य दिग्गजों के स्थूल सूड़ों के प्रहार से बचते हुए ऐसा अर्थ करने से किसी प्रकार की आपत्ति नहीं आ सकती है॥ १४॥

रत्नच्छायाऽऽव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत् पुरस्तात्
वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुष्खण्डमाखण्डलस्य ।
येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः ॥ १५ ॥

अन्वयः—रत्नच्छायाऽऽव्यतिकर इव प्रेक्ष्यम् आखण्डलस्य एतत् धनुष्खण्डम् पुरस्तात् वल्मीकाऽग्रात् प्रभवति । येन ते श्यामं वपुः स्फुरितरुचिना बर्हेण गोपवेषस्य विष्णोः (श्यामं वपुः) इव अतितरां कान्तिम् आपत्स्यते ।

व्याख्या—(हे मेघ) रत्नच्छायाऽऽव्यतिकर इव = पद्मरागादिमणिप्रभासम्मिश्रणमिव, प्रेक्ष्यम् = दृश्यम्, आखण्डलस्य = इन्द्रस्य, एतत् = पुरोवर्ति, धनुष्खण्डम् = चापशकलम्, पुरस्तात् = अग्रतः, वल्मीकाग्रात् = नाकुविवरात्, प्रभवति = उद्गच्छति । येन = चापशकलेन, ते = तव "मेघस्येत्यर्थः" श्यामम् = कृष्णवर्णम्, वपुः = शरीरम्, स्फुरितरुचिना = धवलकान्तिना, बर्हेण = पिच्छेन, गोपवेषस्य = ग्वालवेषस्य, विष्णोः = हरेः "कृष्णस्येति यावत्", इव = यथा, अतितराम् = सातिशयम्, कान्तिम् = श्रियम्, आपत्स्यते = प्राप्स्यते ।

शब्दार्थः-(हे मेघ) रत्नच्छायाऽऽव्यतिकर इव = रत्नों की कान्तियों के सम्मिश्रण जैसा, प्रेक्ष्यम् = दीखने वाला, आखण्डलस्य = इन्द्र का, एतत् = यह (सामने), धनुष्खण्डम् = धनुष का टुकड़ा, पुरस्तात् = सामने, वल्मीकाग्रात् = बाँबी के अग्रभाग से, प्रभवति = निकल रहा है । येन = जिससे (धनुष के टुकड़े से) ते = तेरा, श्यामम् = काले रंग का वपुः = शरीर, स्फुरितरुचिना = उजली कान्ति वाले, बर्हेण = मोरपंख से, गोपवेषस्य = ग्वालवेषधारण किए हुए, विष्णोः = कृष्ण के, अतितराम् = अत्यधिक, कान्तिम् = शोभा को, आपत्स्यते = धारण करेगा ।

समासः-रत्नानां छाया=रत्नच्छायम् (ष० तत्०) आसमन्तात् व्यतिकरः आव्यतिकरः (उपपद० य०) रत्नच्छायस्य आव्यतिकरः=रत्नच्छायाऽऽव्यतिकरः

(ष० तत्०)। वल्मीकस्य अग्रम् = वल्मीकाग्रम् (ष० तत्०) तस्मात्। धनुषः खण्डम्=धनुष्खण्डम् (ष० तत्०)। गोपानां वेषः=गोपवेषः (ष० तत्०) तस्य।

कोशः—रत्नं मणिः द्वयोरश्मजातौ मुक्तादिकेऽपि च, इत्यमरः। आखण्डलः सहस्राक्षः, इत्यमरः। कृष्णे नीलाऽसितश्यामकालश्यामलमेचकाः, इत्यमरः। पिच्छ बर्हे नपुंसक, इत्यमरः। छाया सूर्यप्रिया कान्तिः, इत्यमरः।

भावार्थः—(हे मेघ !) पद्मरागादिमणीनां संमिश्रणमिव सुन्दरमेतदिन्द्रधनुः पुरस्तात् वल्मीकविवरादाविर्भवति, येन धवलकांतिसंवलितेन, मयूरपिच्छेन गोपवेषस्य कृष्णस्येव तावकीनमपि श्यामं शरीरं सातिशयं शोभासम्पन्नं भविष्यति।

हिन्दी—हे मेघ! पद्मराग आदि मणियों की प्रभा के सम्मिश्रण की तरह दर्शनीय इन्द्रधनुष सामने बांबी के अग्रभाग से निकल रहा है। जिस इन्द्रधनुष के टुकड़े से, श्याम रंग का यह तेरा शरीर, उज्ज्वल कांतिवाले मोरपंख से गोपवेषधारी कृष्ण के शरीर के समान अत्यधिक शोभा को प्राप्त करेगा।

टिप्पणी—रत्नच्छायम्=रत्नानां छाया रत्नच्छायम् (ष० तत्०)। यहाँ "छाया बाहुल्ये" इस सूत्र से नपुंसकलिङ्ग हुआ है। **व्यतिकरः**—"वि" और "अति" इन दो उपसर्गपूर्वक "कृ" धातु से "ऋदोरप्" इस सूत्र से "अप्" प्रत्यय करके गुणादि करके "व्यतिकर" यह रूप बना है। आसमंतात् व्यतिकर आव्यतिकरः यहाँ "कुगति प्रादयः" इस सूत्र से समास हुआ है। **प्रेक्ष्यम्**—"प्र" उपसर्गपूर्वक "इक्ष" धातु से "ण्यत्" प्रत्यय होकर "प्रेक्ष्यम्", यह शब्द बनता है। **धनुष्खण्डम्**—किसी-किसी पुस्तक में "धनुःखण्डम्" यह पाठ मिलता है जो कि पाणिनीय व्याकरण के अनुसार अशुद्ध है क्योंकि "नित्यं समासेऽनुचरपदस्थस्य" इस सूत्र से यहाँ नित्य मूर्धन्य षकार होता है।

इन्द्रधनुष के विषय में वृहत्संहिता में लिखा है—

सूर्यस्य विविधाः वर्णाः; पवनेन विघट्टिताः साभ्रे।
वियति धनुः संस्थाना ये दृश्यन्ते तदिन्द्रधनुः॥

पुरस्तात्—"पूर्वस्यां दिशि" इस विग्रह में 'पूर्वा' शब्द से प्रकृत्यर्थ में "दिक्शब्देभ्य" सप्तमी पञ्चमी प्रथमाभ्यो "दिग्देशकालेष्वस्ताति" इस सूत्र से "अस्ताति" प्रत्यय लाकर "अस्ताति च" इस सूत्र से पूर्वा के स्थान पर "पुर" यह आदेश करके "पुरस्तात्" यह रूप बना है। **अतितराम्**—"अतितर" शब्द से "किमेत्तिङव्ययधादाम्बद्रव्यप्रकर्षे" इस सूत्र से "आमु" प्रत्यय करके "अतितराम्" यह रूप बना है।

अलंकार—इस श्लोक के प्रथम चरण में एवं चतुर्थ में दो श्रौती उपमा निरपेक्ष रूप से है अतः यहाँ 'संसृष्टि' अलङ्कार है ॥१५॥

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः।
सद्यः सोरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं
किञ्चित्पश्चाद् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ॥१६॥

अन्वयः—कृषिफलं त्वयि आयत्तम् इति हेतोः भ्रूविलासानभिज्ञैः प्रीति-स्निग्धैः जनपदवधूलोचनैः पीयमानः सोरोत्कषण—सुरभि मालं क्षेत्रं सद्यः आरुह्य किञ्चित् पश्चात् भूयः लघुगतिः उत्तरेण एव व्रज।

व्याख्या—कृषिफलम्=सस्यादिकम्, त्वयि=मेघे, आयत्तम्=अधीनम्, इति=अस्मात्, हेतोः=कारणात्, भ्रूविलासानभिज्ञैः=कटाक्षवृत्त्यपरिचितैः, प्रीतिस्निग्धैः=स्नेहस्नपितैः। जनपदवधूलोचनैः=नीवृन्महिलानयनैः, पीयमानः=सादरमीक्षमाणः सीरोत्कषणसुरभि=लाङ्गलविदारणेन घ्राण-तर्पणं (यथा स्यात्तथा) मालम्=मालनामानम्, क्षेत्रम्=केदारम्, सद्यः=तत्क्षणम्, आरुह्य=आरोहणं विधाय, किञ्चित्पश्चात्=कियत्क्षणानन्तरन्, भूयः=पुनः, लघुगतिः=द्रुतगमनः (सन्) उत्तरेण एव=उत्तरमार्गेण एव, व्रज=गच्छ।

शब्दार्थ—कृषिफलम्=खेती का फल (धान आदि), त्वयि=तुम्हारे आयत्तम्=अधीन है, इति=इस, हेतोः=कारण से, भ्रूविलासानभिज्ञैः=भौंहों के विलास से अपरिचित (भोली-भाली), प्रीतिस्निग्धैः=स्नेह से ओत-

प्रोत, जनपदवधूलोचनैः=ग्रामीण महिलाओं की आँखों से; पीयमानः=आदर के साथ देखा जाता हुआ, सीरोत्कषणसुरभि=हल चलने के कारण जहाँ से भीनी सुगन्ध निकल रही है (ऐसे) मालक्षेत्रम्=माल नामक क्षेत्र पर (पठार पर), सद्यः=तुरत ही, आरुह्य=चढ़कर अर्थात् बरसकर, किञ्चित्-पश्चात्=कुछ देर बाद भूयः=फिर, लघुगतिः (सन्)=तेज गति वाला होकर, उत्तरेण एव=उत्तर दिशा की ओर ही, व्रज=जाना ।

हिन्दी—हे मेघ ! खेती का परिणाम (उपज) तुम्हारे अधीन है, इसलिए रास्ते के कटाक्ष विक्षेपादि से अपरिचित भोली-भाली ग्रामीण स्त्रियों की आँखों से आदरपूर्वक (सस्नेह) देखे जाते हुए तुम, जहाँ तुरत हल चलाया गया है ऐसे "माल" नामक पठारी भाग पर बरसकर उसे सुगन्धित बना कर कुछ समय के बाद फिर तेज गति से उत्तर मार्ग से ही चले जाना ।

समासः—भ्रुवः विलासः=भ्रूविलासः (ष० तत्०) तेभ्यः अनभिज्ञैः=भ्रूविलासानभिज्ञैः (ष० तत्०) । प्रीत्या स्निग्धैः=प्रीतिस्निग्धैः (तृ० तत्०) । जनपदस्य वधूः=जनपदवधूः तासां लोचनैः (ष० तत्०) । सीरैः उत्कषणम्–सीरोत्कषणम् (तृ० तत्०) तेन सुरभि यथा स्यात् तथा क्रियाविशेषणम् ।

कोशः–अधीनो निघ्न आयत्तः, इत्यमरः । नीवृज्जनपदो देशः, इत्यमरः । लाङ्गलं हलम्, गोदारणञ्च सीरोऽथः, इत्यमरः । सुरभिर्घ्राणतर्पणः, इत्यमरः । केदारः क्षेत्रमस्यतु, इत्यमरः । लघुक्षिप्रमरं द्रुतम्, इत्यमरः ।

भावार्थः—हे मेघ ! कृषेः फलं सस्यादिकं त्वदधीनमत एव स्वाभाविक-स्नेह-स्नपितैः भ्रूविकारप्रदर्शनादक्षैः ग्राम्यवधूभिः सादरमवलोक्यमानस्त्वं लाङ्गलोत्कर्षणेन सुगन्धियुक्तं मालनामकमुन्नतं प्रदेशं वृष्टया सनाथीकृत्य किय-त्कालानन्तरं द्रुतगत्या पुनरुत्तरेणैव मार्गेण गच्छ ।

टिप्पणी—**त्वय्यायत्तम्**—यहाँ अधिकार विवक्षा में "युष्मद्" शब्द से सप्तमी हुई है । "आ" (ङ्) उपसर्गपूर्वक "गम्" धातु से "क्त" प्रत्यय करके आयतम् यह रूप बनता है । **उत्तरेण**—यहाँ "प्रकृत्यादिभ्यः उपसंख्यानम्" से तृतीया हुई है ॥ १६ ॥

त्वामासार—प्रशमित—वनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः ।
न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः ॥१७॥

अन्वयः—आम्रकूटः सानुमान् आसार–प्रशमित–वनोपप्लवम् अध्वश्रम-परिगतं त्वाम् साधु मूर्ध्ना वक्ष्यति । क्षुद्रः अपि संश्रयाय मित्रे प्राप्ते प्रथम-सुकृताऽपेक्षया विमुखः न भवति । यः तथा उच्चैः किं पुनः ।

व्याख्या—आम्रकूटः=एतन्नामकः, सानुमान्=पर्वतः, आसार–प्रशमित-वनोपप्लवम्=धारासंपातापसारितदावानलं, अध्वश्रमपरिगतम्=मार्गपरिश्रम-क्लान्तम्, त्वाम्=भवन्तं मेघमिति यावत्; साधु=समीचीनम्, मूर्ध्ना=शिरसा, शृङ्गेण, वक्ष्यति=वोढा; क्षुद्रः अपि=साधारणोऽपि, संश्रयाय=आश्रयाय, मित्रे=सख्यौ, प्राप्ते=आगते (सति) । प्रथमसुकृतापेक्षया=कृतपूर्वोपकारसंस्मरणेन, विमुखः=पराङ्मुखः न भवति, यः=आम्रकूटः पर्वतः, तथा उच्चैः=तथाविधो महान् (सः), किं पुनः=विमुखो भविष्यति किम् ? कदापि न भविष्यति ।

शब्दार्थ—आम्रकूटः=आम्रकूट नाम का, सानुमान्=पर्वत, आसार-प्रशमितवनोपप्लवम्=मूसलाधार वृष्टि से दावाग्नि को शान्त करनेवाले, अध्व-श्रमपरिगतम्=मार्ग के परिश्रम से थके हुए, त्वाम्=तुम को, साधु=अच्छी तरह, मूर्ध्ना=शिर पर (चोटी पर) वक्ष्यति=धारण करेगा । क्षुद्रोऽपि=साधारण जन भी, संश्रयाय=आश्रय के लिए, मित्रे=मित्र के; प्राप्ते=आने पर, प्रथम-सुकृतापेक्षया=पहले के किये हुए उपकारों को याद कर, विमुखः न=मुँह नहीं मोड़ता, भवति=है । यः=जो आम्रकूट पर्वत, तथा उच्चैः=वैसा ऊँचा है । कि पुनः=क्या वह मुँह मोड़ेगा ? कभी नहीं मुँह मोड़ेगा ।

भावार्थः—हे मेघ ! धारासम्पातेन प्रशमित–वनाग्नि मार्गजन्य–परिश्रम-क्लान्तं त्वामाम्रकूटोऽद्रिः शिखरेण सम्यक् प्रकारेण धारयिष्यति । (यतोहि)

नीचोऽपि आश्रयाय गृहागतं मित्रमवलोक्य पूर्वकृतोपकारं स्मृत्य पराङ्मुखो न भवति, यः आम्रकूटपर्वतस्तादृशो महान् स कथं भविष्यति। नैव भविष्यतीतिभावः।

हिन्दी—हे मेघ ! मूसलाधार वृष्टि के द्वारा दावाग्नि को बुझाने वाले, मार्ग के परिश्रम से थके हुए तुमको आम्रकूट पर्वत शिखर पर धारण करेगा। (क्योंकि) छोटे भी (जन) आश्रय के लिए मित्र के आने पर पहले के उपकारों को याद कर मुँह नहीं मोड़ते तो फिर जो आम्रकूट उतना महान् है वह मुँह मोड़ेगा क्या ? कभी नहीं मुँह मोड़ेगा।

समासः—आम्राणां कूटो यत्र स आम्रकूटः (बहुव्रीहिः)। आसारेण प्रशमितो वनोपप्लवो येन तम् आसारप्रशमितवनोपप्लवम् (बहुव्रीहिः)। अध्वनः श्रमः = अध्वश्रमः (ष० तत्०) तेन परिगतस्तम् (तृ० तत्०)।

कोशः—कूटोऽस्त्री शिखरं श्रृङ्गम्, इत्यमरः। धारा–सम्पात–असारः, इत्यमरः। सरणिर्वर्त्म मार्गाध्व, इत्यमरः। क्षुद्रो दरिद्रः कृपणे, इति यादवः। अथ मित्रं सखा सुहृत्, इत्यमरः। पुंस्यादि पूर्वपौरस्त्य प्रथमाद्या, इत्यमरः।

टिप्पणी—आम्रकूटः—यहाँ पर कुछ टीकाकार 'आम्राः कूटेषु यस्य सः' इस प्रकार व्यधिकरण बहुव्रीहि समास मानते हैं। **सानुमान्**—सानवः सन्ति यस्मिन् ऐसे विग्रह में 'सानु' शब्द से 'मतुप्' प्रत्यय करके सानुमान् यह रूप बना है। **वक्ष्यति**—'वह' धातु के 'लृट्' लकार के प्रथम पुरुष के एक वचन का रूप है (वह+स्य+ति)। **संश्रयाय**—'सम्' उपसर्गपूर्वक सेवार्थक 'श्रिञ्' धातु से 'एरच्' इस सूत्र से भाव में अच् प्रत्यय करके 'संश्रयः' यह रूप बनता है, यहाँ 'तुमर्थाच्च भाववचनात्' से चतुर्थी हुई है।

अलंकार—यहाँ अर्थान्तरन्यास एवं अर्थापत्ति इन दोनों अलंकारों के अङ्गाङ्गिभाव होने से 'सङ्कर' नामक अलङ्कार है ॥ १७ ॥

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रैः
स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे।

नूनं यास्यत्यमर— मिथुन—प्रेक्षणीयामवस्थां
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः ॥१८॥

अन्वयः—परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रैः छन्नोपान्तः अचलः स्निग्ध-वेणी-सवर्णे त्वयि शिखरम् आरूढे, मध्येश्यामः शेषविस्तारपाण्डुः भुवः स्तन इव अमरमिथुन–प्रेक्षणीयाम्, अवस्थां नूनं यास्यति ।

व्याख्या—(हे मेघ !) परिणतफलद्योतिभिः=पक्वफलशोभिभिः कान-नाम्रैः=वन्यचूतैः, छन्नोपान्तः=आवृतपार्श्वप्रदेशः, अचलः=पर्वतः आम्रकूटः इत्यर्थः । स्निग्धवेणी-सवर्णे=चिक्कणकेशपाशतुल्यवर्णे, त्वयि=मेघे, शिखरम्=शृङ्गम्, आरूढे=आरोहणंकृते सति, मध्येश्यामः=कृष्णान्तरः, शेषविस्तार-पाण्डुः=मध्यभागातिरिक्तपीतवर्णः, भुवः=पृथिव्याः, स्तनः=कुचः, इव=यथा, अमरमिथुनप्रेक्षणीयाम्=देवयुगलावलोकनीयाम्, अवस्थाम्=दशाम्, नूनम्=अवश्यम् यास्यति=प्राप्स्यति ।

शब्दार्थः—हे मेघ ! परिणतफलद्योतिभिः=परिपक्वफलों से चमकनेवाले, काननाम्रैः=जंगल के आमों से, छन्नोपान्तः=ढके हुए, पार्श्वभागवाला, अचलः=आम्रकूटपर्वतः, स्निग्धवेणी-सवर्णे=चिकने केशपाश की तरह रंग-वाले, त्वयि=तुम्हारे, शिखरम्=शिखर पर, आरूढे=चढ़ जाने पर, मध्ये-श्यामः=बीच में काला, शेषविस्तारपाण्डुः=और वितृत भाग में पीला, भुवः=पृथ्वी के, स्तन इव=स्तन की तरह, अमरमिथुनप्रेक्षणीयाम्=देवदम्पतियों के द्वारा दर्शनीय, अवस्थाम्=दशा को, नूनम्=अवश्य ही, यास्यति=प्राप्त करेगा ।

भावार्थः—(हे मेघ) पक्वफलकान्तिभिः वनाम्रैराच्छादितपार्श्वभागः आम्रकूटोऽद्रिः कृष्णवर्णे त्वयि मेघे शृङ्गे सति मध्ये कृष्णः अन्तभागेषु पाण्डुरः पृथिव्याः स्तन इव देवदम्पतीनां दर्शनीयामवस्थां निश्चयमेव यास्यति ।

हिन्दी—हे मेघ ! चिकनी वेणी के समान काले रंगवाले तुम जब आम्रकूट के शिखर पर चढ़ जाओगे, तब वह पर्वत पके हुए फलों से चमकनेवाले जंगली

आमों से घिरे हुए पार्श्व भागवाला देवदम्पतियों के देखने योग्य अवश्य बन जायेगा, जैसा कि बीच में काला और शेष विस्तृत भाग में पीला-सा पृथ्वी का स्तन हो।

समासः—स्निग्धाया वेणी तस्याः सदृशः वर्णः यस्य सः स्निग्धवेणी-सवर्णः तस्मिन् (बहुव्रीहिः)। काननेषु भवाः आम्राः काननाम्राः (मध्यमपद-लोपी) तैः। परिणतैः फलैः द्योतन्ते तैः (तृ० तत्०)। छन्नाः उपान्ताः यस्य सः छन्नोपान्तः (बहुव्रीहि)। शेषे विस्तारे पाण्डुः शेषविस्तारपाण्डुः (स० त०)।

कोशः—पक्वं परिणतम्, इत्यमरः। कृष्णे नीलाऽसित—श्यामः, इत्यमरः। चिक्कणं मसृणं स्निग्धम्, इत्यमरः। वेणी तु केशबन्धे जलस्रुतौ, इति यादवः। हरिणः पाण्डुरः पाण्डुः, इत्यमरः। मिथुनं तु द्वयो राशिभेदे स्त्रीपुंस—युग्मके, इति मेदिनी।

टिप्पणी—छन्नः—'छद्' इस धातु से क्त प्रत्यय करके छन्न इस तरह का रूप बनता है। **स्निग्धा**—'स्निह्' धातु से 'क्त' प्रत्यय करके स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् करके स्निग्धा यह रूप बनता है। **सवर्णः**—समानो वर्णः सवर्णः यहाँ 'ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभि' इत्यादि सूत्र से समान के स्थान पर 'स' ऐसा आदेश किया गया है। **आरूढः**—'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'रुह्' धातु से 'क्त' प्रत्यय करके आरूढ़ ऐसा रूप बनता है। **अमरमिथुन-प्रेक्षणीयाम्**—यहाँ अमरमिथुनानां प्रेक्षणीया ताम् 'कृत्यानां कर्तरि वा' इस सूत्र से विकल्प से 'अमर मिथुन' शब्द से षष्ठी विभक्ति होती है तब षष्ठी समास किया गया है॥ १८॥

स्थित्वा तस्मिन् वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्तं
तोयोत्सर्गद्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः।
रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
भक्तिच्छेदैरिव विरचिता भूतिमङ्गे गजस्य॥ १९॥

अन्वयः—(हे मेघ !) वनचरवधूभुक्तकुञ्जे, तस्मिन् मुहूर्त्तं स्थित्वा,

तोयोत्सर्गद्रुततरगतिः तत्परं वर्त्मतीर्णः उपल–विषमे विन्ध्यपादे विशीर्णाम् रेवाम् गजस्य अङ्गे भक्तिच्छेदैः विरचिताम् भूतिम् इव द्रक्ष्यसि।

व्याख्या—(हे मेघ !) वनचर-वधू-भुक्त-कुञ्जे = किरात-कामिनी-भुक्तलता-सदने, तस्मिन् = आम्रकूटे (पर्वते) मुहूर्तम् = किञ्चित्क्षणम्, स्थित्वा = विरम्य, तोयोत्सर्गद्रुततरगतिः = जलवर्षणेनातिशीघ्रगमनः तत्परम् = आम्रकूटानन्तरम्, वर्त्म = मार्गम्, तीर्णः = अतिक्रान्तः सन्, उपलविषमे = पाषाणनिम्नोन्नते, विन्ध्यपादे = विन्ध्याचल–प्रत्यन्तपर्वते, विशीर्णाम् = प्रसृताम्, रेवाम् = नर्मदाम्, गजस्य = हस्तिनः, अङ्गे = शरीरे, भक्तिच्छेदैः = रेखा-भंगिभिः, विरचिताम् = निर्मिताम्, भूतिम् = मातङ्गश्रृङ्गारं, इव = यथा, द्रक्ष्यसि = विलोकयिष्यसि।

शब्दार्थः—(हे मेघ !) वनचरवधूभुक्तकुञ्जे = किरात-कामिनियों द्वारा उपभुक्त लताकुञ्जों वाले, तस्मिन् = उस, आम्रकूट पर्वत पर, मुहूर्त्तम् = कुछ देर, स्थित्वा = ठहरकर, तोयोत्सर्गद्रुततर-गतिः = जल बरसाने के कारण शीघ्र-गमनवाले (तुम), तत्परम् = आम्रकूट के आगे, वर्त्म = रास्ते को, तीर्णः = पार करके, उपलविषमे = पत्थरों के कारण ऊँची-नीची, विन्ध्यपादे = विन्ध्या-चलपर्वत की तलहटी में, विशीर्णाम् = फैली हुई, रेवाम् = नर्मदा को, गजस्य = हाथी के, अङ्गे = अङ्ग में, भक्तिच्छेदैः = चित्रकारी के द्वारा, विरचिताम् = बनायी गई, भूतिम् = सजावट, इव = की तरह, द्रक्ष्यसि = देखोगे।

भावार्थः—हे मेघ ! आम्रकूट—पर्वतस्य किरातकामिनीभिः कृतसम्भोगे लतागृहे किञ्चित्क्षणं विश्रम्य तत्र जलवर्षणेन द्रुतगतिः सन् आम्रकूटात्परं मार्गमतिक्रम्य प्रस्तरबहुलान्निम्नोन्नत-भूमौ विन्ध्याद्रेस्तटे विस्तीर्णां नर्मदां गज–मस्तके रचनाभङ्गिभिर्विरचितां भस्मरेखामिवावलोकयिष्यसि।

हिन्दी—हे मेघ ! वनचर वधुओं के द्वारा उपभुक्त लताकुञ्ज वाले उस आम्रकूट पर्वत पर कुछ देर विश्राम करके पानी बरसने के कारण शीघ्र गति से आम्रकूट के आगे के मार्ग को पार करके ऊँचे-नीचे पथरीले बिन्ध्याचल

प्रान्त में विस्तृत नर्मदा नदी को, हाथी के शरीर में, रचना-विशेष के माध्यम से बनायी गयी शृङ्गार-रेखा की तरह देखोगे।

समासः—वने चरन्तीति वनचराः (उपपद तत्०) तेषां वध्वः, ताभिः भुक्ताः कुञ्जाः यस्मिन्, तस्मिन् (बहुव्रीहि)। तोयस्य उत्सर्गः=तोयोत्सर्गः (ष० तत्०) तेन द्रुततरगतिः=तोयोत्सर्गद्रुततरगतिः (तृ० तत्) द्रुततरा गतिर्यस्य स द्रुततरगतिः (बहुव्रीहिः)। तस्मात्परं=तत्परम् (सुप्सुपेति-समासः)। उपलेन विषमः उपलविषमः तस्मिन् (तृ० तत्०)। विन्ध्यस्य-पादे विन्ध्यपादे (ष० तत्०)।

कोशः—निकुञ्जकुञ्जौ वा क्लीबे लतादि पिहितोदरे, इत्यमरः। मुहूर्त्त-मल्पकाले स्याद् घटिका द्वितयेऽपि च, इति शब्दार्णवः। पादाः प्रत्यन्तपर्वतः, इत्यमरः। पादो ब्रघ्ने तुरीयांशे शैलप्रत्यन्तपर्वते, इति मेदिनी। रेवा तु नर्मदा सोमोद्भवा मेकलकन्यका, इत्यमरः। भूतिर्मातङ्ग-शृङ्गारे जातौ भस्मनि सम्पदि, इति विश्वः।

टिप्पणी—वनचरवधूभुक्त०—यहाँ वन उपपदपूर्वक गत्यर्थक "चर्" धातु से "उपपदमतिङ्" इस सूत्र से समास करके "चरेष्टः" इस सूत्र से "ट" प्रत्यय करके "वनचर" शब्द बनाया जाता है। "तत्पुरुषे कृति बहुलम्" से वैकल्पिक अलुक् समास करके "वनेचर" ऐसा रूप भी बनता है। **द्रुततर-गतिः**—अतिशयेन द्रुता=द्रुततरा तथा भूता गतिर्यस्य स द्रुततरगतिः। यहाँ "द्रुता" शब्द से "द्विवचन-विभज्योपपदे तरबीयसुनौ" इस सूत्र से "तरप्" प्रत्यय किया गया है एवं स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् करके "द्रुततरा" यह रूप निष्पन्न होता है। विन्ध्य पर्वत भी सात कुल पर्वतों में से एक हैं, जैसे—

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः॥

नर्मदा भी सात पूज्य नदियों में एक है। जैसा कि स्नान के समय लोग बोला करते हैं—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

अलङ्कार—यहाँ समासोक्ति एवं श्रौती उपमा के अङ्गाङ्गिभाव से रहने के कारण संकर अलङ्कार है ॥ १९ ॥

तस्यास्तिक्तैर्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टि-
र्जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः ।
अन्तःसारं घन ! तुलयितुं नानिलः शक्ष्यति त्वां
रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ॥ २० ॥

अन्वयः—हे घन ! वान्तवृष्टिः तिक्तैः वनगजमदैः वासितम् जम्बूकुञ्ज-प्रतिहतरयम् तस्याः तोयम् आदाय गच्छेः । अन्तःसारम् त्वाम् अनिलः तुलयितुं न शक्ष्यति हि रिक्तः सर्वः लघुः भवति पूर्णता गौरवाय ।

व्याख्या—हे घन ! हे जलद ! वान्तवृष्टिः=उद्गीर्णवर्षः, (सन्) तिक्तैः =कटुभिः तिक्तरसान्वितैश्चेत्यर्थः, वनगजमदैः=काननहस्तिदानवारिभिः, वासितम्=सुगन्धितम्, जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयम्=जाम्बनिकुञ्जप्रतिबद्धजवम्= तस्याः=नर्मदायाः, तोयम्=जलम्; आदाय=नीत्वाः, गच्छेः=व्रज । अन्तः-सारम्=अन्तःस्थितत्वम् बलमिति यावत् जलपरिपूर्णमितिभावः । त्वाम्= मेघम्, अनिलः=वायुः, तुलयितुम्=मापयितुम्; न शक्ष्यति=न समर्थो भवि-ष्यति, हि=निश्चयेन, रिक्तः=निःसारः शून्य इत्यर्थः, सर्वः=सकलः, लघुः= न्यूनः, हेय इति भावः; भवति=वर्तते, पूर्णता=सारवत्ता, गौरवाय=गरिम्णे भवति ।

शब्दार्थः—हे मेघ ! वान्तवृष्टिः=जल बरसाये हुए, तिक्तैः=सुगन्धित वनगजमदैः=जंगली हाथियों के मदजल से, वासितम्=सुगन्धित, जम्बूकुञ्ज-प्रतिहतरयम्=जामुन के निकुञ्ज से रोके हुए वेगवाले, तोयम्=जल को, आदाय=लेकर, गच्छेः=जाना । अन्तःसारम्=भीतर से शक्तिशाली, त्वाम्= तुझ को, अनिलः=वायु, तुलयितुम्=हिलाने में, न शक्ष्यति=समर्थ नहीं

होगा, हि=क्योंकि, रिक्तः=भीतर से खाली, सर्वः=सभी, लघुः=हल्का (हेय) "और" पूर्णता=गुरुता, गौरवाय=गौरव के लिए, भवति=होता है।

भावार्थः—हे मेघ ! तत्र जलवर्षणानन्तरं सुगन्धिभिर्वन्यगजानां दानवारिभिः सुवासितं जम्बूनिकुञ्जावरुद्धवेगं नर्मदाजलं गृहीत्वा व्रज ! जलवत्वादन्तःसारं त्वां पवनः प्रकम्पयितुं समर्थो न भविष्यति, यतो हि निःसारः सर्वोऽपि हेयः भवति, केवलं सारवत्तैव गौरवास्पदं भवति।

हिन्दी—हे मेघ ! वहाँ जल बरसाने के बाद जंगली हाथियों के सुगन्धित मदजल से सुवासित जामुनों के निकुञ्जों के द्वारा रोके गये वेग वाले नर्मदा नदी के जल को लेकर (आगे) जाना। भीतर से शक्तिशाली तुझे वायु हिला नहीं सकेगा, क्योंकि प्रत्येक वस्तु जो भीतर से निःसार हो, हल्की होती है एवं भरापन गुरुता के लिए होता है।

समासः—वान्ता वृष्टिर्येन स वान्तवृष्टिः (बहुव्रीहिः)। वनस्य गजा वनगजाः (ष० तत्०) तेषां मदैः वनगजमदैः (ष० तत्०)। जम्बूनां कुञ्ज-जम्बूकुञ्जः (ष० तत्०) तैः प्रतिहतो रयः यस्य तम् जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयम् (बहुव्रीहि)। अन्तः सारो यस्य तम् अन्तःसारम् (बहुव्रीहिः)।

कोशः—वृष्टिर्वर्षम्, इत्यमरः। तिक्तो रसे सुगन्धे च, इति विश्वः। जम्बू स्त्री जम्बुजाम्बवम्, इत्यमरः। सारो बले स्थिरांशे च, इत्ययरः, सारो बले मज्जनि च स्थिरांशे, न्याये च नीरे च घने सारम्, इति विश्वः। भवेत् प्रतिहतं द्विष्टे प्रतिस्खलितरुद्धयः, इति मेदिनी। मदो रेतसि कस्तूर्यां गर्वे हर्षेभदानयोः, इति विश्वः।

टिप्पणी—(टु) वम् धातु से कर्म में क्त प्रत्यय करके स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् करके 'वान्ता' ऐसा प्रयोग बनता है। यहाँ "वम्" धातु का "उगलना" अर्थ होने पर भी गौणवृत्ति का आश्रय लेने के कारण जुगुप्सा व्यंजक अश्लीलता नहीं आ पायी है। क्योंकि "निष्ठ्यूतोद्गीर्णवांतादिगौणवृत्तिव्यपाश्रयम्। अति सुन्दरमन्यत्र ग्राम्यकक्षां विगाहते।" ऐसा दण्डी लिखते हैं। **आदाय**—आङ्उप-

सर्मपूर्वक "दा" धातु से क्त्वा प्रत्यय करके उसके स्थान पर ल्यप् करके उक्त रूप निष्पन्न होता है। **गच्छेः**—यहाँ "विधिनिमन्त्रणामन्त्रणादि" सूत्र से विधि में लिङ् है। **तुलयितुम्**—यहाँ "तुल" धातु से "तत्करोति तदाचष्टे" इस सूत्र से "णिच्" प्रत्यय करके पश्चात् "समानकर्तृकेषु तुमुन्" इस सूत्र से "तुमुन्" प्रत्यय किया गया है। **शक्ष्यति**—"शक्" धातु के लृट् लकार के प्रथमपुरुष के एकवचन का रूप है। (शक्+स्य+ति)। प्रस्तुत श्लोक का महोपाध्याय मल्लिनाथजी ने एक दूसरा भी अर्थ निकाला है, जैसे कि आयुर्वेद-शास्त्रानुसार वमन के बाद मानव को कसैला, हल्का और चरपरा जल पीना चाहिए ताकि वायुविकार न होवे, इसलिए हे मेघ ! तुम जल वमन करने के पश्चात् सुगन्धित एवं जामुन के कुञ्ज में रुके हुए प्रवाह के कारण कसैला नर्मदा का जल पीकर जाना, तब तुम्हें पवन नहीं हिला सकेगा, अन्यथा वमन के कारण भीतर से निःसार तुम्हें पवन हिला देगा, क्योंकि भीतर से शून्य सभी हल्के होते हैं, पूर्णता ही गौरव के लिए होती है।

अलङ्कारः—यहाँ तृतीयचरण के विशेष अर्थ का समर्थन चतुर्थचरण के सामान्य अर्थ से किया गया है, अतः यहाँ "अर्थान्तरन्यास" नामक अलङ्कार है॥ २०॥

नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्धरूढै-
राविर्भूत-प्रथम-मुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम्।
जग्ध्वाऽरण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः
सारङ्गास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम्॥ २१॥

अन्वयः—अर्धरूढैः केसरैः हरितकपिशम् नीपम् दृष्ट्वा अनुकच्छम् आविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीः च जग्ध्वा अरण्येषु उर्व्याः अधिकं सुरभिम् गन्धम्, च आघ्राय सारंगाः जललवमुचः ते मार्गम् सूचयिष्यन्ति।

व्याख्या—(हे मेघ !) अर्धरूढैः=अर्धोत्पन्नैः, केसरैः=किञ्जल्कैः, हरितकपिशम्=हरिद्धूसरम्, नीपम्=कदम्बम्, दृष्ट्वा=विलोक्य, अनुकच्छम्=

मन्वनूपम् जलप्रायदेशसमीपे इत्यर्थः, आविर्भूत-प्रथममुकुलाः=सञ्जातपूर्व-कुड्मलाः, कन्दलीश्च=भूकन्दलीश्च, जग्ध्वा=भुक्त्वा, अरण्येषु=काननेषु, उर्व्याः=पृथिव्याः, अधिकसुरभिम्=उत्कट-सुगन्धियुक्तम्, आघ्राय=घ्रात्वा, सारङ्गाः=कुरङ्गाः, जललवमुचः=सलिलबिन्दुवर्षकः, ते=मेघस्य, मार्गम्=पन्थानम्, सूचयिष्यन्ति=निर्देशं करिष्यन्ति ।

शब्दार्थः—(हे मेघ !) अर्धरूढैः=आधे निकले हुए, केसरैः=रेशों से, हरितकपिशम्=हरे और धूसर रंगवाले, नीपम्=कदम्ब को, दृष्ट्वा=देखकर, अनुकच्छम्=दलदल में, आविर्भूतप्रथममुकुलाः=जिनमें पहले-पहले कलियाँ प्रकट हुई हैं, कन्दलीः=केले के समान पुष्प वृक्षों को, जग्ध्वा=खाकर, अरण्येषु=वनों में, उर्व्याः=पृथ्वी की, अधिक-सुरभिम्=अत्यन्त सुरभित, गन्धम्=सुगन्ध को, आघ्राय=सूँघकर, सारंगाः=मृग, हाथी, भ्रमर, जललवमुचः=जलबिंदु बरसाने वाले, ते=तेरे, मार्गम्=मार्ग को, सूचयिष्यन्ति=सूचित करेंगे ।

भावार्थः—(हे मेघ !) हस्तिभ्रमरमृगाः अर्धोत्पन्नकेसरैः हरितधूसरं कदम्बकुसुमं विलोक्य, जलप्रायदेशे उत्पन्नपूर्वकुड्मलाः भूमिकन्दलीश्च भुक्त्वा, अरण्येष्वत्यधिकसुरभि भूमिगन्धमाघ्राय सलिलबिंदु-त्यजतस्ते पन्थानमनुमापयिष्यति ।

हिन्दी—हे मेघ ! हाथी, मृग और भौंरे अर्धविकसित केसर से हरे-धूसर रंगवाले कदम्बपुष्प को देखकर, दल दल से पहले-पहले जिनमें कलियाँ प्रकट हो रही हैं, ऐसे भूमिकन्दलियों के नये कुड्मलों को खाकर, जंगलों में अधिक सुगन्धित पृथ्वी के सुगंध को सूँघकर, जलबिंदु बरसाने वाले तेरे मार्ग को सूचित करेंगे ।

समासः—हरितश्च तत् कपिशम्=हरितकपिशम् (कर्मधारयः) । कच्छस्य समीपे अनुकच्छम् (अव्ययीभावः) । आविर्भूताः प्रथमा मुकुलाः यासां ताः आविर्भूतप्रथममुकुलाः (बहुव्रीहिः) । साराण्यंगानि येषां ते (मृगादयः) (बहुव्रीहिसमासः) ।

कोशः—पलाशो हरितो हरित् । श्यावः स्यात् कपिशो धूम्रधूमिलो कृष्णलोहिते, इत्यमरः । अथ स्थलकदम्बके । नीपः स्यात्पुलके, इति शब्दार्णवः । जलप्रायमनूपं स्यात्पुंसि कच्छस्तथाविधः, इत्यमरः । कुड्मलो मुकुलोऽस्त्रियाम्, इत्यमरः । द्रोणपर्णी स्निग्ध-कन्दा कन्दली भूकदल्यपि, इति शब्दार्णवः । सारंगश्चातके भृंगे कुरङ्गे च मतङ्गजे, इति विश्वः ।

टिप्पणी-सारङ्गाः—साराण्यंगानि येषां ते सारङ्गाः ऐसा समास किया जाता है, परन्तु यहाँ सवर्ण दीर्घ न होकर शकन्ध्वादि गण में पाठ होने के कारण "शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्" इससे पररूप होकर "सारंग" शब्द सिद्ध होता है । "सारंगः पशुपक्षिणोः" इसके अनुसार सारंग शब्द का अर्थ हाथी, हिरण, भौंरा, चातक आदि किया जाता है । **जग्ध्वारण्येष्वधिक०**—इसके स्थान पर कोई-कोई टीकाकार "दग्ध्वारण्येष्वधिकसुरभिम्" ऐसा पाठ मानते हैं । इस विषय में उनका कहना है कि इस श्लोक में दो बार ही केवल "च" शब्द का प्रयोग किया गया है, एक दूसरे पाद में तथा दूसरा, तीसरे पाद में । पहला च नीपं और आघ्राय को जोड़ता है । ऐसी दशा में यदि जग्ध्वारण्ये० को शुद्ध पाठ माना जाय तो दृष्ट्वा, जग्ध्वा, और आघ्राय तीनों एक ही साथ आ जाते हैं एवं उनको जोड़ने वाला केवल दो च ही रह जाते हैं तथा जग्ध्वा का कर्म इससे बहुत दूर हो जाता है । परन्तु उचित तो "जग्ध्वारण्ये०" आदि पाठ ही है क्योंकि कवि ने यहाँ सारंग शब्द का प्रयोग इसलिए किया है कि उसके तीन कर्ता अभिप्रेत हैं हाथी, भौंरे और हरिण इसलिए पूर्वकालिक क्रियाएँ भी तीन रहनी चाहिए, एक मूल क्रिया है और दो क्रियाओं के जोड़ने के लिए दो "च" का रहना उचित है ।

अलङ्कार—यहाँ वृष्टि का अनुमान किया गया है इसलिए यहाँ अनुमानालंकार है ॥ २१ ॥

अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरांश्चातकान् वीक्षमाणाः
श्रेणीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तो बलाकाः ।
त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धाः
सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि ॥ २२ ॥

अन्वयः—अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरान् चात्कान् वीक्षमाणाः श्रेणीभूताः बलाकाः परिगणनया निर्दिशन्तः सिद्धाः स्तनितसमये सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि आसाद्य त्वाम् मानयिष्यन्ति ।

व्याख्या—अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरान् = वारिकणग्रहणपटून्, चातकान् = सारंगान्, वीक्षमाणः = अवलोक्यमानः, श्रेणीभूताः = पंक्तिबद्धाः, बलाकाः = वकपंक्तीः, परिगणनया = एका, द्वे, तिस्रः इति क्रमपूर्वकेण संख्यानेन, निर्दिशन्तः = अंगुल्या निर्देशं कुर्वन्तः, सिद्धाः = देवयोनि-विशेषाः, स्तनित-समये = रति-समये, त्वद्गर्जनकाले वा, सोत्कम्पानि = उत्कम्पसहितानि, प्रियसहचरीसंभ्रमालिगितानि = स्निग्धप्रियात्वराश्लेषानि, आसाद्य = प्राप्य, त्वाम् = मेघम्, मानयिष्यन्ति = साधुवादान् वदिष्यन्ति ।

शब्दार्थः—अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरान् = जल के कणों को ग्रहण करने में चतुर, चातकान् = "चातक" नामक पक्षियों को, वीक्षमाणः = देखते हुए, श्रेणीभूताः = पंक्तिबद्ध, बलाकाः = वकपंक्तियों को, परिगणनया = एक-दो तीन इस तरह गिनकर, निर्दिशन्तः = अंगुली से दिखाते हुए, सिद्धाः = देवयोनिविशेष, स्तनितसमये = संभोगकाल में अथवा (तुम्हारे गर्जन काल में), सोत्कम्पानि = कम्पन के सहित, प्रियसहचरीसम्भ्रमालिगितानि = अपनी प्यारी सहचरियों के भय के साथ भरपूर आलिगन को, आसाद्य = प्राप्त कर, त्वाम् = तुम्हें (मेघ को), मानयिष्यन्ति = धन्यवाद देंगे ।

भावार्थः—हे मेघ ! वर्षणजलग्रहणनिपुणान् चातकान् पश्यन्तो बद्धपंक्तीः बलाकाः एका द्वे तिस्रः इत्थं संख्यानेन दर्शयन्तः सिद्धाः रतिकाले त्वद्गर्जनेन भीतानां कामिनीनां स्वेच्छयाऽऽश्लेषं प्राप्य त्वां धन्यवादान् व्याहरिष्यन्ति ।

हिन्दी—हे मेघ ! वर्षा के जल-विन्दुओं को ग्रहण करने में चतुर चातकों को देखते हुए, पंक्तिबद्ध बकपंक्तियों को एक, दो, तीन इस प्रकार अंगुली से गिनकर बताते हुए (दिखाते हुए) सिद्धलोग, संभोग काल में तुम्हारे गरजने के कारण भयभीत अपनी प्रियाओं के भरपूर आलिगन को प्राप्तकर तुम्हें धन्यवाद देंगे ।

समासः—अम्भसां बिन्दवः=अम्भोबिन्दवः (ष० तत्०) तेषां ग्रहणं (ष० तत्०) तस्मिन् चतुरास्तान् (स० तत्०)। प्रियाश्च ताः सहचर्यः (कर्मधारय०) तासां सम्भ्रमः (ष० तत्०) तेन आलिगितानि (तृ० तत्०) प्रियसहचरीसम्भ्रमालिगितानि ।

कोशः—पृषन्तिबिन्दुपृषताः, इत्यमरः । सारंगाः स्तोकश्चातकः समाः, इत्यमरः । बलाकाः वकपंक्तिः स्यात्, इत्यमरः । स्तनितं गर्जितं मेघं निर्घोषे रसितादि च, इत्यमरः ।

टिप्पणी—वीक्षमाणाः—यहाँ "वि" उपसर्गपूर्वक आत्मनेपदी "इक्ष" धातु के लट् लकार के स्थान में "लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे" इस सूत्र से "शानच्" प्रत्यय करके "वीक्षमाण" ऐसा रूप हुआ है। **श्रेणीभूताः**—अश्रेणयः श्रेणयः संपद्यन्ते इति श्रेणीभूताः । यहाँ "श्रेणी" शब्द से भूताः के योग में "कृभ्वस्ति योगे संपद्यकर्तरि च्विः" इस सूत्र से अभूत तद्भाव अर्थ में च्वि प्रत्यय होकर "च्वौ च" इस सूत्र से दीर्घ होकर "श्रेणीभूता" ऐसा रूप बना है ॥ २२ ॥

उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः
कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते ।
शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः
प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत् ॥२३॥

अन्वयः—हे सखे ! मत्प्रियार्थं द्रुतं यियासोः अपि ते ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते कालक्षेपम् उत्पश्यामि । सजलनयनैः शुक्लापाङ्गैः केकाः स्वागतीकृत्य प्रत्युद्यातः भवान् कमपि आशु गन्तुं व्यवस्येत् ।

व्याख्या—हे सखे=हे मित्र ! मत्प्रियार्थम्=मत्प्रियायै किंवा मदिष्टसम्पादनाय, द्रुतम्=शीघ्रम्, यियासोः=गन्तुमिच्छोः अपि, ते=तव मेघस्येति यावत्, ककुभसुरभौ=कुटजपुष्पपरिमलसुरभिते, पर्वते पर्वते=प्रत्यद्रौ, कालक्षेपम् =समयविलम्बम्, उत्पश्यामि=उत्प्रेक्षे । सजलनयनैः=अश्रुपूर्णाक्षिभिः, शुक्ला-

पाङ्गैः=मयूरैः, केकाः=मयूरवाणीः, स्वागतीकृत्य=स्वागतवचनं विधाय, प्रत्युद्यातः=प्रत्युद्गतः सन्, भवान्=मेघः, कथमपि=यथाकथञ्चित्, आशु=त्वरितम्, गन्तुम्=प्रयातुम्, व्यवस्येत्=प्रयत्नं कुर्यात् ।

शब्दार्थः—हे सखे=हे मित्र, मत्प्रियार्थम्=मेरी प्रिया के पास, अथवा मेरा सन्देश पहुँचाने के लिए, यियासोः=जाने की इच्छा वाले, अपि=भी, ते=तुम्हारा, ककुभसुरभौ=कुटज पुष्प के सुगन्ध से सुगन्धित, पर्वते-पर्वते=प्रत्येक पर्वत पर, कालक्षेपम्=समय के विलम्ब की, उत्पश्यामि=सम्भावना करता हूँ । सजलनयनैः=आनन्दाश्रुओं से परिपूर्ण नेत्रों वाले, शुक्लापाङ्गैः=भौंरों द्वारा, केकाः=उनकी वाणी को, स्वागतीकृत्य=स्वागत वचन बनाकर, प्रत्युद्यातः=अगवानी किया जाता हुआ, भवान्=आप (मेघ), कथमपि=किसी तरह, आशु=शीघ्र, गन्तुम्=जाने का, (आगे बढ़ने का) व्यवस्येत्=प्रयत्न कीजियेगा ।

भावार्थः—हे सखे, मद्वल्लभासमीपं किंवा मत्सन्देशार्थं गन्तुमिच्छोरपि भवतः कुटजपुष्पपरिमलसुवासिते प्रत्यद्रौ समयविलम्बमनुमीये । तथापि आनन्दाश्रुपूरितैः मयूरैः केकया स्वागतं प्राप्य प्रत्युद्गतो भवान् ततः यथा कथञ्चित् शीघ्र गन्तुमुद्युञ्जीत ।

हिन्दी—हे मित्र ! मेरी प्रिया के पास (या मेरे सन्देश पहुँचाने के लिए) शीघ्र जाने की इच्छा रहने पर भी, कुटज पुष्पों से सुगंधित प्रत्येक पर्वत पर तुम्हारे समय-क्षेप का अनुमान मैं कर रहा हूँ । (फिर भी) आनंदाश्रु से भरे नेत्रों वाले मोर अपनी केका वाणी से तुम्हारा स्वागत करके, तुम्हारी अगवानी करेंगे, तुम भी किसी प्रकार वहाँ से शीघ्र आगे जाने का प्रयत्न करना ।

समासः—मदीया प्रिया मत्प्रिया तस्यै, किंवा मदीयं प्रियम् मत्प्रियम् (नित्यसमासः) । कालस्य क्षेपम् कालक्षेपम् (ष० तत्०) । न स्वागतम् अस्वागतम्, (नञ०) अस्वागतं स्वागतं सम्पद्यमानं कृत्वा इति स्वागतीकृत्य ।

कोशः—अथ मित्रं सखा सुहृत्, इत्यमरः । जवोऽथ शीघ्रं त्वरितं लघु क्षिप्रमरं द्रुतम्, इत्यमरः । ककुभः कुटजेऽर्जुने, इति शब्दार्णवः । क्षेपो विलम्बे निन्दा-

याम्, इति विश्वः । मयूरो बर्हिणो बर्ही शुक्लापाङ्गः शिखावलः, इति यादवः । केकावाणी मयूरस्य, इत्यमरः ।

टिप्पणी—मत्प्रियार्थ०—यहाँ मम प्रियम् मत्प्रियम् इस प्रकार षष्ठी तत् पुरुष समास हुआ है । "प्रिय" इस उत्तर पद होने के कारण "प्रत्ययोत्तरपद-योश्च" इस सूत्र मे "अस्मद्" शब्द के स्थान पर "मत्" यह आदेश हुआ है । **यियासोः**=यातुमिच्छोः यियासोः प्रापणार्थक "या" धातु से इच्छा अर्थ में "सन्" प्रत्यय करके तत् प्रयुक्त द्वित्व; इत्यादि कार्य करके "सनाशंसभिक्ष उः" इस सूत्र से उप्रत्यय करके "यियासुः" ऐसा रूप बनता है। उक्त रूप उसी शब्द के षष्ठी विभक्ति का है ॥ २३ ॥

(पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नैः—
नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः ।
त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः
सम्पत्स्यन्ते कतिपय-दिनस्थायिहंसा दशार्णाः ॥)

अन्वयः—(हे मेघ !) त्वयि आसन्ने दशार्णाः सूचिभिन्नैः केतकैः पाण्डुच्छायोपवनवृतयः गृहबलिभुजाम् नीडारम्भैः आकुलग्रामचैत्याः परिणत-फलश्यामजम्बूवनान्ताः कतिपयदिनस्थायिहंसाः सम्पत्स्यन्ते ।

व्याख्या—(हे मेघ) त्वयि=मेघे, आसन्ने=समीपस्थे, सति, दशार्णाः=एतन्नामकाः देशाः, सूचिभिन्नैः=मुकुलाग्रविकसितैः, केतकैः= केतकीकुसुमैः, पाण्डुच्छायोपवनवृतयः=पाण्डुरवर्णाऽऽरामप्रकाराः, गृहबलि-भुजाम्=गेहबलिभोक्तृणाम्, काकादीनामिति भावः, नीडारम्भैः=कुलायश्च-नाभिः, आकुलग्रामचैत्याः=संकीर्णग्रामवृक्षाः, अश्वत्थादयः परिणतफलश्याम-जम्बूवनान्ताः=परिपक्वफलकृष्णजम्बुकाननप्रदेशाः, कतिपय-दिनस्थायिहंसाः= किञ्चिद्-दिवस-स्थायिहंसाः, संपत्स्यन्ते=भविष्यन्ति ।

शब्दार्थः—(हे मेघ) त्वयि=तुम्हारे, आसन्ने=आने पर, दशार्णाः= दशार्ण नामक देश, सूचिभिन्नैः=मुकुल के अग्रभाग में खिले हुए, केतकैः=

केतकी के पुष्पों से, पाण्डुच्छायोपवनवृतयः=जहाँ के उद्यान का घेराव पीला-पीला-सा हो गया। गृहबलिभुजाम्=घर की (विश्वेदेव) बलि को खाने वाले (कौए आदि) पक्षियों के, नीडारम्भैः=घोसलों की रचना से, आकुल-ग्रामचैत्याः=सङ्कीर्ण हो गये हैं पीपल आदि वृक्ष जहाँ के गाँवों के, परिणतफल-श्यामजम्बूवनान्ताः=जहाँ के जामुन के वन पके हुए फलों से काले हो गये हैं, कतिपयदिनस्थायिहंसाः=जहाँ हंस कुछ दिनों तक रह सकते हैं ऐसे, सम्पत्स्यन्ते=हो जायेंगे।

भावार्थः—हे मेघ ! त्वयि समीपस्थे सति दशार्णदेशे गृहाऽऽरामाणां वृत्तयः किञ्चिद्विकसितकेतकी—कुसमानांकान्त्या पीताभा भविष्यन्ति, ग्राम्याः अश्वत्थादयो वृक्षाः बलयन्नभोजीनां काकादीनां कुलाय-निर्म्माणैः सङ्कीर्णा भविष्यन्ति। तत्रस्थवनप्रान्तभागाः पक्वजम्बूफलैः कृष्णाः भविष्यन्ति, हंसाश्च कतिपयदिवसं यावत् स्थास्यन्ति।

हिन्दी—हे मेघ ! तुम्हारे समीप आने पर दशार्णदेश के बगीचों का घेराव अधखिले केतकी पुष्प के रंग से पीला हो जायेगा, घर में दी गयी बलि को खाने वाले कौए आदि पक्षियों द्वारा घोंसलों के निर्माण से वहाँ के गाँवों के पीपल आदि वृक्ष सङ्कीर्ण हो जायेंगे, पके हुए फलों की आभा से वहाँ के जामुन के वन-प्रदेश काले हो जायेंगे, हंस भी वहाँ वर्षाऋतु के कारण कुछ दिन ही ठहरेंगे।

समासः—पाण्ड्वी छाया यासां ताः पाण्डुच्छायाः (बहु०)। पाण्डुच्छायाः उपवनानां वृतयः येषु ते=पाण्डुच्छायोपवनवृतयः (बहुव्री०)। आकुलानि ग्रामेषु चैत्यानि येषु ते=आकुलग्रामचैत्याः (बहुव्रीहि०) परिणतैः फलैः श्यामानि यानि जम्बूवनानि (बहुव्रीहिः) तै अन्ताः—परिणतः फलश्यामजम्बू-वनान्ता (तृ०तत्०)। कतिपयेषु दिनेषु स्थायिनो हंसा येषु ते—कतिपयदिनस्थायि-हंसाः (बहुव्रीहि०)। सूचीषु भिन्नानि सूचिभिन्नानि (स० तत्०) तैः। नीडाना-मारम्भः नीडारम्भः (ष० तत्०) तैः। गृहाणां बलयः (ष० तत्०) गृहबलीन् भुञ्जत् इति गृहबलिभुजः तेषाम्।

कोशः—समीपे निकटासन्नसन्निकृष्टसनीडवत्, इत्यमरः। केतकी मुकुलाग्रे-षुसूचिः, इति शब्दार्णवः। हरितः पाण्डुरः, इत्यमरः। प्रकारो वरणः सालः प्राचीरं प्रान्ततो वृतिः इत्यमरः। ध्वाङ्क्षात्मपरभृद्बलिभुग्वायसा अपि, इत्यमरः। चैत्यमायतने बुद्धवन्द्ये चोददेशपादपे, इति विश्वः।

टिप्पणी—दशार्णाः—यहशब्द अलग-अलग व्युत्पत्ति से अलग-अलग अर्थ को कहता है। जैसे—दश ऋणानि (दुर्गभूमयः) येषां ते (बहुव्री०) दशार्णाः= दश+ऋणः, यहाँ "प्रवत्सरकम्बलवसनदशानामृणे" इस सूत्र से "आ" वृद्धि होकर "उरण् रपरः" से रपर हो गया है। प्रस्तुत व्युत्पत्ति के अनुसार "दशार्णाः" शब्द पुरुषवाची है, जिनके दश दुर्ग हो उन राजाओं को "दशार्ण" कहा जाता है। तेषां निवासः ऐसा विग्रह करके "तस्य निवासः" से अण् प्रत्यय होता है। उसका "जनपदे लुप्" से लुप् तो हो जाता है परन्तु "लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने" इस सूत्र से लिङ्ग और वचन के प्रकृतिभाव हो जाने से "दशार्णा" यह बहुवचनान्त रूप निष्पन्न होता है। **दूसरी व्युत्पत्तिः**-ऋण शब्द का दूसरा अर्थ जल भी है तो दश ऋणानि (जलस्रोतसः) यस्यां सा "दशार्णा" यहाँ "दशार्णा" नदी अर्थ का बोधक शब्द है। **चैत्याः**—यहाँ "चैत्य" शब्द अग्निवाचक "चित्य" शब्द से "चित्यस्य इमानि" इस विग्रह में "तस्येदम्" इस सूत्र से "अण्" प्रत्यय करके आदि वृद्धि करने पर निष्पन्न होता है न कि "चिता" या "चित्या" शब्द से ॥ २३ ॥

तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं
गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्धा।
तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु यस्मात्
सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि ॥ २४ ॥

अन्वयः—दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणाम् तेषां राजधानीम् गत्वा सद्यः कामुकत्वस्य अविकलफलं लब्ध्वा यस्मात् स्वादु चलोर्मि वेत्रवत्याः पयः सभ्रू-भङ्गं मुखम् इव तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि।

व्याख्या—दिक्षु = दिशासु, प्रथितविदिशालक्षणाम् = प्रसिद्धविदिशेति-नाम्नीम्, तेषां = दशार्णानाम्, राजधानीम् = मुख्यनगरीम्, गत्वा = प्राप्य, सद्यः = तत्क्षणम्, कामुकत्वस्य = विलासितायाः, अविकलम् = समग्रम्, फलम् = लाभम्, लब्धा = प्राप्स्यते भवतेति शेषः। यस्मात् = कारणात्, स्वादु = पेयम्, चलोर्मि = तरंगसहितम्, वेत्रवत्याः = वेत्रवतीनद्याः, पयः = जलम्, सभ्रूभंगम् = सकटाक्षम् मुखमिव = आननमिव (अधरमिवेतिभावः) तीरोपान्ते = कूलप्रदेशे, (यत्) स्तनितम् = गर्जितम्, तेन सुभगम् = सुन्दरम् = पास्यसि = पानं करिष्यसि।

शब्दार्थः—दिक्षु=दिशाओं में, प्रथितविदिशालक्षणाम्=विख्यात विदिशा नाम वाली, तेषाम् = दशार्ण देशवालों की, राजधानीम् = राजधानी में, गत्वा = जाकर, कामुकत्वस्य = कामुकता का, अविकलम् = सम्पूर्ण, फलम् = फल को, लब्धा = प्राप्त करोगे। यस्मात् = क्योंकि, स्वादु = मधुर, चलोर्मि = तरंगयुक्त, वेत्रवत्याः = वेत्रवती नदी के, पयः = जल को, सभ्रूभंगम् = कटाक्ष-युक्त, मुखमिव = मुख की तरह (अधर के समान) तीरोपान्तस्तनितसुभगम् = तट के पास गर्जन से सुन्दर, पास्यसि = पान करोगे।

भावार्थः-हे मेघ ! विदिशाभिधेयां दशार्णानां राजधानीं गत्वा तत्र त्वं तत्क्षणमेव विलासिताया अशेषं लाभं लप्स्यसे। यतस्तत्र वेत्रवत्याः नद्याः मधुरं तरंगयुक्तञ्च जलं कस्याश्चिन्नायिकायाः कटाक्षयुक्तमधुरमिव तटप्रान्ते गर्जनान्तरं पास्यसि।

हिन्दी—हे मेघ ! तुम विख्यात विदिशा नामावली दशार्णा देश की राज-धानी में जाकर तुरन्त विलासिता के सम्पूर्ण फल को प्राप्त कर लोगे। क्योंकि वहाँ वेत्रवती के मधुर एवं तरंगयुक्त जल को, किसी नायिका के कटाक्षयुक्त अधर के समान तटप्रान्त में गर्जन के बाद पान करोगे।

समासः-प्रथितं "विदिशा" इति लक्षणं यस्याः ताम् प्रथितविदिशालक्षणम् (बहुव्रीहि०)। विगता कला यस्य तद्विकलम् (बहुव्रीहि०)। न विकलम् = अविकलम् (नञ् तत्०)। चलाः उर्मयो यस्याः तत् = चलोर्मि (बहुव्रीहि०)।

भ्रूभङ्गेन सह वर्तमानम् सभ्रूभंगम् (बहुव्रीहि०)। तीरस्य उपान्तः तीरोपान्तः (ष० तत्०) तस्मिन् स्तनितम् (स० तत्०) तेन सुभगम् तीरोपान्तस्तनित-सुभगम् (तृ० तम्०)।

कोशः—प्रतीते प्रथितख्यातवित्तविज्ञातविश्रुताः, इत्यमरः। लक्षणं नाम्नि चिह्ने च, इति विश्वः। प्रधाननगरी राज्ञां राजधानीति कथ्यते, इति शब्दार्णवः। विलासी कामुको कामी, इति शब्दार्णवः। स्तनितं गर्जितं मेघ-निर्घोषे रसितादि च, इत्यमरः।

टिप्पणी—राजधानी—धीयन्ते अस्यामिति धानी, "धा" धातु-से अधि-करण में "करणाधिकरणयोश्च" इस सूत्र से ल्युट् प्रत्यय हुआ है एवं स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीप् होकर "धानी" यह शब्द निष्पन्न हुआ है। राज्ञां धानी राजधानी। **कामुकत्वस्य**—कामयते तच्छील: इस विग्रह मे "क्रान्ति" अर्थात् "इच्छा" अर्थ वाले "कमु" धातु से "लषपतपदस्थाभूवृषहनकमगश्भृभ्य उकञ्" इस सूत्र से "उकञ्" प्रत्यय किया गया है एवं ञित्वात् "तद्धितेष्वचामादेः" इस सूत्र से आदिवृद्धि करके "कामुक" ऐसा रूप बना है एवं तस्य (कामुकस्य) भावः इस अर्थ में "तस्य भावस्त्वतलौ" से "त्व" प्रत्यय करके "कामुकत्व" ऐसा साधु होता है। **लब्धा**—"लभ्" धातु के अनद्यतन भविष्यत् अर्थ में "लुट्" लकार के प्रथम पुरुष के एकवचन का रूप। "लब्ध्वा" यह पाठ भी मिलता है जिसका अर्थ होगा "प्राप्त करके" उक्त रूप उसी धातु से "क्त्वा" प्रत्यय करके बनेगा।

अलङ्कार—इस श्लोक में लिङ्ग साम्य से नायक-नायिक के व्यवहार का समारोप होने से "समासोक्ति" अलङ्कार है एवं "सभ्रूभङ्गं मुखमिव" यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। इस तरह दोनों अलङ्कारों के अङ्गाङ्गिभाव से रहने के कारण यहाँ "संकर" नामक अलङ्कार है॥ २४॥

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो-
स्त्वत्संपर्कात् पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः।

यः पण्यस्त्री रतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा-
मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि ॥ २६ ॥

अन्वयः—तत्र विश्रामहेतोः प्रौढपुष्पैः कदम्बैः त्वत्संपर्कात् पुलकितमिव नीचैराख्यम् गिरिम् अधिवसेः। यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिः शिला-वेश्मभिः नागराणाम् उद्दामानि यौवनानि प्रथयति।

व्याख्या—(हे मेघ !) तत्र=विदिशायाम्, विश्रामहेतोः=श्रमापनोद-नाय, प्रौढपुष्पैः=सुविकसितकुसुमैः; कदम्बैः=नीपैः, त्वत्संपर्कात्=भवत्सा-हचर्यात्; पुलकितमिव=सलोमहर्षमिव, रोमाञ्चमिवेत्यर्थः, नीचैराख्यम्=नीचैः नामानम्, गिरिम्=पर्वतम्, अधिवसेः=अधिवासं कुर्याः। यः=नीचैः पर्वतः; पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिः=वेश्याकामक्रीडासौरभाविष्कुर्वद्भिः शिलावेश्मभिः=पाषाणसदनैः कन्दराभिरित्यर्थः, नागराणाम्=चतुरनगर-वासिनाम्, उद्दामानि=निर्बन्धानि, उत्कटानीति भावः, यौवनानि=तारुण्यानि, प्रथयति=कथयति।

शब्दार्थः—तत्र=उस विदिशा में, विश्रामहेतोः=थकावट दूर करने के लिए, प्रौढपुष्पैः=अच्छी तरह खिले हुए फूलों वाले, कदम्बैः=कदम्ब वृक्षों से, त्वत्संपर्कात्=तुम्हारे संपर्क से, पुलकितमिव=रोमाञ्चित हुए की तरह, नीचैराख्यम्="नीचैः" इस नाम के, गिरिम्=पर्वत, पण्यस्त्रीरतिपरिम-लोद्गारिभिः=वेश्यायाओं की काम-क्रीडा में (उपयुक्त) सुगन्ध को व्यक्त करने वाले, शिलावेश्मभिः=कन्दराओं के द्वारा, नागराणाम्=नगर निवासियों के, उद्दामानि=निर्बन्ध (उत्कट), यौवनानि=यौवन (जवानी) को, प्रथयति=कहता है (प्रकट करता है)।

भावार्थः—हे मेघ ! विदिशायां श्रमापनोदनाय कुसुमित-कदम्बवृक्षैः, रोमाञ्चयुक्तमिव नीचैर्नामकं पर्वतमधिवासं कुर्याः। यः पर्वतः वेश्यारम्भक्रीडा-प्रयुक्त-सुगन्धिताभिः कन्दराभिर्नागराणामुत्कटयौवनानि व्यनक्ति।

हिन्दी—हे मेघ ! विदिशा में विश्राम करने के लिए पूर्णविकसितकदम्ब-पुष्पों से मानो तुम्हारे सम्पर्क से रोमाञ्च के समान "नीचैः" नामक पर्वत

पर ठहर जाना। जो पर्वत, वेश्याओं द्वारा काम-क्रीडा में प्रयुक्त सुगन्धि वाली कन्दराओं के माध्यम से नगरनिवासियों के उत्कट यौवन (जवानी) को व्यक्त कर रहा है।

समासः—विश्रामस्य हेतु=विश्रामहेतुः तस्य (ष० तत्०)। प्रौढानि पुष्पाणि येषु तैः प्रौढपुष्पैः (बहु०)। तव संपर्कः तस्मात् त्वत्संपर्कात् (ष० तत्०)। नीचैः आख्या अस्य तम् (बहु०)। पण्याः स्त्रियः तासां (बहु०) रतिषु यः परिमलः (स० तत्०) तमुद्गिरन्ति तैः पण्यस्त्री-रतिपरिमलोद्-गारिभिः, दाम्नः उद्गतानि (कुगतिप्रा० तत्०)। यूनः भावः यौवनम् तानि।

कोशः—वारस्त्री गणिका वेश्या पण्यस्त्रीरूपजीवनी, इति शब्दार्णवः। विमर्दोत्थे परिमलो सन्धे जनमनोहरे, इत्यमरः। पाषाणप्रस्तरग्रावोपलाश्मानः शिलादृषत्, इत्यमरः। उद्दामो बन्धरहिते स्वतन्त्रे च, इति मेदिनी।

टिप्पणी—विश्रामहेतोः—यद्यपि कई टीकाकार "विश्राम" शब्द को अपाणिनीय कहकर "विश्रान्ति" ऐसा पाठ इस श्लोक में रखते हैं। उनका कहना है कि "श्रमु" धातु से जब "घञ्" प्रत्यय करेंगे तब उपधावृद्धि नहीं हो पायेगी, क्योंकि "नोदात्तोपदेश-मान्तस्याऽनाचामेः" इस सूत्र से उसका निषेध हो जायेगा। सिद्धान्तकौमुदीकार ने भी विश्राम शब्द को अपाणिनीय ही बताया है। परन्तु महाकवि कालिदास को प्रमाद दोष से बचाने के लिए यदि "श्रमु" धातु से स्वार्थ में "णिच्" प्रत्यय लगाकर वृद्धि करके "श्रामि" ऐसा रूप बनाकर उसकी धातु संज्ञा करके वि उपसर्गपूर्वक, "श्रामि" धातु से "एरच्" इस सूत्र से "अच्" प्रत्यय करेंगे (वि+श्रामि+अ) तो "विश्राम" यह रूप सिद्ध हो जायेगा। यदि यह कहें कि पुनःवृद्धि निषेध करेंगे तो नहीं कह सकते क्योंकि उपधावृद्धि निषेध इस सूत्र में "कृति" का अनुवर्तन किया जाता है "णिच्" कृत्प्रत्यय से भिन्न है। हाँ! णिजन्त बनाकर "विश्राम" सिद्ध होने पर भी एक शङ्का यह आ सकती हैं कि "मितां ह्रस्वः" से वृद्धि को पुनः ह्रस्व होना चाहिए, परन्तु यह सूत्र विकल्प से ह्रस्व करता है, क्योंकि "वा" की अनुवृत्ति जाती है।

यहाँ ध्यान रखना चाहिए कि "णिच्" प्रत्यय स्वार्थ में है "प्रेरणा" में नहीं ताकि अर्थभेद की आपत्ति आ सके। कवि को इस दोष से बचाने के लिए मल्लिनाथजी "विश्रामो वा" इस सूत्र को प्रस्तुत करते हैं, उनका कहना है कि यह सूत्र चान्द्र व्याकरण का है। कुछ लोगों का कहना है कि यह सूत्र जैनेन्द्र व्याकरण का है। जो कुछ भी हो, किसी भी व्याकरण से सिद्ध तो है ही, परन्तु पाणिनि नहीं सिद्ध कर सके। महोपाध्याय मल्लिनाथजी ऊपर णिजन्तादि प्रक्रिया की अपेक्षा "श्रमणं श्रमः, भावे घञ्" और श्रम शब्द से स्वार्थेऽण् करके "श्राम" शब्द सिद्ध करके पुनः विगतः श्रामो यस्मिन् इति "विश्रामः" यह प्रक्रिया भी सरल और लघु होते हुए दोष विघातक भी है। **पुलकितम्**–"पुलकाः सञ्जाता यस्य" इस विग्रह में "तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्" इस सूत्र से "इतच्" प्रत्यय करके "पुलकित" यह रूप बना है। उक्त रूप इसी शब्द के द्वितीया के एक वचन का है। **पण्यस्त्री०**—यहाँ "पण्य शब्द" "पणितुं योग्या" इस विग्रह में निन्दा अर्थ में "अवद्यपण्यवर्या गर्ह्यपणितव्याऽनिरोधेषु" इस सूत्र से निपातन किया गया है। **उद्गारिभिः**—यहाँ उद्गार शब्द का प्रयोग गौणवृत्या होने के कारण जुगुप्साव्यञ्जक अश्लीलता नहीं आ पायी है। क्योंकि दण्डी की "निष्ठ्यूतोद्गीर्णं०" वाली पंक्ति इसका प्रमाण है॥ २५॥

विश्रान्तः सन् व्रज वननदीतीरजातानि सिञ्च-
न्नुद्यानानां नवजलकणैर्यूथिका—जालकानि।
गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानाम्
छायादानात् क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम्॥ २६॥

अन्वयः—तत्र विश्रान्तः सन् वननदीतीर-जातानि उद्यानानाम् यूथिका-जालकानि नवजलकणैः सिञ्चन् गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानाम् पुष्पलावीमुखानाम् छायादानात् क्षणपरिचितः (सन्)।

व्याख्या—तत्र = विदिशायां स्थिते नीचैः गिरौ, विश्रान्तः सन्=गतश्रमः सन्, वननदीतीरजातानि = वन्यसरित्कूलोद्भवानि, उद्यानानाम्=आरामाणाम,

यूथिकाजालकानि=मागधीपुष्प-कुड्मलानि, नवजलकणैः=नूतन-सलिलबिन्दुभिः, सिञ्चन्=आर्द्रयन्; गण्डस्वेदापनयन—रुजाक्लान्तकर्णोत्पलानाम्=कपोलस्वेदापनयनपीडाक्षामश्रोत्रपद्मानाम्; पुष्पलावीमुखानाम्=पुष्पावचायिकावदनानाम्; छायादानात्=अनातपीकरणात्, क्षणपरिचितः=किंचित्कालेन ज्ञातः, (सन्) व्रज=गच्छ ।

शब्दार्थः—तत्र=उस "नीचैः" नामक पर्वत पर; विश्रान्तः सन्=विश्राम करके, वननदीतीरजातानि=जंगली नदियों के किनारे उत्पन्न, उद्यानानाम्=बगीचों के, यूथिकाजालकानि=माधवी की कलियों को, नवजलकणैः=नूतन-जलबूंदों से, सिञ्चन्=सींचता हुआ, गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानाम्=जिसके कानों में (पहने गये) कमल गालों पर (चूते हुए) पसीने को पोछने के कारण मुरझा गये हैं, ऐसे, पुष्पलावीमुखानाम्=फूल तोड़नेवाली महिलाओं के मुखों का, छायादानात्=छाया देने के कारण, क्षणपरिचितः=कुछ समय के लिए परिचित होकर, व्रज=जाना ।

भावार्थः—(हे मेघ !) नीचैरद्रौ विश्रम्य नदीतटोत्पन्नानि आरामाणां मागधीकुसुमकुड्मलानि नूतनजललवैरार्द्रीकुर्वन् पुष्पावचयनपरायणानां नारीमुखानां गण्डघर्मजलदूरीकरणेन म्लानकर्णाऽऽभरणीभूतपद्मानां छायाप्रदानेन किञ्चित्कालाय परिचितः सन् गच्छ ।

हिन्दी—(हे मेघ !) वहाँ नीचैः नामक पर्वत पर विश्राम करके जंगली नदियों के तट पर विद्यमान बगीचों के जूही पुष्प की कलियों को नवीन जलकणों से सींचता हुआ, जिनके कानों में पहिने गये कमल गालों पर बहते हुए पसीनों को पोछने के कारण मुरझा गये हैं, ऐसी फूल तोड़ने वाली महिलाओं के मुख को छाया प्रदान करने के कारण कुछ समय के लिए परिचित होकर (आगे) जाना ।

समासः—वने या नद्यः तासां तीरेषु जातानि=वननदीतीरजातानि (बहुव्री०) । नवजलानां कणास्तैः (ष०तत्०) नवजलकणैः । गण्डयोःस्वेदः=गण्डस्वेदः (स० तत्०) गण्डस्वेदस्य अपनयनम गण्डस्वेदापनयनम् (ष० तत्०), तेन रुजा (तृ० तत्०) तया क्लान्तानि (तृ० तत्०) गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तानि,

कर्णयोः उत्पलानि कर्णोत्पलानि (स० तत्०) गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तानि कर्णोत्पलानि येषां तानि; तेषाम् (बहुव्रीहि०) । पुष्पाणि लुनन्तीति पुष्पलाव्यः तासां मुखानि=पुष्पलावीमुखानि (ष० तत्०) तेषाम् । छायायाः दानं तस्मात् (ष० तत्०) । क्षणं परिचितः=क्षणपरिचितः (द्वि० तत्०) ।

कोशः—पुमानाक्रीड उद्यानं राज्ञः साधारणं वनम्, इत्यमरः । मागधी, गणिका यूथिकाऽम्बष्ठा, इत्यमरः । कोरकजालककलिकाकुड्मलमुकुलानि तुल्यानि, इति हलायुधः । रुजा रोगे च भंगे, इति मेदिनी । छाया सूर्यप्रिया-कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः, इत्यमरः । अव्यापारस्थितौ कालविशेषोत्सवयोः क्षणः, इत्यमरः ।

टिप्पणी–विश्रान्तः—वि उपसर्गपूर्वक "श्रम्" धातु से "क्त" प्रत्यय करके "विश्रान्त" ऐसा रूप निष्पन्न किया जाता है । **सिञ्चन्**—"सिच्" धातु जिसका अर्थ है आर्द्रीकरण, से लट् लकार लाकर उसके स्थान पर "लटः शतृ०" इत्यादि सूत्र से "शतृ" प्रत्यय करके नुमादि लाकर सिञ्चन् ऐसा रूप बनता है । **पुष्पलावी**—पुष्प उपपदपूर्वक छेदनार्थक "लू" धातु से कर्म में "कर्मण्यण्" इस सूत्र से अण् प्रत्यय करके वृद्धि करके स्त्रीत्व विवक्षा में "टिड्ढाणञ्" इत्यादि सूत्र से "ङीप्" करके पुष्पलावी शब्द बना है । यहाँ "कुगतिप्रादयः" से पुष्प और लावी का समास हुआ है ॥ २६ ॥

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्सङ्ग-प्रणय-विमुखो मास्म-भूदुज्जयिन्याः ।
विद्युद्दाम—स्फुरित—चकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
लोलापाङ्गैर्यदि न रमते लोचनैर्वञ्चितोऽसि ॥ २७ ॥

अन्वयः—उत्तराशाम् प्रस्थितस्य भवतः पन्था यदपि वक्रः उज्जयिन्याः सौधोत्सङ्ग–प्रणय–विमुखः मास्मभूः । तत्र विद्युद्दामस्फुरितचकितैः लोला-पाङ्गैः पौराङ्गनानाम् लोचनैः यदि न रमसे वञ्चित असि ।

व्याख्या—उत्तराशाम् उदीचीं दिशं प्रति, प्रस्थितस्य=गच्छतः, भवतः= मेघस्य, पन्था=मार्गः, यदपि=यद्यपि, वक्रः=अनृजुः, (तथापि) उज्जयिन्याः= विशालायाः, सौधोत्सङ्ग-प्रणयविमुखः = हर्म्योर्ध्वभागपरिचयपराङ्मुखः, मास्मभूः=मा भव। तत्र=उज्जयिन्याम्, विद्युद्दामस्फुरितचकितैः=तडिल्ल- तादीप्तिचञ्चलैः, लोलापाङ्गैः=चञ्चलकटाक्षैः, पौराङ्गनानाम्=नागरिक- वनितानाम्, लोचनैः=नेत्रैः, यदि=चेत्, (त्वम्) न रमसे=न क्रीडसि, (तर्हि) वञ्चितोऽसि=प्रतारितोऽसि ।

शब्दार्थः—उत्तराशाम्=उत्तर दिशा की ओर, प्रस्थितस्य=प्रस्थान किये हुए, भवतः=आपका, पन्था=मार्ग, यदपि=यद्यपि, वक्रः=टेढ़ा है तथापि, उज्जयिन्याः=उज्जयिनी के, सौधोत्सङ्ग-प्रणयविमुखः=ऊँचे महलों के ऊपरी भाग के परिचय से पराङ्मुख, मास्म भू=मत होइयेगा। तत्र=उज्जयिनी के उन महलों पर, विद्युद्दामस्फुरित-चकितैः=विद्युल्लता की चमक से भौंचक्की, लोलापाङ्गैः=चञ्चल कटाक्षों वाली, पौराङ्गनानाम्=नागरिक रमणियों के, लोचनैः=आँखों से, यदि न रमसे=यदि विहार (रमण) नहीं किया तो अपने को, वञ्चितोऽसि=प्रताड़ित समझो (जीवन-लाभ से ठगा गया समझो)।

भावार्थः—हे मेघ ! अलकां गन्तु प्रवृत्तस्य ते उज्जयिनी-गमने मार्गः यद्यपि वक्रस्तथापि उज्जयिन्या हर्म्यप्रासादपरिचयाद्विमुखो मा भव। तत्र विद्युल्लतायाः कान्तिभिश्चकितैः चञ्चलकटाक्षयुक्तैः नागरीणां युवतीनां नयनैः यदि न रमणं करोसि तर्हि जीवनफलादात्मानं प्रताडित एव जानीहि ।

हिन्दी—हे मेघ ! अलका जाने के लिए प्रवृत्त तुम्हारा मार्ग यद्यपि टेढ़ा होगा, फिर भी उज्जयिनी के ऊँचे महलों की छतों के परिचय करने से विमुख मत होना। विजली की रेखा की चमक से भौंचक्की, चञ्चल कटाक्षों वाली, नगरवासी स्त्रियों की आँखों से यदि तुमने विहार नहीं किया (तो जीवन-लाभ से) अपने को वञ्चित ही समझो ।

समासः—उत्तरा चेयमाशा उत्तराशा (कर्म० धा०) ताम् । सौधाना- मुत्सङ्गः सौधोत्सङ्गः (ष० तत्०) तेषु प्रणयः (स० तत्०) तस्मिन् विमुखः

(स० तत्०) सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखः । लोला अपाङ्गा येषु तानि लोलापाङ्गानि (बहुव्री०) तैः विद्युतः दामानीव विद्युद्दामानि (उपमित० तत्०) विद्युद्दाम्नां स्फुरितानि तैः=विद्युद्दामस्फुरितैः (ष० तत्०) चकितस्तैः । पौराश्च ताः अङ्गनाः (कर्म० धा०) तासाम् अथवा पौराणाम् अङ्गनाः (ष० तत्०) तासाम् ।

कोशः—उत्तरा दिगुदीची स्यात्, इत्यमरः । अयनं वर्त्ममार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिः, इत्यमरः । आविद्धं कुटिलं भुग्नं वेल्लितं वक्रमित्यपि, इत्यमरः । विशालोज्जयिनी समाः, इत्यमरः । उत्सङ्गः प्रणयः स्यात्परिचये याच्ञ्यां सौहृदेऽपि च, यादवः । तडित्सौदामिनी विद्युच्चञ्चला चपला अपि, इत्यमरः । अपाङ्गस्त्वंगहीनेस्यान्नेत्रान्ते तिलकेऽपि च, इति मेदिनी । लोचनं नयनं नेत्रमित्यमरः ।

टिप्पणी—उत्तराशाम्—यहाँ प्रपूर्वक "स्था" (प्रस्थितस्य के) धातु के अकर्मक होने के कारण उसके योग में उत्तराशा शब्द की "सकर्मक धातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम्" से कर्म संज्ञा हो जाती है और "कर्मणि द्वितीया" इस सूत्र से द्वितीया विभक्ति हुई है। **वक्रः पन्था०**—निर्विन्ध्या नदी विन्ध्याचल पर्वत से उत्तर की ओर बहती है और "उज्जयिनी "निर्विन्ध्या" नदी से पूरब की ओर है जिसे आजकल उज्जैन कहते हैं एवं उत्तरापथ जिधर अलका है निर्विन्ध्या से पश्चिम में है अतः अलका जाने वाले के लिए उज्जयिनी जाने का मार्ग टेढ़ा पड़ेगा । उज्जयिनी पहले कभी "मालव" देश की राजधानी थी । यहाँ शिप्रा नदी बहती हैं एवं महाकालेश्वर का मन्दिर है । आज भी यहाँ दूर-दूर से लोग दर्शन करने जाते हैं । इसे ही विशाला नगरी भी कहते हैं । प्रातःस्मरणीय सात पुण्य पुरियों में उज्जयिनी भी अन्यतम है :—

"अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका ।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥

मास्मः—यहाँ आशीर्वाद अर्थ से "भू" धातु से मा और स्म के योग में "स्मोत्तरे लङ् च" इस सूत्र में चकार पाठ होने से लुङ् लकार आता है एवं

"लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः" इस सूत्र से प्राप्त अडागम का "न माङ्योगे" इस सूत्र से निषेध हो गया है ॥ २७ ॥

वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः
संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः ।
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥ २८ ॥

अन्वयः—पथि वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः स्खलित-सुभगं संसर्पन्त्याः दर्शितावर्तनाभेः निर्विन्ध्यायाः सन्निपत्य रसाभ्यन्तरः भव ! हि स्त्रीणाम् प्रियेषु विभ्रमः आद्यम् प्रणयवचनम् ।

व्याख्या—पथि=मार्गे, वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणि-काञ्चीगुणायाः= तरङ्गसञ्चलनशब्दायितपक्षिपङ्क्तिकटिबन्धदोरकः यस्याः तस्याः, स्खलितेन= मदस्खलितेन, सुभगम्=रमणीयम्, यथास्यात्तथा संसर्पन्त्याः=प्रवाहितायाः, वा निर्विन्ध्यायाः=एतन्नामिकायाः नद्याः अथवा कस्याश्चिन्नायिकायाः, सन्निपत्य=संयत्य, रसाभ्यन्तरः=जलमध्यगतः अन्तःस्थितशृंगारो वा, भव, हि=यतः, स्त्रीणाम्=कामिनीनाम्, प्रियेषु=कान्तेषु, (विषये) विभ्रमः=विलास एव, आद्यम्=प्रथमम्, प्रणयवचनम्=प्रेमवाक्यम् भवति । कामिन्यः रतिप्रसंगे स्वकीयामिच्छां हाव-भाव-प्रदर्शनेनैव प्रकटयन्ति, न तु शब्दतः कथयन्ति लज्जाधिक्यात् । अत्र विलासप्रदर्शनम् आवर्तरूपं नाभि-प्रदर्शनमेव ।

शब्दार्थः—पथि=मार्ग में, वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्ची गुणायाः= लहरों के चलने से शब्द करते हुए पक्षियों (हंसादि) की पङ्क्ति ही जिसकी करधनी है, स्खलित-सुभगं संसर्पन्त्याः=पत्थरों से टकराते हुए (जवानी के मद से फिसलती हुई जो) बड़ी अच्छी चाल से बह रही है या चल रही है, दर्शितावर्तनाभेः=जिसने भँवररूपी अपनी नाभि को दिखा दिया है; (ऐसी) निर्विन्ध्यायाः=निर्विन्ध्या नदी के, सन्निपत्य=संपर्क में आकर;

रसाभ्यन्तरः=भीतर जल धारण करने वाला या शृङ्गार रस का आनन्द लेने वाला, भव=हो जाओ, हि=क्योंकि, स्त्रीणाम्=कामिनियों की, प्रियेषु= प्रिय के प्रति, विभ्रमः=हाव-भाव विलास प्रदर्शन ही, आद्यम्=पहली, प्रणय-वचनम्=प्रेमप्रार्थना होती है।

भावार्थः—(हे मेघ !) यस्यास्तरङ्ग-सञ्चलनेन शब्दायमानाः हंसादि-पक्षिणो रसनादोरका इव भवन्ति। उपस्खलने रमणीयं यथास्यात्तथा प्रवहन्त्या जलभ्रमिरूपां नाभिं दर्शयन्त्या वनिताया इव निर्विन्ध्याया अन्तः प्रविश्य तद्रसास्वादं विधेहि, यतो हि वनितानां प्रियेषु विलास-प्रदर्शनमेव रतिप्रसंगे प्राथमिकं प्रेमप्रार्थनावाक्यं भवति।

हिन्दी—(हे मेघ !) मार्ग में लहरों के चलने से शब्द करते हुए पक्षि-गण ही जिनकी करधनी के समान हैं, पत्थरों पर गिरती हुई मानो मद से गिरती हुई मनोहरता के साथ बहने वाली तथा जल-भँवररूपी नाभि को दिखाने वाली निर्विन्ध्या नदी के पास पहुँच कर उसका रसास्वादन करो। क्योंकि स्त्रियों का अपने प्रिय के प्रति पहली प्रेम-प्रार्थना विलास प्रदर्शन ही होता है।

समासः—वीचीनां क्षोभः=वीचिक्षोभस्तेन (ष० तत्०)। स्तनिताश्च ते विहगाः सैव काञ्चीगुणो यस्याः, तस्याः (बहु०) स्खलितेन सुभगं यथा स्यात्तथा क्रियाविशेषणं (तृ० तत्०)। आवर्त एव नाभिः=आवर्तनाभिः "मयूरव्यंसकादयश्च (रूपक-समास०)। रसः अभ्यन्तरे यस्य स रसाभ्यन्तरः (बहुव्रीहि०)।

कोशः—स्त्रियां वीचिरयोर्मिषु, इत्यमरः। खगे विहङ्गः विहगः विहङ्गम विहायसः, इत्यमरः, स्त्रीकट्यां मेखलाकाञ्चीसप्तकीरशना तथा, इत्यमरः। स्यादा-वर्तोम्भसां भ्रमः, इत्यमरः। शृङ्गारादौ छले वीर्ये सुवर्णे विषशुक्रयोः। तिक्तादावमृते चैव निर्यासे पारदे ध्वनौ, आस्वादे च रसं प्राहुः, इति शब्दार्णवः। आवर्तश्चिन्तने वारिभ्रमे चावर्तने पुमान्, इति मेदिनी।

टिप्पणी—दर्शितः—"दृश्" धातु से क्त प्रत्यय लाकर उक्तरूप निष्पन्न किया जाता है। **निर्विन्ध्याः**—विन्ध्यात् निष्क्रान्ता=निर्विन्ध्या। यहाँ उक्त

विग्रह करके "निरादय" क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या" से समास किया गया है। यहाँ समास कर चुकने के बाद "परवल्लिङ्गं द्वन्द्व-तत्पुरुषयोः" इस सूत्र से उक्त समास के तत्पुरुष होने के कारण "पर" पद "विन्ध्य" की तरह पुंल्लिङ्गता होनी चाहिए थी, परन्तु उसका निषेध "द्विगुप्राप्ताऽऽपन्नाऽलं पूर्वगति समासेषु प्रतिषेधो वाच्याः" इस वार्तिक से हो जाता है।

अलंकारः—यहाँ विहगश्रेणी जो उपमेय है उसमें उपमानकाञ्चीगुण का, एवं आवर्त में नाभि का आरोप होने से शाब्द हुआ एवं निर्विन्ध्या में नायिका का आरोप आर्थ होने से यहाँ "एक देश विवर्ति सांगरूपक" है। इस शब्द में "श्लेष" अलङ्कार है। एवं चतुर्थ चरण के द्वारा पूर्वकथित तीनों चरणों के वाक्यों का समर्थन होने से "अर्थान्तरन्यास" नामक अलंकार है। इस प्रकार यहाँ तीनों अलङ्कारों का अंगाङ्गिभाव से रहने के कारण "संकर" नामक अलंकार हो गया ॥ २८ ॥

वेणी-भूतप्रतनु-सलिलाऽसावतीतस्य सिन्धुः
पाण्डुच्छाया तटरुहतरु-भ्रंशभिर्जीर्णपर्णैः।
सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥ २९ ॥

अन्वयः—वेणीभूत-प्रतनु-सलिला तटरुह-तरु-भ्रंशिभिः जीर्णपर्णैः पाण्डुच्छाया असौ सिन्धुः विरहावस्थया अतीतस्य ते सौभाग्यं व्यञ्जयन्ती येन विधिना कार्श्यं त्यजति, सुभग ! सः त्वया एवं उपपाद्यः।

व्याख्या—वेणी-भूतप्रतनुसलिला = केशपाशीभूतस्वल्पजला, तटरुहतरु-भ्रंशिभिः = तीरोत्पन्न-वृक्ष-भ्रंशिभिः, जीर्णपर्णैः = शुष्कपत्रैः, पाण्डुच्छाया = पीतवर्णा, असौ = एषा, सिन्धुः = एतन्नामिका नदी निर्विन्ध्या वा, विरहावस्थया = वियोगावस्थया, अतीतस्य = प्रोषितस्य, ते = मेघस्य, सौभाग्यम् = सुभगत्वम्; व्यञ्जयन्ती = प्रकाशयन्ती, येन = तादृशेन, विधिना = प्रकारेण, कार्श्यम् = कृशतां, स्वल्पजलताम्, त्यजति = जहाति, हे सुभग = हे मेघ ! सः = तादृशः व्यापारः, त्वयैव = मेघेनैवः, उपपाद्यः = सम्पादनीयः।

शब्दार्थः—वेणीभूत-प्रतनु-सलिला=पतली चोटी (वेणी) के समान जिसका जल स्वल्प है, तटरुहतरुभ्रंशिभिः=तीरों पर उत्पन्न वृक्षों से गिरे हुए, जीर्णपर्णैः=पुराने पत्तों से, पाण्डुच्छाया=पीले रंग की; असौ सिन्धुः=सिन्धुनाम की नदी (या निर्विन्ध्या), विरहावस्थया=वियोगावस्था के द्वारा, अतीतस्य=प्रोषित, ते=तेरे, सौभाग्यम्=सौभाग्य को, व्यञ्जयन्ती=प्रकाशित करती हुई, येन=जिस, विधिना=प्रकार से, कार्श्यम्=दुर्बलता को, त्यजति=छोड़े, हे सुभग ! =हे मेघ ! सः=वह उपाय, त्वया एव=तुम्हें ही, उपपाद्यः=करना चाहिए।

भावार्थः—हे मेघ ! कामिन्याः स्वल्पा वेणीव स्वल्पजलवती सिन्धुः नाम्नी नदी, त्वद्वियोगेन स्वतटोत्पन्नवृक्षात् पतितैः पुराणपत्रैः पीता या तव सौभाग्यशालित्वं सूचयति। अतः येनोपायेन सा कृशतां त्यजेत् तादृशः उपायः त्वया कर्तव्यः।

हिन्दी—हे मेघ स्त्रियों की चोटी की तरह कम जलवाली, तेरे वियोग के द्वारा, तीर पर उत्पन्न वृक्षों से गिरे पुराने पत्तों के कारण पीली कान्तिवाली सिन्धुनदी तुम्हारे सौभाग्य को सूचित कर रही है। अतः जिस उपाय से उसकी दुर्बलता दूर हो, ऐसा उपाय तुम्हें करना चाहिए।

समासः—वेणीभूतप्रतनु-सलिला=न वेणी अवेणी (नञ्० तत्०), अवेणी वेणी सम्पद्यते यथा, तथाभूतं वेणीभूतम् (अभूततद्भावे च्विः) वेणीभूतं प्रतनु सलिलं यस्याः सा वेणीभूतप्रतनुसलिला (बहुव्रीहि०) तटयोः रुहा तटरुहा (स० तत्०) तटरुहाश्च ते तरवः=तटरुहतरवः (कर्मधारयः) तेभ्यो भ्रंशिभिः तटरुहतरुभ्रंशिभिः (पञ्चमी तत्०)। जीर्णानि च तानि पर्णानि जीर्णपर्णानि (कर्म० धा०) तैः जीर्णपर्णैः। विरहस्य अवस्था विरहावस्था (ष० तत्०) तया। शोभनं भगं (भाग्यम्) यस्य स तत्सम्बुद्धौ सुभग ! (बहुव्री०)।

कोशः—वेणी प्रवेणी, इत्यमरः। स्त्री नद्यां ना नदे सिन्धुर्देशभेदेऽम्बुधौ गजे, इति वैजयन्ती। विधिर्ना नियमे काले विधाने परमेष्ठिनी, इति मेदिनी। तनुः काये त्वचि स्त्री स्यात् त्रिष्वल्पे विरले कृशे, इति मेदिनी।

टिप्पणी-वेणीभूतप्रतनुसलिला—अवेणी वेणी यथा सम्पद्यते तथाभूतं वेणीभूतम्; यहाँ अभूत तदभाव अर्थ में "वेणी" शब्द से "कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः" प्रत्यय होकर एवं "भू" धातु से "क्त" प्रत्यय लाकर "वेणीभूत" ऐसा रूप सम्पन्न होता है (वेणी + च्वि + भू + क्त)। **रुहाः**—रोहन्तीति रुहाः, "रुह" धातु से "इगुपधज्ञाप्रीकिर कः" इस सूत्र से "क" प्रत्यय होकर बहुवचन की विवक्षा में "रुहाः" ऐसा रूप बना है। **सिन्धुः**—कुछ टीकाकार "सिन्धु" को स्वतन्त्र मालवदेश में बहनेवाली "काला सिन्धु" नदी ही मानते हैं। परन्तु महोपाध्याय मल्लिनाथजी "सिन्धु" का अर्थ सामान्यतया निर्विन्ध्या ही करते हैं। जो भी हो, हमने अपनी व्याख्या में "वा" करके दोनों का उल्लेख कर दिया है।

अलङ्कारः—इस श्लोक में लिङ्गसाम्य के द्वारा सिन्धु से नायिका का एवं मेघ से नायक का व्यवहार किया गया है, अतः यहाँ "समासोक्ति" नामक अलङ्कार है ॥ २९ ॥

प्राप्यावन्तीनुदयनकथा—कोविदग्रामवृद्धान्-
पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम् ।
स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत् खण्डमेकम् ॥३०॥

अन्वयः—उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान् अवन्तीन् प्राप्य सुचरितफले स्वल्पीभूते गां गतानां स्वर्गिणां शेषैः पुण्यैः हृतं कान्तिमत् एकं दिवः खण्डम् इव पूर्वोद्दिष्टाम् श्रीविशालाम् विशालाम् पुरीम् अनुसर।

व्याख्या—उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्= वत्सराजकथाविज्ञजनपदवृद्धान्, अवन्तीन् = मालवदेशान्, प्राप्य = गत्वा, सुचरितफले = पुण्यफले, स्वल्पीभूते= क्षीणे सति, "क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति" इति भगवद्वाक्यानुसारम्, गाम्= पृथ्वीम्, गतानाम् = प्राप्तानाम्, स्वर्गिणाम् = देवलोकनिवासिनाम्, शेषैः =

अवशिष्टै:, पुण्यै:=धर्मै:, सुकृतैरिति भाव:, हृतम्=अवतारितम्, कान्ति-मत्=उज्ज्वलम्, एकम्=अन्यतमम्, दिव:=स्वर्गलोकस्य, खण्डमिव=शकलमिव, पूर्वोद्दिष्टाम्=पूर्वकथिताम्, श्रीविशालाम्=सम्पत्तिपूर्णाम् (शोभा-शालिनीम्), विशालाम्=उज्जयिनीम्, पुरीम्=नगरीम्, अनुसर=गच्छ।

शब्दार्थ:—उदयन०=जहाँ के गाँवों के वृद्धलोग उदयन राजा की कथाओं के पण्डित हैं, (ऐसे) अवन्तीन्=अवन्ती देश में, प्राप्य=जाकर, सुचरित-फले=पुण्यफल के, स्वल्पीभूते=क्षीण हो जाने पर, गाम्=पृथ्वी पर, गतानाम्=आए हुए, स्वर्गिणाम्=देवलोक में रहनेवालों के, शेषै: पुण्यै:=अवशिष्ट पुण्यों के द्वारा, हृतम्=लाया गया, कान्तिमत्=उज्ज्वल, एकम्=एक, दिव:=स्वर्ग के, शकलमिव=टुकड़े की तरह, पूर्वोद्दिष्टाम्=पहले कही गयी, श्रीविशालाम्=सम्पत्ति से परिपूर्ण, विशालाम्=उज्जयिनी, पुरीम्=नगरी को, अनुसर=जाना।

भावार्थ:—हे मेघ ! यत्रत्या: ग्रामवृद्धा: वत्सराजोपाख्यानज्ञातार: सन्ति, तामवन्ति नगरीं प्राप्य, पुण्यफले क्षीणे सति पृथिव्यामागतानां स्वर्गनिवासिना-मवशिष्टै: पुण्यफलैराहृतं स्वर्गस्यैकं दिव्यं शकलमिवं सम्पत्तिपूर्णां पूर्वकथिता-मुज्जयिनीं गच्छ।

हिन्दी—हे मेघ ! जहाँ के गाँवों के वृद्ध लोग राजा उदयन की कथा को जानने वाले हैं ऐसे अवन्तिनगरी में जाकर पुण्यफल के कम हो जाने पर पृथ्वी-पर आये हुए स्वर्गवासियों के बचे हुए पुण्यफलों के द्वारा लाये गये स्वर्ग के एक उज्ज्वल टुकड़े की तरह सम्पत्ति से परिपूर्ण पूर्वोक्त उज्जयिनीनगरी को जाना।

समास:—उदयनस्यकथा=उदयनकथा (ष० तत्०), उदयनकथायां कोविदा:=उदयनकथा-कोविदा: (स० तत्०)। ग्रामे वृद्धा:=ग्रामवृद्धा: (स० तत्०), उदयन–कथा–कोविद–ग्रामवृद्धा: येषु तान् उदयनकथाकोविद-ग्रामवृद्धान् (बहु०)। श्रिया विशालाम्=श्रीविशालाम् (तृ० तत्०)। पूर्वम् उद्दिष्टाम्=पूर्वोद्दिष्टाम् (सुप्सुपेति समास:)। विविधा: शाला: यस्यां सा विशाला (बहुव्री०) ताम्।

कोश:—विद्वान् विपश्चित् दोषज्ञः सन् सुधीः कोविदो बुधः, इत्यमरः। स्याद्धर्ममस्त्रियां पुण्यं श्रेयसी सुकृतं वृषः, इत्यमरः। द्यौ दिवौ द्वे स्त्रियामभ्रं व्योमपुष्करमम्बरम्, इत्यमरः। शोभा सम्पत्ति पद्मासु लक्ष्मीः श्रीरिव दृश्यते, इति शाश्वतः। विशालात्विन्द्रवारुण्यामुज्जयिन्यां तु योषिति, इति मेदिनी।

टिप्पणी—उदयनकथा—विदन्तीति विदाः—ज्ञानार्थक विद् धातु से "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" इस सूत्र से क प्रत्यय लाकर "विदाः" यह रूप बना है। ओकसः (वेद्यस्थान के) विदाः = कोविदाः यहाँ महोपाध्याय मल्लिनाथजी ने "ओकस" शब्द के ओकार का "पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्" इस नियमानुसार लोप करके "कोविद" शब्द की साधुता निष्पन्न करते हैं। अर्थात् "कोविद" शब्द का अर्थ हुआ "वेद्य" स्थान के जानकार। वत्सराज उदयन की कथा पैशाची भाषा में लिखित सम्प्रति अनुपलब्ध बृहत्कथा में, बृहत्कथामञ्जरी, कथासरित्सागर, भास लिखित "स्वप्नवासवदत्तम्", रत्नावली, आदि ग्रन्थों में पायी जाती है। **सुचरितफले**—शोभनं चरितं सुचरितम् "कुगतिप्रादयः" से समास हुआ है। **स्वल्पीभूतम्**—अस्वल्पं स्वल्पं सम्पद्यते यथा तथाभूतम्। इस विग्रह में "स्वल्प" शब्द से अभूततद्भाव अर्थ में "च्वि" प्रत्यय एवं "भू" धातु से, "क्त" प्रत्यय लाकर स्वल्पीभूत शब्द की निष्पत्ति होती है। **स्वर्गिणाम्**—स्वर्गमस्त्यस्य इति स्वर्गी। स्वर्ग से "अतः इनठनौ" से इन् प्रत्यय लाकर "स्वर्गी" यह रूप बनता है। तेषां स्वर्गिणाम्।

अलंकारः—यहाँ "विशालाम्" में "दिवः खण्डमिव" इस वाक्य के द्वारा स्वर्ग के एक खण्ड की सम्भावना की गयी है अतः "उत्प्रेक्षा" अलंकार हुआ, एवं "श्रीविशालां विशालाम्" यहाँ "यमक" अलंकार हुआ इसलिए दोनों का "संसृष्टि" अलंकार है ॥ ३० ॥

दीर्घीकुर्वन् पटु मदकलं कूजितं सारसानां
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः।
यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थना चाटुकारः ॥ ३१ ॥

अन्वयः—यत्र प्रत्यूषेषु पटु मदकलम् सारसानाम् कुजितम् दीर्घीकुर्वन् स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः अङ्गानुकूलः शिप्रावातः प्रार्थनाचाटुकारः प्रियतमः इव स्त्रीणाम् सुरतग्लानिम् हरति ।

व्याख्या—यत्र = विशालायाम्, प्रत्यूषेषु = प्रातःसमयेषु, पटु = स्फुटम्, मदकलम् = मदेनाव्यक्तमधुरम्, सारसानाम् = पक्षिविशेषाणाम्, कूजितम् = शब्दम्, दीर्घीकुर्वन् = वर्द्धयन्, स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः = विकसितपद्म सुगन्धिसंसर्गसुरभिः, अङ्गानुकूलः = अवयवानुरूपः, शरीरसुखद इति भावः, शिप्रावातः = शिप्रानदीपवनः; प्रार्थनाचाटुकारः = रतिरचनाय मधुरभाषी, प्रियतमः = वल्लभः, इव = यथा, स्त्रीणाम् = कामिनीनाम्, सुरतग्लानिम् = सम्भोगपरिश्रमम्, हरति = दूरीकरोति ।

शब्दार्थः—यत्र = जहाँ अर्थात् (विशाला में) प्रत्यूयेषु = प्रातःकाल, पटु = प्रस्फुट, मदकलम् = मद से मधुर, सारसानाम् = सारस पक्षियों के, कूजितम् = शब्द को, दीर्घीकुर्वन् = विस्तृत करता हुआ, स्फुटितकमलामोदमैत्री-कषायः = विकसित कमलों के सुगन्ध के संसर्ग से सुगन्धित, अङ्गानुकूलः = शरीर को सुख देने वाला, शिप्रावातः=शिप्रा नदी का वायु, प्रार्थनाचाटुकारः= रतिक्रिया में (पुनः प्रवृत्यर्थं) मधुर-मधुर बोलने वाले, प्रियतम इव = प्रेमी के समान, सुरतग्लानिम् = संभोग के परिश्रम को, हरति = दूर करता है ।

भावार्थः—हे मेघ ! यस्यां विशालायां प्रातःकाले सारस–पक्षिविशेषाणां प्रस्फुटं मदेनाव्यक्तमधुरं कलरवं वर्द्धयन् विकसितकमलसुगन्धिसंस्पर्शसुगन्धितः सुखदः शिप्रानदीपवनः रतिक्रीडायां पुनः प्रवृत्त्यर्थं मधुरभाषणशीलः वल्लभ इव कामिनीनां सम्भोगजन्यपरिश्रमं दूरीकरोति ।

हिन्दी—हे मेघ ! जिस विशाला नगरी में प्रातःकाल सारस पक्षियों के तीक्ष्ण एवं मद से मधुर कलरव को विस्तृत करता हुआ पूर्ण विकसित कमल की सुगन्धि के सम्पर्क से सुगन्धित शरीर के अंगों को सुख देने वाला शिप्रानदी का वायु रतिक्रीड़ा में (पुनः प्रवृत्ति के लिए) मीठी-मीठी बातें करने वाले प्रेमी के समान कामिनियों के सम्भोग के परिश्रम को दूर करता है ।

समासः—स्फुटितानि च तानि कमलानि=स्फुटितकमलानि (कर्मधा०) तेषाम् आमोदः (ष० तत्०) तेन मैत्री (तृ० तत्०) तया कषायः=स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः (तृ० तत्०)। अदीर्घं दीर्घं करोतीति दीर्घीकरोति (अभूततद०)। सुरतस्य ग्लानिं सुरतग्लानिं (ष० तत्०)। प्रार्थनायां चाटुकारः=प्रार्थनाचाटुकारः (स० तत्०)। अङ्गानाम् अनुकूलः अङ्गानुकूलः (ष० तत्०)।

कोश:—प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यम्, इत्यमरः। ध्वनौ तु मधुरास्फुटे कलः, इत्यमरः। स-रसो मैथुनी कामी गोनर्दः पुष्कराह्वयः, इति यादवः। चक्राङ्गः सारसो हंसः, शब्दार्णवः। मदोरेतसिकस्तूर्यां गर्वे हर्षे भेदानयोः, इति मेदिनी। पटुर्दक्षे च नीरोगे चतुरेऽप्यभिध्येयवत्, इति मेदिनी। रागद्रव्ये कषायोऽस्त्री निर्यासे सौरभे रसे, इति यादवः। विमर्दोत्थे परिमलो गन्धे जनमनोहरे। आमोदः, इत्यमरः।

टिप्पणी—सरसि चरन्ति=सारसाः, या सरसि भवाः सारसाः–दोनों अर्थों में "सरस" शब्द से अण् प्रत्यय लाकर "सारस" शब्द निष्पन्न किया जाता है। **मैत्री**—मित्रस्य भावः—मित्र शब्द से भाव या कर्म में 'ष्यञ्' प्रत्यय करके उसके आदि वृद्धि करके षित्त्वात् "षिद्गौरादिभ्यश्च" से ङीष् करके "मैत्री" शब्द की निष्पत्ति होती है। "अङ्गानुकूल" को यदि वायु का विशेषण मानते हैं तब तो शरीर को सुख देने वाला यह अर्थ होगा, यदि "प्रियतम" का विशेषण मानें तब गाढालिङ्गन के द्वारा "नायिका के अङ्गों को सुख देने वाले" ऐसा अर्थ होगा। अच्छा तो यह होता कि "देहलीदीपकन्यायेन" दोनों का विशेषण माना जाता। शिप्रा नदी उज्जयिनी के समीप बहती है जो कि बहुत ही प्रसिद्ध नदी है। कुछ लोग यहाँ "प्रार्थना चाटुकारः" को लेकर "खण्डिता" नायिका के अनुनय की कल्पना करते हैं। परन्तु मल्लिनाथजी ने उसका खण्डन इसलिए किया है कि यहाँ खण्डिता नायिका के साथ पहले संभोग नहीं किया गया और इसलिए अनुनय कर रहा है तो पुनः उसके "सुरतग्लानि" का प्रश्न ही कहाँ रह जाता है। अतः यहाँ खण्डिता नायिका नहीं है बल्कि स्वकीया है जिसके साथ एक बार संभोग कर चुकने

के बाद पुनः प्रवृत्ति के लिए थकी-माँदी नायिका के परिश्रम को चिकनी-चुपड़ी बातों से नायक दूर करता है ।

अलंकार—यहाँ पूर्णोपमा नामक अलंकार है ॥ ३१ ॥

'हारांस्तारांस्तरलगुटिकान्कोटिशः शंखशुक्तीः
शष्प—श्यामान्मरकतमणोनुन्मयूख—प्ररोहान् ।
दृष्ट्वा यस्यां विपणिरचितान्विद्रुमाणाञ्च भङ्गान्
संलक्ष्यन्ते सलिलनिधय—स्तोयमात्रावशेषाः ॥३२॥

अन्वयः—यस्यां कोटिशो विपणि-रचितान् तारान् तरल-गुटिकान् हारान् शंखशुक्तीः शष्पश्यामान् उन्मयूखप्ररोहान् मरकतमणीन् विद्रुमाणां भङ्गान् च दृष्ट्वा सलिल-निधयः तोयमात्रावशेषाः संलक्ष्यन्ते ।

व्याख्या—यस्याम्=विशालायाम्, कोटिशः=असंख्यान्, विपणिरचितान्=पण्येषु विक्रयार्थं प्रसारितान्; "अयं शब्दः विशेषणत्वेन सर्वत्र यथालिङ्गमन्वीयते देहलीदीपन्यायेन" न्यायं टिप्पण्यां स्पष्टयिष्यते ।" तारान्=विमलान् तरलगुटिकान्=हारमध्यमहारत्नान्; हारान्=मुक्तास्रजः, शंखशुक्तीः=कम्बुमुक्तास्फोटान्; शष्पश्यामान्=नव तृणमिव हरितान्, उन्मयूख प्ररोहान्=उद्गतांकुरान्, मरकतमणीन्=मरकताख्य-मणि—विशेषान् गारुडरत्नानीति यावत्, विद्रुमाणाम्=प्रवालानाम्, भङ्गान्=शकलान्, च=तथा, दृष्ट्वा=अवलोक्य, सलिलनिधयः=रत्नकराः समुद्रा इत्यर्थः । तोयमात्रावशेषाः=केवल-जलावशिष्टाः, संलक्ष्यन्ते=अनुमीयन्ते । पण्येषु प्रसारितान् तादृशान् रत्नसमूहान् दृष्ट्वा जनाः समुद्रः रत्नहीनः जलमात्रावशिष्ट इत्यनुमीयन्ते ।

शब्दार्थः—यस्याम्=जिस उज्जयिनी नगरी में, कोटिशः=असंख्य,विपणिरचितान्=(बेचने के लिए) बाजारों में फैलाये गये, तारान्=विशुद्ध, तरलगुटिकान्=जिनमें मध्यमणीभूत महारत्न थे, (ऐसे) हारान्=मोतियों की मालाओं को, शंखशुक्तीः=शंखो को एवं सीपियों को, शष्पश्यामान्=नयी घास की तरह गाढ़े हरे रंग की, उन्मयूख-प्ररोहान्=अङ्कुरों की तरह जिनकी किरणें ऊपर की

ओर फैल रही हैं, (ऐसे) मरकतमणीन्="मरकत" नामक मणियों को, विद्रुमाणां=मूँगों के, भङ्गान्=टुकड़ों को, दृष्ट्वा=देखकर, सलिलनिधयः=समुद्र, तोयमात्रावशेषाः=केवल जल वाला, संलक्ष्यन्ते=दिखाई देते हैं।

भावार्थः—हे मेघ ! यस्यामुज्जयिन्यां पण्येषु विक्रयार्थं प्रसारितान् बहून् बहुमूल्यमुक्तास्रजः शङ्खान् शुक्तीः हरितवर्णान् मनोरमाऽङ्कुरान् मरकतमणीन् प्रवालशकलांश्च विलोक्य जनाः रत्नाकराः समुद्राः जलमात्रावशिष्टाः सञ्जाता इत्यनुमीयन्ते ।

हिन्दी—हे मेघ ! जिस उज्जयिनी नगरी में बाजारों में बेचने के लिए फैलाये गये असंख्य बहुमूल्यमोतियों की मालाओं को, जिनमें कि मध्यमणीभूत महारत्न लगे हैं, शङ्खों को, सीपियों को, घास की तरह गाढ़े हरे रंग की जिनकी किरणें ऊपर की ओर फैल रही हैं, ऐसे मरकत मणियों को, और मूँगों के टुकड़ों को देखकर लोग, समुद्र को केवल जलवाला ही (रत्न-विहीन) समझेंगे ।

समासः—विपणिषु रचिता विपणिरचिताः (स० तत्०) तान् । तरलाः गुटिकाः येषु ते (बहु०) तान् शङ्खांश्च शुक्तींश्च तान् (द्वन्द्व०) । उद्गताः मयूखाः येषां ते उन्मयूखाः (बहु०) तान् । उन्मयूखाः तादृशाः प्ररोहाः येषां ते उन्मयूखप्ररोहाः (बहु०) तान् । तोयमेव तोयमात्रम् (रूपक-समासः) तोयमात्रमवशेषो येषान्ते तोयमात्रावशेषाः (बहु०) । शष्पाणीव श्यामान् (उपमितकर्म०) ।

कोशः—तरलो हारमध्यगः, इत्यमरः । पिण्डे मणौ सहारत्ने गुटिकाबद्धपारदे, इति शब्दार्णवः । मुक्तास्फोटः स्त्रियां शुक्तिः शंखः स्यात् कम्बुरस्त्रियाम्, इत्यमरः । शष्पोः बालतृणं घासः, इत्यमरः । किरणोस्रमयूखांशुगभस्तिघृणिरश्मयः, इत्यमरः ।

टिप्पणी—संलक्ष्यते—यह रूप "सम्" उपसर्गपूर्वक णिजन्त "लक्ष" धातु के प्रथमपुरुष के बहुवचन का है । यह धातु आत्मनेपदी है 'कर्म में णिच् का विधान किया गया है ।

(प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्ले
हैमं तालद्रुमवनमभूदत्र तस्यैव राज्ञः ।
अत्रोद्भ्रान्तः किल नलगिरिः स्तम्भमुत्पाट्य दर्पा-
दित्यागन्तून् रमयति जनो यत्र बन्धूनभिज्ञः ।।)

अन्वयः—अत्र वत्सराजः प्रतोद्यतस्य प्रियदुहितरम् जह्ले । अत्र तस्यैव राज्ञः हैमम् तालद्रुमवनम् अभूत् अत्र किल नलगिरिः दर्पात् स्तम्भम् उत्पाटच उद्भ्रान्तः यत्र इति अभिज्ञः जनः आगन्तून् बन्धून् रमयति ।

व्याख्या—अत्र = उज्जयिन्याम्, वत्सराजः = वत्सदेशाधिपः उदयन इति भावः, प्रद्योतस्य=प्रद्योताभिधेयस्य, उज्जयिनीनरेशस्येति भावः, प्रियदुहितरम्= प्रियां पुत्रीम्, वासवदत्तामिति भावः, जह्ले = अपहृतवान् । अत्र=उज्जयिन्याम्, तस्यैव = प्रद्योतस्यैव, राज्ञः = नरेशस्य, हैमम् = सुवर्णमयम्, तालद्रुमवनम् = तालवृक्षकाननम्, अभूत् = आसीत् । अत्र=उज्जयिन्याम्, नलगिरिः = नलगिरि-नामको हस्ती, दर्पात् = मदात्, स्तम्भम् = स्थाणुम्, उत्पाट्य = उद्धृत्य, उद्भ्रान्तः = उद्भ्रमणं चकार, इति = अनेन प्रकारेण, अभिज्ञः = पूर्वोक्तकथा-कोविदः, जनः = नरः, आगन्तून् = प्राग्घुणिकान्, अन्यस्मात् देशादागतान्, बन्धून् = बान्धवान्, रमयति = विनोदयति ।

शब्दार्थ—अत्र = उज्जयिनी, में वत्सराजः = वत्सदेश के राजा (उदयन) प्रद्योतस्य = प्रद्योतनामक, उज्जयिनी नरेश की, प्रियदुहितरम् = प्रिय पुत्रीका (वासवदत्ता का), जह्ले = अपहरण किया था । अत्र = इसी उज्जयिनी में, तस्यैव = प्रद्योत, राज्ञः = नरेश का ही, हैमम् = स्वर्णमय, तालद्रुमवनम् = तालवृक्षों का वन, अभूत् = था । अत्र = यहाँ, किल = निश्चय ही, नलगिरिः = नलगिरि नामक राजा का हाथी, दर्पात् = मदमत्त होकर, स्तम्भम् = खूँटे को, उत्पाटय = उखाड़कर, उद्भ्रान्तः = घूमा करता था, यत्र = जहाँ, इति = इस प्रकार से अभिज्ञः = उदयन-वासवदत्तादि की कथाओं के जानकार, जनः = लोग, आगन्तून् = दूसरे देशों से आये हुए, बन्धून् = बान्धवों का, रमयति = (मन) बहलाया करते हैं ।

भावार्थः—हे मेघ ! उदयन उज्जयिन्यामेव वासवदत्तामपहृतवान् । अत्रैव प्रद्योतस्य राज्ञः सौवर्णतालवृक्षकाननमासीत्, अस्मिन्नेव प्रदेशे नलगिरिनामा उज्जयिनीनरेशगजः मदात् स्थूणमुत्पाट्य बभ्राम, एतादृशीः कथाः श्रावयित्वा कथाज्ञाता जनः देशान्तरादागतानां बान्धवानां मनांसि रमयति ।

हिन्दी—हे मेघ ! इसी उज्जयिनी में उदयन ने वासवदत्ता का अपहरण किया था । यहीं प्रद्योत का सोने का बना तालवृक्षों का वन था । इसी उज्जयिनी में, नलगिरि नाम के राजा का हाथी मदमत्त होकर खम्भों को उखाड़कर घूमा करता था, इस प्रकार की कथाओं को कहकर जानकार लोग दूसरे देश से आये हुए बन्धुओं का मनोविनोद किया करते हैं ।

समासः—वत्सानां राजा=वत्सराजः (ष० तत्०) । प्रिया चासौ दुहिता च ताम्=प्रियदुहितरम् (कर्म० धा०) । तालानां द्रुमाः=तालद्रुमाः (ष० तत्०) तेषां वनम् तम् तालद्रुमवनम् (ष० तत्०) ।

कोशः—दर्पोऽवलेपोऽहङ्कारः, इत्यमरः । वार्तासंभाव्ययोः किल, इत्यमरः । प्रवीणे निपुणाभिज्ञनिष्णातशिक्षिताः, इत्यमरः । स्युरावेशिक आगन्तुरतिथिनां गृहागते, इत्यमरः ।

टिप्पणी—वत्सराजः—यहाँ वत्स पद का राजा के साथ समास हो जाने पर "राजाऽहःसखिभ्यष्टच्" इस सूत्र से "टच्" प्रत्यय हुआ है ।

अभिज्ञः—"अभि जानातीति" इस विग्रह में "अभि" पूर्वक ज्ञानार्थक "ज्ञा" धातु से "आतश्चोपसर्गे कः" इस सूत्र से "क" प्रत्यय लाकर "अभिज्ञ" ऐसा रूप बना है ।

अलंकार—जयदेव के "भाविकं भूतभाव्यर्थसाक्षाद्दर्शनवर्णनम् ।
अलं विलोकयाऽद्यापि युध्यन्तेऽत्र सुराऽसुराः ॥"

इस लक्षण के अनुसार यहाँ "भाविक" नामक अलङ्कार है, क्योंकि यहाँ वत्सराजादि के बीते हुए वृत्तान्त का साक्षात् दर्शन के समान कथन है ॥

(पत्रश्यामा दिनकरहयस्पर्धिनो यत्र वाहाः
शैलोदग्रास्त्वमिव करिणो वृष्टिमन्तः प्रभेदाद् ।
योधाग्रण्यः प्रतिदशमुखं संयुगे तस्थिवांसः
प्रत्यादिष्टाभरणरुचयश्चन्द्रहास-व्रणाङ्कैः ॥)

अन्वयः—यत्र वाहाः पत्रश्यामाः दिनकरहयस्पर्धिनः शैलोदग्राः करिणः प्रभेदात् त्वमिव वृष्टिमन्तः योधाग्रण्यः संयुगे प्रतिदशमुखम् तस्थिवांसः चन्द्रहासव्रणाङ्कैः प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः ।

व्याख्या—यत्र=उज्जयिन्याम्, वाहाः=घोटकाः, पत्रश्यामाः=पर्णश्यामाः हरितवर्णाः इत्यर्थः; दिनकरहयस्पर्धिनः=सूर्याश्वतुल्याः, वर्णेन वेगेन च सूर्याश्वतुल्या इति भावः । शैलोदग्राः=पर्वतेवोच्छ्रिताः, करिणः=गजाः, प्रभेदात्=मदस्रवणात्, त्वमिव=भवत्समानः, मेघेवेत्यर्थः, वृष्टिमन्तः=वर्षणशीलाः सन्तीति शेषः । योधाग्रण्यः=सेनानायकाः, संयुगे=युद्धे, प्रतिदशमुखम्=रावणसमक्षम्, तस्थिवांसः=स्थिताः, चन्द्रहासव्रणाङ्कैः=रावणकरवाल-क्षतचिह्नैः, प्रत्यादिष्टाऽऽभरणरुचयः=तिरस्कृतभूषणकान्तिवन्तः सन्तीति भावः ।

शब्दार्थः—यत्र=जिस उज्जयिनी में, वाहाः=घोड़े, पत्रश्यामाः=पत्ते के समान हरे रंग के, दिनकरहयस्पर्धिनः=सूर्य के घोड़ों से, रंग में एवं वेग में होड़ लेने वाले हैं। शैलोदग्राः=पर्वत के समान ऊँचे, करिणः=हाथी, प्रभेदात्=मदजल के गिरने के कारण, त्वमिव=तुम्हारी तरह, वृष्टिमन्तः=वर्षा वाले हैं। योधाग्रण्यः=श्रेष्ठ योद्धा-गण, संयुगे=युद्ध में, प्रतिदशमुखम्=रावण के सम्मुख, तस्थिवांसः=स्थिर होकर (उसके विरुद्ध होकर,) चन्द्रहासव्रणाङ्कैः=रावण के तलवार के प्रहार के चिह्नों से, प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः=आभूषणों को तिरस्कृत करने वाली कान्ति से युक्त है ।

भावार्थः—हे मेघ ! यत्रत्याः अश्वाः हरितवर्णत्वात् वेगाच्च सूर्याश्वसंघर्षणशीलाः सन्ति, पर्वतसमानोच्चाः गजाः मदजलवर्षणात् वृष्टिमन्तः सन्ति, श्रेष्ठाः

योद्धारः रणे रावणं प्रतियुद्धयन्तस्तदीयखड्गप्रहारचिह्नैः प्रत्याख्याताऽऽमरण-कान्तयः सन्ति ।

हिन्दी—हे मेघ ! जहाँ घोड़े हरे रंग के होने के कारण (और वेग के कारण) सूर्य के घोड़ों से होड़ लेने वाले हैं, पर्वत के समान ऊँचे हाथी मदजल के गिरने से वृष्टि वाले हैं एवं श्रेष्ठ योद्धागण युद्ध में रावण के विरुद्ध युद्ध करते हुए रावण के खड्ग के प्रहार-चिह्न से युक्त होकर आभूषण को तिरस्कृत करने वाली कान्ति से युक्त हैं ।

समासः—पत्रमिव श्यामाः=पत्रश्यामाः (कर्मधारयः) । दिनकरस्य हयाः =दिनकरहयाः (ष० तत्०) तैः स्पर्धन्ते तच्छीला इति दिनकरहयस्पर्धिनः । चन्द्रहासस्य व्रणानि चन्द्रहासव्रणानि (ष० त०) तान्येव अङ्कास्तैः चन्द्रहास-व्रणाङ्कैः (रूपकसमासः) । आभरणानां रुचयः आभरणरुचयः (ष० तत्०) प्रत्यादिष्टा आभरणरुचयो यैस्ते=प्रत्यादिष्टाऽभरणरुचयः (बहु०) ।

कोशः—वाजिवाहाऽर्वगन्धर्वहयसैन्धवसप्तयः, इत्यमरः । खड्गे तु निस्त्रिंश-चन्द्रहासाऽसिरिष्टयः, इत्यमरः । स्युः प्रभारुग्रुचित्विड्भाभाश्छविद्युतिदीप्तयः, इत्यमरः ।

टिप्पणी—वाहाः—"वह्" धातु से घञ् प्रत्यय करके "वाह" ऐसा रूप बनाया जाता है । दिनकरः—करोतीति करः दिनं करोतीति दिनकरः ॥

जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधूपै-
र्बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहारः ।
हर्म्येष्वस्याः कुसुमसुरभिष्वध्वखेदं नयेथाः
लक्ष्मीं पश्यँल्ललितवनितापादरागाङ्कितेषु ॥ ३२ ॥

अन्वयः—जालोद्गीर्णैः केशसंस्कारधूपैः उपचितवपुः बन्धुप्रीत्या भवन-शिखिभिः दत्तनृत्योपहारः कुसुमसुरभिषु ललितवनितापादरागाङ्कितेषु, हर्म्येषु अस्याः लक्ष्मीम् पश्यन् अध्वखेदम् नयेथाः ।

व्याख्या—जालोद्गीर्णैः=वातायननिर्गतैः, केशसंस्कारधूपैः=कामिनीवेणी संस्कृतधूपैः, उपचितवपुः=परिपुष्टदेहः, बन्धुप्रीत्या=बान्धवस्नेहेन, भवन-शिखिभिः=सदनमयूरैः, दत्तनृत्योपहारः=प्रदत्तनर्तनोपहारः, कुसुमसुरभिषु=पुष्प सौरभेषु, ललितवनितापादरागाङ्कितेषु=सुन्दराङ्गनाचरणलाक्षारुचि चिह्नितेषु, हर्म्येषु=अट्टालिकासु, अस्याः=उज्जयिन्याः, लक्ष्मीम्=शोभाम्, पश्यन्=बिलोकयन्, अध्वखेदम्=मार्गपरिश्रमम्, नयेथाः=दुरीकुरु।

शब्दार्थः—जालोद्गीर्णैः=जालियों से (खिड़की से) निकलते हुए, केश-संस्कारधूपैः=(कामिनियों के) केशों को सुगन्धित करने वाले धूप से, उपचितवपुः=परिपुष्ट देह वाला, बन्धुप्रीत्या=बान्धव स्नेह से, भवनशिखिभिः=घर के (पालतू) मोरों द्वारा, दत्तनृत्योपहारः=जिसे नृत्य का उपहार दिया गया है, कुसुम-सुरभिषु=फूलों के सुगन्ध से सुगन्धित, ललितवनितापादरागा-ऽङ्कितेषु=सुन्दर स्त्रियों के पैरों में लगे महावर के चिह्न से चिह्नित, हर्म्येषु=महलों में, अस्याः=इस उज्जयिनी की, लक्ष्मीं=शोभा को, पश्यन्=देखता हुआ, अध्वखेदम्=रास्ते के परिश्रम को, नयेथाः=दूर करना।

भावार्थः—हे मेघ! तत्रोज्जयिन्यां वातायनमार्गनिर्गतैः कामिनीकच-वासनार्थैः गन्धद्रव्यधूपैः परिपुष्टशरीरः भ्रातृस्नेहेन सदनमयूरेण नृत्यद्वारा कृतातिथ्यः (त्वम्) पुष्पपरिमलेषु सुन्दरललनाचरणालक्तचिह्नितेषु भवनेषु उज्जयिन्याः शोभामवलोकयन् मार्गगमनजन्यपरिश्रममपनय।

हिन्दी—हे मेघ! वहाँ उज्जयिनी में खिड़की की जालियों से स्त्रियों के केशों को सुगन्धित करनेवाले धूप से परिपुष्ट देहवाले भ्रातृस्नेह से घर के पालतू मयूरों के द्वारा सत्कृत तुम पुष्प के सुगन्ध से सुगन्धित, सुन्दर स्त्रियों के पैरों में लगे महावर के चिह्नों से युक्त महलों में उज्जयिनी की शोभा को देखते हुए मार्ग में चलने के कारण उत्पन्न परिश्रम को दूर करना।

समासः—जालेभ्यः उद्गीर्णाः तैः (ष० तत्०)। केशानां संस्कारः केश-संस्कारः (ष० तत्०) तस्य धूपस्तैः (ष० तत्०)। बन्धोः प्रीतिः तया बन्धु-प्रीत्या (ष० तत्०)। उपचितं वपुर्यस्य स उपचितवपुः (बहु०)। भवनेषु

शिखिनः भवनशिखिनः तैः (स० तत्०)। नृत्यमेवोपहारः नृत्योपहारः (रूपक-समासः) दत्तः नृत्योपहारः यस्मै सः (बहुव्रीहिः)। कुसुमैः सुरभिषु = कुसुम-सुरभिषु (तृ० तत्०)। ललिताश्च ताः वनिताः = ललितवनिताः (कर्म०धा०), पादयोः रागः = पादरागः (स० तत्०) ललितवनितानां पादरागः = ललित-वनितापादरागः (ष० तत्०) तेन अङ्कितेषु (तृ० तत्०) = ललितवनिता-पादरागाङ्कितेषु ।

कोशः—जालं गवाक्ष आनाये जालके कपटे गणे, इति यादवः। निदिग्धोपचिते, इत्यमरः। उपायनमुपग्राह्यमुपहारस्तथोपदा, इत्यमरः। ललितं त्रिषु सुन्दरम्, इति शब्दार्णवः। अयनं वर्त्म मार्गाऽध्वः, इत्यमरः। हर्म्यादि धनिनां वासः, इत्यमरः।

टिप्पणी—उद्गीर्णः—"उद्" उपसर्गपूर्वक निगरणार्थक "गॄ" धातु से "क्त" प्रत्यय करके णत्व करके "उद्गीर्णः" ऐसा रूप बनता है। **संस्कारः**—"सम्" उपसर्गपूर्वक करणार्थक (डु) "कृ" धातु से घञ् प्रत्यय करके ञित्त्वात् आदि वृद्धि करके "सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे" इस सूत्र से सुडागम करके अनुस्वारादि करके "संस्कार" ऐसा रूप बना है। (सम् + सकार + अ = संस्कार) **शिखिनः**—"शिखा" शब्द व्रीह्यादिगण में पढ़ा गया है। अतः व्रीह्यादिभ्यश्च" इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय करके 'शिखिन्' ऐसा रूप बनता है। उक्त रूप उसी शब्द के बहुवचन का है। **नृत्यम्**—गात्र विक्षेपार्थक "नृती" धातु से "ऋदुपधचाऽक्लृपिचृतेः" इस सूत्र से "क्यप्" प्रत्यय करके "नृत्य" ऐसा रूप बनता है। **उपहारः**—"उपसर्गपूर्वक "हृ" धातु से "घञ्" प्रत्यय करके "उपहार" ऐसा रूप बनता है। कुछ टीकाकार "अध्वखेदं नयेथाः" के स्थान पर "अध्व-खिन्नाऽन्तरात्मा" ऐसा पाठ मानते हैं और इसका सम्बन्ध आगे वाले श्लोक के साथ कर इन दोनों को "युग्मक" मानते हैं ॥ ३२ ॥

भर्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः
पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य ।

धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या-
स्तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः ॥ ३३ ॥

अन्वयः—भर्तुः कण्ठच्छविः इति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः कुवलयरजोगन्धिभिः तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैः गन्धवत्याः मरुद्भिः धूतोद्यानं त्रिभुवनगुरोः चण्डीश्वरस्य पुण्यं धाम यायाः ।

व्याख्या—भर्तुः=स्वामिनो नीलकण्ठस्य, कण्ठच्छविः=गलशोभा, इति =अस्माद्धेतोः, गणैः=दूतैः, सादरम्=सम्मानपूर्वकम्, वीक्ष्यमाणः=अवलोक्यमानः (सन्), कुवलयरजोगन्धिभिः=पद्मपरागसुगन्धितैः, तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैः=जलक्रीडातत्परवनिताऽवगाहनसुगन्धितैः, गन्धवत्याः=एतन्नामिकायाः सरितः, मरुद्भिः=वायुभिः, धूतोद्यानम्=प्रकम्पिताऽऽरामम्, त्रिभुवनगुरोः=त्रैलोक्यनाथस्य, चण्डीश्वरस्य=भवानीपतेः, पुण्यम्=पवित्रम्, धाम=स्थानम्, महाकालमिति भावः, यायाः=गच्छेः ।

शब्दार्थः—भर्तुः=स्वामी नीलकण्ठ के, कण्ठच्छविः=गले की शोभा के समान (तुम हो), इति=इस कारण, गणैः=शिवजी के गणों द्वारा, सादरम्=ससम्मान, वीक्ष्यमाणः=देखा जाता हुआ, कुवलयरजोगन्धिभिः=कमल के पराग से सुगन्धित, तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैः=जलक्रीडा में आसक्त युवतियों के स्नान से सुगन्धित, गन्धवत्याः=गन्धवती नाम की नदी के, मरुद्भिः =वायु के द्वारा, धूतोद्यानम्=जहाँ का बगीचा कँपाया गया है, त्रिभुवनगुरोः=त्रैलोक्यनाथ, चण्डीश्वरस्य=पार्वतीपति (शिवजी के उस) पुण्यम्=पवित्र, धाम=स्थान को (महाकाल को), यायाः=जाना ।

भावार्थः—हे मेघ ! शिवस्य गलशोभामिव त्वां प्रथमाः सादरमवलोकयिष्यन्ति त्वञ्चोज्जयिन्यां पद्मपरिमलसुगन्धितैः जलक्रीडाऽऽसक्तकामिनीस्नान(चन्दनादिभिः) सुरभितैः गन्धवत्याः नद्याः वायुभिः कम्पिताऽऽरामं भवानीभर्तुः महाकालेश्वरस्य पवित्रं धाम गच्छ ।

हिन्दी—हे मेघ ! शिवजी के गले की शोभा के समान तुम्हें शिवजी के गण सादर देखेंगे । तुम भी वहाँ कमल के पराग से सुगन्धित जलक्रीड़ा में लगी

कामिनियों के स्नान से (देह में लगे चन्दनादि से) सुवासित गन्धवती के वायु के द्वारा जहाँ का बगीचा कँपा दिया गया है, महाकालेश्वर के उस पवित्र स्थान में जाना।

समासः–कण्ठस्येव छविर्यस्य स कण्ठच्छविः (बहु०)। कुवलयानां रजः= कुवलयरजः (ष० तत्०) तेषां गन्धः=कुवलयरजोगन्धः (ष० तत्०) सः, येषामस्तीति तैः=कुवलयरजोगन्धिभिः (बहुव्री०)। तोये क्रीडा=तोयक्रीडा (स० तत्०) तस्यां निरताः=तोयक्रीडानिरताः, ताश्च युवतयः=तोयक्रीडा-निरतयुवतयः (कर्मधा०) तासां स्नानं (ष० तत्०) तेन तिक्तास्तैः (तृ० तत्०)। कम्पितानि उद्यानानि यस्मिन् तत् कम्पितोद्यानम् (बहुव्री०)। त्रयाणां भुवनानां समाहारः=त्रिभुवनम् (समाहारद्विगुः) तस्य गुरुः, तस्य (ष० तत्०)।

कोशः—कण्ठो गलः, इत्यमरः। गणस्तु गणनायां स्याद् गणेशे प्रमथे चये, इति शब्दार्णवः। प्रमथाः स्युः पारिषदाः, इत्यमरः। स्नानीयेऽभिषये स्नानम्, इति यादवः। कटुतिक्तकषायास्तु सौरभे च प्रकीर्तिताः, इति हलायुधः। गृहदेह-त्विट् प्रभावाधामान्यथ इत्यमरः।

टिप्पणी—कण्ठच्छविः—यहाँ "सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ" इस सूत्र के "सप्तमी" पद से ज्ञापित "व्यधिकरण बहुव्रीहि" समास हुआ है। समुद्र-मन्थन के समय निकले विष को शिवजी ने संसार की रक्षा के लिए पी लिया था, उसके ताप से उनका गला मेघ की तरह "नीला" हो गया था इसलिए शिवजी को नीलकण्ठ कहा गया है। **वीक्षमाणः**–"वि" उपसर्गपूर्वक "इक्ष" धातु से "शानच्" प्रत्यय करके "वीक्षमाणः" ऐसा रूप बना है।

अलङ्कार—यहाँ "उदात्ताऽलङ्कार" है॥ ३३॥

अप्यन्यस्मिञ्जलधर ! महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः।

कुर्वन् सन्ध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यते गर्जितानाम् ॥ ३४ ॥

अन्वयः—हे जलधर ! महाकालम् अन्यस्मिन् अपि काले आसाद्य ते स्थातव्यम्, यावत् भानुः नयनविषयम् अत्येति । श्लाघनीयाम् शूलिनः सन्ध्याबलिपटहतां कुर्वन् आमन्द्राणाम् गर्जितानाम् अविकलम् फलम् लप्स्यसे ।

व्याख्या—हे जलधर ! = हे मेघ ! महाकालम् = एतन्नामकज्योतिर्लिङ्गस्थानम्, अन्यस्मिन्नपि = अपरस्मिन्नपि, काले = समये, आसाद्य = प्राप्य, ते = त्वया, स्थातव्यम् = निवसितव्यम्, यावत् = यावत् कालम्, भानु = दिनकरः, नयनविषयम् = दृष्टिगोचरताम्, अत्येति = अतिक्रामति, सूर्यास्तसमयपर्यन्तं त्वया तत्र स्थातव्यम् इति भावः । श्लाघनीयाम् = प्रशंसनीयाम्, शूलिनः = महाकालेश्वरस्य, शिवस्येत्यर्थः, सन्ध्याबलिपटहताम् = सायङ्कालिकपूजापटहभावम्, कुर्वन् = विदधत्, आमन्द्राणाम् = ईषद्गम्भीराणाम्, गर्जितानाम् = स्तनितानाम्, अविकलम् = सम्पूर्णम्, फलम् = पुण्यम्, लप्स्यसे = प्राप्स्यसि ।

शब्दार्थः—हे जलधर ! = हे मेघ ! महाकालम् = चण्डीश्वर के स्थान में, अन्यस्मिन्नपि = सन्ध्या के अतिरिक्त, काले = समय में भी, आसाद्य = जाकर, ते = तुम्हें, स्थातव्यम् = (वहाँ) ठहरना चाहिए, यावत् = जब तक, भानुः = सूर्य, नयनविषयम् = दृष्टिगोचरता को, अत्येति = अतिक्रमण करता है, अर्थात् जब तक सूर्य डूब नहीं जाते हैं, तब तक । श्लाघनीयाम् = प्रशंसनीय, शूलिनः = शिवजी की, सन्ध्याबलिपटहताम् = सन्ध्या की पूजा (आरती) में नगाड़े का काम, विदधतः = करता हुआ (तुम), आमन्द्राणाम् = किञ्चिद् गम्भीर, गर्जितानाम् = गर्जन का, अविकलम् = सम्पूर्ण, फलम् = फल को, लप्स्यसे = प्राप्त करेगा ।

भावार्थः—हे मेघ ! सन्ध्याऽतिरिक्तसमयेऽपि महाकालेश्वरस्य पुण्यं धाम गत्वा त्वं सूर्यो यावत्कालपर्यन्तमस्ताचलं न गच्छेत् तावत्कालपर्यन्तं स्थास्यसि । (यतो हि) सायन्तनपूजापटहतां विदधत् ईषद्गम्भीरनादस्त्वं गर्जितानां सम्पूर्णं फलं प्राप्स्यसि ।

हिन्दी—हे मेघ ! सन्ध्या के अतिरिक्त दूसरे समय में भी महाकाल के पवित्र स्थान में जाकर जबतक सूर्य डूब नहीं जाते तब तक ठहरना। (क्योंकि) महाकालेश्वर की सायंकाल की पूजा (आरती) में नगाड़े के काम को करते हुए तुम थोड़े गम्भीर गर्जन का सम्पूर्ण फल प्राप्त करोगे।

समासः—धरतीति धरः जलानां धरः=जलधरः (ष० तत्०)। नयनयोः विषयः=नयनविषयः (ष० तत्०) तम्। सन्ध्यायाः बलिः=सन्ध्याबलिः (ष० तत्०) तस्य पटहः=सन्ध्याबलिपटहः (ष० तत्०) तस्य भावस्तम्=सन्ध्याबलिपटहताम्। विगताः कलाः यस्मात् तत् विकलम् (बहु०) न विकलम् =अविकलम् (नञ्)।

कोशः—यावत्तावच्च साकल्येऽवधौ मानेऽवधारणे, इत्यमरः। शिवः शूली महेश्वरः, इत्यमरः। बलिः पूजापहारे च, इति वैजयन्ती। कलो मन्द्रस्तु गम्भीरे, इत्यमरः। आनकः पटहोऽस्त्री स्यात्, इत्यमरः। स्तनितं गर्जितं मेघनिर्घोषे-रसितादि च, इत्यमरः।

टिप्पणी—धरतीति धरः=यहाँ धारण अर्थ में विद्यमान "धृञ्" धातु से "नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः" इस सूत्र से पचादित्वात् "अच्" प्रत्यय किया गया है। **आसाद्य**—"आङ्" उपसर्गपूर्वक (ष) "सद्" धातु से क्त्वा प्रत्यय करके एवं उसके स्थान पर ल्यबादेश करके "आसाद्य" ऐसा रूप बनता है। **अत्येति**—"अति" उपसर्गपूर्वक गत्यर्थक 'इण्' धातु के लट् लकार के प्रथमपुरुष के एकवचन का 'अत्येति' यह रूप है। **स्थातव्यं ते**—तव्यत् प्रत्यय के कृत्य होने के कारण 'स्थातव्यम्' के योग में 'कृत्यानां कर्तरि वा' इस सूत्र से विकल्प से षष्ठी यहाँ हुई है, जिसका अर्थ 'त्वया' है। यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि युष्मद् अस्मद् शब्द को ते, मे, आदेश वाक्य के आदि में नहीं होता है, जैसा कि 'गन्तव्या ते वसतिः' यहाँ पर भी 'ते' प्रयोग वाक्य के आदि में नहीं किया गया है। **सन्ध्या**—'सम्' उपसर्गपूर्वक चिन्ता अर्थ में विद्यमान् 'ध्यै' धातु से आत्व करके 'आतश्चोपसर्गे' इस सूत्र से 'अङ्' प्रत्यय करके स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् करके 'संध्या' ऐसा रूप निष्पन्न होता है।

अलंकार—यहाँ पूर्वार्ध कथित वाक्यों का उत्तरार्ध कथित वाक्य हेतु है, अतः यहाँ 'काव्यलिङ्ग' नामक अलङ्कार है ॥ ३४ ॥

पादन्यासैः क्वणित-रशनास्तत्र लीलावधूतैः
रत्नच्छायाखचित-वलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः ।
वेश्यास्त्वत्तो नखपद-सुखान् प्राप्यवर्षाग्रबिन्दू-
नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकर-श्रेणि-दीर्घान् कटाक्षान् ॥ ३५ ॥

अन्वयः—तत्र पादन्यासैः क्वणितरशनाः लीलावधूतैः रत्नच्छायाखचित-बलिभिः चामरैः क्लान्तहस्ताः वेश्याः त्वत्तः नखपदसुखान् वर्षाग्रबिन्दून् प्राप्य त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् आमोक्ष्यन्ते ।

व्याख्या—तत्र = सन्ध्यासमये, पादन्यासैः = चरणप्रक्षेपैः, क्वणितरशनाः = मुखरितमेखलाः, लीलावधूतैः=विलाससञ्चलितैः, रत्नच्छायाखचितवलिभिः= कङ्कणमणिप्रभाव्याप्तदण्डैः, चामरैः = बालव्यजनैः, क्लान्तहस्ताः = खिन्नहस्ताः, वेश्याः = वाराङ्गनाः, त्वत्तः = भवतः मेघादिति भावः, नखपदसुखान्=नखक्षत-सुखदान्, वर्षाग्रबिन्दून्=वृष्टिप्रथमकणान्, प्राप्य = लब्ध्वा, त्वयि = मेघे, मधु-करश्रेणिदीर्घान् = भ्रमरपंक्तीवायतान्, कटाक्षान् = अपाङ्गान्, आमोक्ष्यन्ते = परित्यक्ष्यन्ति ।

शब्दार्थः—तत्र = संध्या समय में, पादन्यासैः = पैरों के सञ्चालन से, क्वणितरशनाः=जिनकी करधनियाँ बजती रहती हैं, लीलावधूतैः = विलासपूर्वक डुलाये गये, रत्नच्छायाखचितवलिभिः = मणियों की प्रभा से व्याप्तदण्डवाले, चामरैः = चँवरों से, क्लान्तहस्ताः = थके हुए हाथों वाली, वेश्याः=नर्तकियाँ = त्वत्तः = तुमसे, नखपदसुखान् = नखक्षत को सुख देनेवाली, वर्षाग्रबिन्दून् = वर्षा की पहली बूंदों को, प्राप्य = पाकर, त्वयि = तुम्हारे ऊपर, मधुकरश्रेणि-दीर्घान् = भ्रमरों की पंक्ति की तरह लम्बी, कटाक्षान् = कटाक्ष, आमोक्ष्यन्ते = फेकेंगी ।

भावार्थः—हे मेघ ! सायंकाले चरणविक्षेपैः मुखरितमेखलाः सविलासं मणिमयदण्डयुक्तचामरसञ्चालनेन खिन्नहस्ताः गणिकाः त्वत्तः नखक्षतशान्तिप्रदान् वृष्टेः प्रथमबिन्दून् लब्ध्वा त्वयि भ्रमरपंक्तीवायतान् कटाक्षान् परित्यक्ष्यन्ति । कामिनीकटाक्षरूपं शिवस्तुतिफलं सद्यः लप्स्यसे इति भावः ।

हिन्दी—हे मेघ ! सायंकाल वहाँ, चरणसंचालन से जिनकी करधनियाँ बजती रहती हैं, विलासपूर्वक मणिमयदण्डवाले चँवरों को डुलाने के कारण थके हुए हाथों वाली, (ऐसी) नर्तकियाँ, तुमसे नखक्षत को सुख देने वाली वर्षा की प्रथम बिन्दुओं को पाकर, तुम्हारे ऊपर भौरों की पंक्ति के समान लम्बी कटाक्षें फेंकेगी। इस तरह शिवजी की स्तुति का कामिनी के कटाक्षरूप फल तुरन्त पा जाओगे ।

समासः—पादयोः न्यासः=पादन्यासः (ष० तत्०) तैः क्वणिता रशना यासां ताः पादन्यासक्वणितरशनाः (बहुव्री०) । लीलया अवधूतैः=लीलावधूतैः (तृ० तत्०) । रत्नानां छाया=रत्नच्छाया (ष० तत्०) तया खचिता वलयो येषां तैः=रत्नच्छायाखचितवलिभिः (बहुव्री०) । क्लान्तौ हस्तौ यासां ताः क्लान्तहस्ताः (बहुव्री०) । नखानां पदानि=नखपदानि (ष० तत्०) तेषु सुखाः तान् नखपदसुखान् (स० तत्०) । अग्राश्च ते बिन्दवः=अग्रबिन्दवः (कर्मधा०) वर्षस्य अग्रबिन्दवः=वर्षाग्रबिन्दवः (ष० तत्०) । मधुकराणां श्रेणी मधुकर श्रेणी तद्वद्दीर्घान् मधुकरश्रेणिदीर्घान् (उपमानानि सामान्यवचनैरिति समासः) ।

कोशः—पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्मांघ्रिवस्तुषु, इत्यमरः । वलिश्चामरदण्डे च जरा विश्लथचर्मणि, इति विश्वः । करोपहारयोः पुंसि वलिः, इत्यमरः । सुखहेतौ सुखे सुखम्, इति शब्दार्णवः । दीर्घमायतम्, इत्यमरः । कटाक्षोऽपाङ्गदर्शने, इत्यमरः । पृषन्ति बिन्दुपृषतः पुमांसो विप्रुषः स्त्रियाम्, इत्यमरः ।

टिप्पणी—न्यास—"नि" उपसर्गपूर्वक "अस्" धातु से भाव में "घञ्" प्रत्यय करके आदिवृद्धि करके "न्यास" शब्द निष्पन्न होता है । **क्वणित**—यहाँ शब्दार्थक "क्वण" धातु से कर्ता में "क्त" प्रत्यय हुआ है, क्योंकि यह धातु

अकर्मक है, इसलिए "गत्यर्थाऽकर्मकश्लिषशीङ्स्थाऽऽसवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च" इस सूत्र से कर्ता में "क्त" प्रत्यय का विधान किया जाता है। **त्वत्तः**—यहाँ "युष्मद्" शब्द से "पञ्चम्यास्तसिल्" इस सूत्र से तसिल् प्रत्यय करके उसके परे रहते "प्रत्ययोत्तरपदयोश्च" इस सूत्र से "युष्मद्" शब्द के स्थान पर "त्वत्" आदेश का विधान करके "त्वत्तः" ऐसा रूप बना है। **मधुकरः**–मधु करोतीति = मधुकरः, यहाँ करोति तच्छीलः इस अर्थ में "कृ" धातु से "कृञो हेतुताच्छील्याऽनुलोम्येषु" इस सूत्र से "ट" प्रत्यय करके गुण करके मधुकर ऐसा रूप बनता है।

अलंकार—यहाँ "मधुकरश्रेणिदीर्घान्" इस स्थल पर "इव" आदि उपमानवाची सामान्य शब्द का लोप होने के कारण "लुप्तोपमा" नामक अलङ्कार है॥ ३५॥

पश्चादुच्चैर्भुज--तरुवनं मण्डलेनाभिलीनः
सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः।
नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्याः॥३६॥

अन्वयः—पश्चात् नृत्यारम्भे प्रतिनवजपापुष्परक्तम् सान्ध्यम्, तेजः दधानः उच्चैः भुजतरुवनम् मण्डलेन अभिलीनः भवान्या शान्तोद्वेगस्तिमित-नयनम् दृष्टभक्तिः पशुपतेः आर्द्रनागाजिनेच्छाम् हर।

व्याख्या—पश्चात् सायन्तनपूजावसाने, नृत्यारम्भे = ताण्डवोपक्रमे शिव-स्येति शेषः; प्रतिनवजपापुष्परक्तम् = नूतनजपाकुसुमारुणम्, सान्ध्यम् = सन्ध्या-कालिकम्, तेजः = कान्तिम्, दधानः = धारयन्, उच्चैः = उन्नतम्, भुजतरुवनम् = बाहुवृक्षकाननम्, मण्डलेन = वृत्ताकारतया, अभिलीनः = अभिव्याप्तः, (सन्) भवान्या = पार्वत्या, शान्तोद्वेगस्तिमितनयनम् = विगतभयस्थिरनेत्रम् यथा-स्यात्तथा, (त्वम्) दृष्टभक्तिः = अवलोकितानुरागः, पशुपतेः = महाकालेश्वरस्य आर्द्रनागाजिनेच्छाम् = क्लिन्नगजचर्माऽऽकांक्षाम्, हर = दूरी कुरु, त्वमेव गज-चर्मास्थानी कृष्णवर्णत्वेन भवेति भावः।

शब्दार्थः—पश्चात्=सायंकाल की पूजा के बाद, नृत्यारम्भे=ताण्डव के प्रारम्भ में, प्रतिनवजपापुष्परक्तम्=नवीन जपा (अड़हुल) पुष्प के समान लाल, सान्ध्यम्=सायंकालिक, तेजः=प्रकाश को, दधानः=धारण करते हुए, उच्चैर्भुजतरुवनम्=ऊँचे बाहुरूपी वृक्षों के वन पर, मण्डलेन=वृत्ताकारतया, अभिलीनः=व्याप्त होकर, भवान्या=पार्वती के द्वारा, शान्तोद्वेगस्तिमितनयनम्=निर्भय होकर निश्चल आँखों से, दृष्टभक्तिः=देखी गयी है भक्ति जिनकी (ऐसे तुम) पशुपतेः=शिवजी की, आर्द्रनागाजिनेच्छाम्=(शोणित से) गीले हाथी के चमड़े की इच्छा को, हर=दूर करना ।

भावार्थः—सायङ्कालिक-पूजावसाने ताण्डवारम्भे नवीन-जपापुष्पाऽऽरुण्यमिव सायङ्कालिकं प्रकाशं धारयन् उच्छ्रितबाहुरूपे वृक्षवने मण्डलाकारेणाच्छन्नः सन् पार्वत्या विगतभयस्थिरलोचनेनावलोक्यमानः; अवलोकितपूज्यानुरागस्त्वं शिवस्य आर्द्रगजचर्माऽऽभिलाषमपनय ।

हिन्दी—सायं समय को पूजा के बाद ताण्डव (नृत्य) के प्रारम्भ में नवीन जपाकुसुम के समान सायङ्कालिक तेज को धारण करते हुए, ऊँचे बाहुरूपी वृक्षों के वनों पर वृत्ताकार रूप से व्याप्त होकर, पार्वती के द्वारा निर्भयपूर्वक निश्चल आँखों से देखे जाते हुए तुम शिवजी के ताजे हाथी के चमड़े की (ओढ़ने की) इच्छा को दूर करना ।

समासः—पशूनां पतिः=पशुपतिः (ष० तत्०) तस्य । नृत्यस्य, आरम्भे=नृत्यारम्भे (ष० तत्०), नवं प्रतिगतं=प्रतिनवं च तत् जपापुष्पम्=प्रतिनवजपापुष्पम् (कर्म० धा०) तद्वत् रक्तम्=(उपमानकर्म०) । उच्चैर्भुजा एव तरवः (रूपक०) भुजतरूणां वनम्=उच्चैर्भुजतरुवनम् (ष० तत्०) । शान्त उद्वेगो ययोस्ते शान्तोद्वेगे (बहुव्री०) अतएव स्तिमिते नयने यस्मिस्तत् यथा तथा (बहुव्री०) क्रियाविशेषणम् । (दृष्टं वस्तु) भक्तिरेव यस्य स; दृष्टभक्तिः (बहुव्री०) ।

कोशः—नाट्यं नृत्यञ्च नर्तने, इत्यमरः । प्रत्यग्रोऽभिनवो नव्यः, इत्यमरः उद्वेगस्त्वदिते क्लेशे भये मन्थरगामिनि, इति शब्दार्णवः । मण्डलं परिधौ कोष्ठे

देशे द्वादशराशिषु, इति मेदिनी। स्तिमितोऽचञ्चलार्द्रयेः, इति मेदिनी। आर्द्रं क्लिन्नं निमित्तं स्तिमितं सम्मुन्नतं मुक्तञ्च, इत्यमरः। अजिनं चर्म कृत्तिः स्त्री, इत्यमरः।

टिप्पणी—पश्चात् यह अव्यय है। "अपरस्मिन्" ऐसा विग्रह करके "अपर" के स्थान में "पश्चात्" इस सूत्र से "पश्चात्" आदेश किया गया है। **दधानः**—धारणार्थक "धा" धातु से लट्लकार में तिप् के स्थान पर "लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे" इस सूत्र से "शानच्" आदेश किया गया है। **उच्चैः**—यह अव्यय है; इस शब्द से आयी विभक्ति का "अव्ययादाप्सुपः' इस सूत्र से 'लुक्' हो गया है।

इसका सभी वचनों एवं सभी विभक्तियों में और तीनों लिङ्गों में एक-सा ही रूप रहता है। क्योंकि अव्यय का सामान्य लक्षण है—

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यत्र व्येति तदव्ययम्॥

सान्ध्यम्—सन्ध्यायां भवः=सान्ध्यम् यहाँ सन्ध्या शब्द से "तत्र भव" इस सूत्र से अण् प्रत्यय लाकर "सान्ध्यम्" ऐसा रूप बनता है।

भवानी—भवस्य स्त्री इस विग्रह में "भव" शब्द से स्त्रीत्व विवक्षा में ' इन्द्रवरुणभवसर्वरुद्रमृडहिमाऽरण्ययवयवनमातुलाऽऽचार्याणामानुक्" इस सूत्र से "ङीप्" प्रत्यय एवं "आनुक्" का आगम हुआ है।

दृष्टभक्तिः—महाकवि का यह प्रयोग पाणिनीय व्याकरण के विरुद्ध प्रयोगों में अन्यतम है। "दृष्टा भक्तिर्यस्य" इस विग्रह में समास हो जाने के पश्चात् "स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ् सामानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु" इस सूत्र से "दृष्टा" इस पद को पुंवद्भाव नहीं हो सकता, क्योंकि उक्त सूत्र "प्रियादि" गणपठित शब्द से भिन्न शब्दों के परे रहते ही पुंवद्भाव करता है, जब कि "भक्ति" शब्द का पाठ "प्रियादि" गण में आता है। अतः पाणिनीय व्याकरण-सम्मत तो "दृष्टा भक्तिः" ऐसा ही प्रयोग होगा। कुछ विद्वानों ने इसको व्याकरण-सम्मत बनाने का परिश्रम किया है। उनका विग्रह "दृष्टं"

(वस्तु) भक्ति: यस्य" इस प्रकार है। उनका अभिप्राय है "दृष्ट" शब्द "भक्ति" का विशेषण न होकर स्वतन्त्र विशेष्य है और "प्रमाणम्—वेद:" की तरह शुद्ध है। परन्तु यह केवल खींचा-तानी ही प्रतीत होता है क्योंकि महाकवि का अभिप्राय वही है जो "दृष्टा भक्ति" से ध्वनित हो रहा है।

अलङ्कार—इस श्लोक में "भुजतरुवनम्" यहाँ भुजाओं में रूपक का आरोप होने से "रूपक" अलंकार है। "प्रतिनवजपापुष्परक्तम्" यहाँ उपमानवाची सामान्य शब्द इवादि के लोप होने से लुप्तोपमा है, एवं सान्ध्यतेज को मेघ के धारण करने से असंभव वस्तु सम्बन्ध बिम्बप्रतिबिम्बभाव व्यक्त हो रहे हैं। अत: यहाँ "निदर्शना" नामक अलंकार है। इस प्रकार तीनों की संसृष्टि होने से "संकर" नामक अलंकार है॥ ३६॥

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः।
सौदामन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वीं
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मास्मभूर्विक्लवास्ताः॥३७॥

अन्वयः—तत्र नक्तं रमणवसतिं गच्छन्तीनां योषितां सूचिभेद्यैः तमोभिः रुद्धालोके नरपतिपथे कनकनिकषस्निग्धया सौदामन्या उर्वीम् दर्शय तोयोत्सर्गस्तनितमुखरः मास्मभूः ताः विक्लवाः।

व्याख्या—तत्र = उज्जयिन्याम्, नक्तम् = निशायाम्, रमणवसतिम् = प्रेमीसदनम्, गच्छन्तीनाम् = यान्तीनाम्, योषिताम् = स्त्रीणाम्, अभिसारिकाणामित्यभिप्रायः। सूचिभेद्यैः = निविडैः (कविप्रसिद्धोऽयं शब्दः), तमोभिः = अन्धकारैः, रुद्धालोके = आवृत्तप्रकाशे, नरपतिपथे = राजमार्गे, कनकनिकषस्निग्धया = हैमशाणरेखातेजसा, सौदामन्या = तडिता, उर्वीम् = पृथ्वीम् मार्गमितिभावः, दर्शय = आलोकय, तोयोत्सर्गस्तनितमुखरः = वृष्टिगर्जनवाचालः, मास्मभूः = नो भव, (यतो हि) ताः = प्रियसदनगन्तुमुत्सुकाः अभिसारिकाः, विक्लवाः = भीरुका भवन्ति अतः ताः त्वया न भेतव्याः।

शब्दार्थः—तत्र=उज्जयिनी में, नक्तम्=रात्रि में, रमणवसतिम्=प्रिय के घर, गच्छन्तीनाम्=जाती हुई, योषिताम्=अभिसारिकाओं का, सूचिभेद्यैः=गहन, तमोभिः=अन्धकार से, रुद्धालोके=आवृत-प्रकाशवाले, नरपतिपथे=राजमार्ग पर, कनक-निकषस्निग्धया=सोने की कसौटी की रेखा की तरह तेज वाली, सौदामन्या=बिजली के द्वारा, उर्वीम्=पृथ्वी को अर्थात् मार्ग को, दर्शय=प्रदर्शन करो (अर्थात् उन्हें रास्ता दिखलाओ) तोयोत्सर्ग-स्तनितमुखरः=वृष्टि से तथा गर्जन से शब्दायमान, मास्मभूः=मत होना, क्योंकि, ताः=वे अभिसारिकायें, विक्लवाः=डरपोक (भवन्ति=होती हैं)।

भावार्थः—हे मेघ ! उज्जयिन्यां रात्रौ प्रियसदनं यान्तीनां अभिसारिकाणां निविडैस्तमोभिः प्रकाशरहिते राजमार्गे स्वर्णशलाकातेजसेव विद्युता मार्गनिदर्शनं कुरु। वृष्टिगर्जनेन ताः न भेतव्याः स्वभावेन ताः विक्लवाः भवन्ति।

हिन्दी—हे मेघ ! उज्जयिनी में रात्रि में प्रेमी के घर जाती हुई अभिसारिकाओं का घोर अन्धकार के कारण प्रकाशहीन राजमार्ग पर कसौटी पर स्वर्ण-रेखा के तेज के समान तेजवाली बिजली के द्वारा पथ-प्रदर्शन करना। वृष्टि से तथा गर्जन से शब्दायमान मत होना क्योंकि वे अभिसारिकायें डरपोक होती हैं।

समासः—रमणानां वसतिः ताम्=रमणवसतिम् (ष० तत्०)। रुद्धः आलोकः यस्मिंस्तस्मिन् रुद्धालोके (बहुव्री०)। नराणां पतिः नरपतिः (ष० तत्०) तस्य पथे नरपतिपथे (ष० तत्०)। सूचिभिः भेद्याः (तृ० तत्०) तैः। कनकस्य निकषः कनकनिकषः (ष० तत्०)। तद्वत् स्निग्धं यस्याः तथा (व्यधिकरण बहु०), तोयोत्सर्गश्च स्तनितञ्च=तोयोत्सर्गस्तनितम् (द्वन्द्व) ताभ्यां मुखरः (तृ० तत्०)।

कोशः—दोषा च नक्तञ्च रजनाविति, इत्यमरः। आलोको दर्शनोद्योतौ, इत्यमरः। तडित्सौदामिनी विद्युच्चञ्चला चपला अपि, इत्यमरः। वसुधोर्वी वसुन्धरा, इत्यमरः।

टिप्पणी-नक्तम्=यह अव्यय है। **रमणः**-रमयतीति विग्रह में क्रीडार्थक "रम" धातु से णिच् प्रत्यय करके कर्ता में "नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः" इस सूत्र से ल्यु प्रत्यय करके ह्रस्वादि करके "रमण" ऐसा रूप बनता है। **सूचिभेद्यैः**-सूई से छेदने योग्य, यह इस शब्द का अर्थ है। परन्तु यह गाढ़े अन्धकार के लिए प्रयुक्त होता है, ऐसी कविप्रसिद्धि है। **नरपतिपथेः**-यहाँ नरपति शब्द का "पथिन्" शब्द के साथ समास हो जाने पर 'ऋक्पूरब्धूपथामानक्षे" इस सूत्र से समासान्त "अ" प्रत्यय करके उपधालोपादि करके "नरपतिपथ" ऐसा रूप बनता है! उक्तरूप उसी शब्द के सप्तमी विभक्ति का है। **मुखरः**-मुखमस्यास्ती विग्रह में मुख शब्द से "रप्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्यः रः" इससे रप्रत्यय करके "मुखर" ऐसा रूप बनाया जाता है।

अलङ्कारः—यहाँ "कनक-निकषस्निग्धया" इसमें लुप्तोपमा नामक अलङ्कार है। एवं "तोयोत्सर्गस्तनितमुखरः" इसका हेतु "विक्लवास्ताः" यह पद है इसलिए वाक्यार्थहेतुक-"काव्यलिङ्ग" नामक अलङ्कार है। अतः यहाँ दोनों का "संसृष्टि" नामक अलङ्कार है ॥ ३७ ॥

तां कस्यांचिद्भवन-वलभौ सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रिं चिर-विलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः।
दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान् वाहयेदध्वशेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥ ३८ ॥

अन्वयः—चिरविलसनात् खिन्न-विद्युत्कलत्रः भवान् सुप्तपारावतायाम् कस्यांचित् भवनवलभौ ताम् रात्रिम् नीत्वा सूर्ये दृष्टे पुनरपि अध्वशेषम् वाहयेत्, सुहृदाम् अभ्युपेताऽर्थकृत्याः न मन्दायन्ते खलु।

व्याख्या—(हे मेघ) चिरविलसनात्=बहुकालं यावत्-स्फुरणात्, खिन्नविद्युत्कलत्रः=श्रान्तचञ्चलभार्यः, भवान्=मेघः,सुप्तपारावतायाम्=निद्रितकपोतानाम्, कस्यांचिद्=अन्यतमायाम्, भवन-वलभौ=हर्म्याच्छादनोपरि-भागे, तां रात्रिम्=तां रजनीम्, नीत्वा=व्यतीत्य सूर्ये=भानौ, दृष्टे=उदिते, पुनरपि=भूयोऽपि, अध्व-

शेषम् = मार्गविशेषम्, वाहयेत्=प्राप्नुयात्, सुहृदाम्=मित्राणाम्, अभ्युपेतार्थकृत्याः=अङ्गीकृत-क्रियाः, (जनाः), न खलु मन्दायन्ते = नैव मन्दाः भवन्ति ।

शब्दार्थः—चिरविलसनात् = बहुत समय तक चमकने के कारण, खिन्नविद्युत्कलत्रः = थक गयी है बिजलीरूपी स्त्री जिसकी (ऐसे), भवान् = आप, सुप्तपारावतायाम् = जहाँ कबूतर सो गये हैं ऐसे, कस्यांचित् = किसी, भवन-वलभौ = महल के ऊपरी भाग पर, तां रात्रिम् = उस रात्रि को, नीत्वा = बिताकर, सूर्ये = सूरज के, दृष्टे = दीखने पर अर्थात् उग जाने पर, अध्वशेषम् = अवशिष्ट मार्ग को, वाहयेत् = पार करना (क्योंकि), सुहृदाम् = मित्रों के, अभ्युपेतार्थ-कृत्याः = कार्य को (करने के लिए) अङ्गीकार कर लिया है, जिन्होंने ऐसे पुरुष, न खलु मन्दायन्ते = कभी आलस्य नहीं करते हैं ।

भावार्थः—बहु-कालं यावत् स्फुरणात् खिन्न-चञ्चलभार्यः त्वं सुप्तपारावते कस्मिंश्चिद् भवनस्योपरिभागे तां रात्रिमतिवाह्य सूर्योदये सति पुनः मार्गविशेषं वाहयेः । यतो हि मित्राणामङ्गी-कृतकर्तव्याः जनाः न मन्दायन्ते ।

हिन्दी—हे मेघ ! बहुत समय तक चमकने के कारण थकी हुई बिजली-रूपी पत्नीवाले तुम जहाँ कबूतर सो गये हैं ऐसे किसी भवन के ऊपरी भाग पर उस रात्रि को बिताकर सूर्योदय हो जाने पर जो मार्ग बच गया हो उसे भी पार करना, क्योंकि जिन्होंने मित्रों के कार्यों को करना स्वीकार कर लिया है, वे पुरुष कभी आलस्य नहीं करते ।

समासः—चिरं विलसनं तस्मात् (सुप्सुपेति समासः) । खिन्नं विद्युदेव कलत्रं यस्य सः = खिन्नविद्युत्कलत्रः (बहुव्री०) । सुप्ताः पारावताः यस्यां सा सुप्तपारावता (बहुव्री०) तस्याम् । भवनस्य वलभी = भवनवलभी (ष० तत्०) तस्याम् । अध्वनः शेषम् = अध्वशेषम् (ष० तत्०) । अभ्युपेता अर्थस्य कृत्या यैस्ते अभ्युपेतार्थकृत्याः (बहु०) ।

कोशः—कलत्रं श्रोणिभार्ययोः, इत्यमरः । पारावतः कलरवः कपोतोऽथ, इत्यमरः । आच्छादन्तु वलभी छादने वक्रदारुणि, इत्यमरः । आच्छादनं स्याद्वल-

श्री गृहाणाम्, इति हलायुधः। कृत्याः क्रिया देवतयोः कार्ये स्त्री कुपिते त्रिषु, इति यादवः।

टिप्पणी—सूर्यः—सरति आकाश इति सूर्यः। यहाँ "सृ" धातु से "राजसूयसूर्य–मृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याऽव्यवथ्याः" इस सूत्र से "क्यप्" प्रत्यय एवं उत्व निपातन किया जाता है। **कृत्याः**–"कृ" धातु से "कृञः च" इस सूत्र से चकार वलात् "क्यप्" प्रत्यय का विधान करके "ह्रस्वस्य पिति कृति" इस सूत्र से तुक् का आगम करके स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् करके "कृत्या" ऐसा रूप बनता है। अभ्युपेत शब्द "सुहृदाम्" पद के साथ सापेक्ष है परन्तु यहाँ गमकत्वात् समास विधान हुआ है। **मन्दायन्ते**—यहाँ मन्द शब्द से "लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्" इस सूत्र से "क्यष्" प्रत्यय करके विकल्प से "वा यषः" इस सूत्र से आत्मनेपद हुआ है।

अलङ्कारः—यहाँ विद्युत् में कलत्र का आरोप शाब्द एवं मेघ में पतित्व का आरोप अर्थतः होने से "एकदेशविवर्ति–रूपक" नामक अलंकार है, एवं सामान्य के द्वारा विशेष का समर्थन होने से "अर्थान्तरन्यास" नामक अलंकार है और दोनों का अङ्गाङ्गिभाव होने से "संकर" नामक अलंकार है॥ ३८॥

तस्मिन्काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां
शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु।
प्रालेयास्रं कमलवदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्याः
प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः॥३९॥

अन्वयः—तस्मिन् काले प्रणयिभिः खण्डितानाम् योषिताम् नयनसलिलम् शान्तिम् नेयम्। भानोः वर्त्म आशु त्यज। सः अपि नलिन्याः कमलवदनात् प्रालेयास्रम् हर्तुम् प्रत्यावृत्तः त्वयि कररुधि अनल्पाभ्यसूयः स्यात्।

व्याख्या—तस्मिन्=उपर्युक्ते, काले=समये, सूर्योदय–समय इत्यर्थः। प्रणयिभिः=रमणैः, खण्डितानाम्=नायिकाविशेषाणाम्, नयनसलिलम्=नेत्राम्बु अश्रुरित्यर्थः, शान्तिम्=प्रशमनम्, नेयम्=नेतव्यम्। रात्र्यन्ते प्रेमिणः अन्यथा

रमणं कृत्वा स्वकीयां खण्डितां नायिकामनुनयेन प्रार्थयन्ति, अतः भानोः=दिनकरस्य, वर्त्म=पन्थानम्, आशु=शीघ्रम्, त्यज=मुञ्च। सः=सूर्यः अपि, नलिन्याः=पद्मिन्याः, कमलवदनात्=पद्म-मुखात्, प्रालेयास्रम्=नीहारविन्दुम् हर्त्तुम्=दूरीकर्तुम्, प्रत्यावृत्तः, (सन्) त्वयि=मेघे, कररुधि=किरणावरोधके सति, अनल्पाभ्यसूयः=प्रकामेर्ष्यः, स्यात्=भवेत्।

शब्दार्थ:—तस्मिन्=पहले कहे गये, काले=समय में (सूर्योदय काल में) प्रणयिभिः=प्रेमियों के द्वारा, खण्डितानाम्=जिनके पति दूसरी स्त्री के साथ रमण करते हैं ऐसी, योषिताम्=स्त्रियों के, नयनसलिलम्=आँसुओं को, शान्तिम्=शान्त, नेयम्=करना (होता है), रात्रि के बीत जाने पर, जो पुरुष दूसरी स्त्रियों के साथ संभोग करते हैं वे अपनी खण्डिता पत्नी को मनाने के लिए उसकी प्रार्थना करते हैं, अतः भानोः=सूर्य के, वर्त्म=मार्ग को, आशु=शीघ्रता से, त्यज=छोड़ देना, क्योंकि, सः=सूर्य, अपि=भी, नलिन्याः=कमलिनी के, कमल-वदनात्=कमलरूपी मुँह से, प्रालेयास्रम्=ओस-कणरूपी आँसूओं को, हर्त्तुम्=दूर करने के लिए, प्रत्यावृत्तः=लौटा हुआ रहता है, त्वयि=तुम्हारे (द्वारा), कररुधि=किरण के रोके जाने पर, अनल्पाभ्यसूयः=अत्यधिक द्वेष वाले, स्यात्=हो जायेंगे।

भावार्थः—हे मेघ! सूर्योदय-काले, वल्लभैः खण्डितानां कामिनीनां नेत्राश्रु शमनीयं भवत्यतः भानुपथं त्वरितं मुञ्च। यतो हि सूर्योऽपि नलिन्याः पद्मरूपान्मुखान्मिहिकारूपमश्रु निवारयितुं प्रत्यागतः (भवति) तस्मिन् काले त्वयि तदीयकरावरोधके सति सः त्वां प्रत्यधिकेर्ष्यं भवेत्।

हिन्दी—हे मेघ! सूर्योदय—काल में प्रेमियों को अपनी खण्डिता पत्नियों के आँसुओं को दूर करना रहता है अर्थात् तुम सूर्य के मार्ग को शीघ्र छोड़ देना। क्योंकि वे भी अपनी प्रिया कमलिनी के कमलरूपी मुख से ओसरूपी आँसू को हटाने के लिए, वापस आते हैं. उस समय यदि तुम (उनके) हाथों (किरणों) के बाधक बनोगे तो वे (तुम्हारे प्रति) अधिक क्रुद्ध हो जायेंगे।

समासः—नयनयोः सलिलं=नयनसलिलम् (ष० तत्०)। कमलमेव

वदनम् = कमलवदनम् (रूपककर्मधा०) तस्मात् । न अल्पा = अनल्पा (नञ्) अनल्पा अभ्यसूया यस्य स = अनल्पाभ्यसूयः (बहुव्री०) ।

कोष:—अयनं वर्त्म मार्गाऽध्व, इत्यमरः । सलिलं कमलं जलम्, इत्यमरः, तृणेऽम्बुजे नलं वा तु राज्ञि नाले तु न स्त्रियाम्, इति शब्दार्णवः । प्रालेयं मिहिकाचार्था, इत्यमरः । अस्त्रकोणे कचे पुंसि क्लीबमश्रुणि शोणिते, इति मेदिनी । वलिहस्तांशवः, कराः, इत्यमरः ।

टिप्पणी—खण्डितानाम्—वैसे तो नायिका के बहुत भेदोपभेद हैं पर मुख्य आठ भेदों में "खण्डिता" भी एक नायिका का विशेष भेद होता है । "खण्डिता नायिका" उसे कहते हैं जिनके पति रात्रि में किसी दूसरी स्त्री के साथ विहार करते हैं और वह यह जान जाती है कि मेरे पति अमुक स्त्री के साथ रात्रि व्यतीत करते हैं । यहाँ सूर्य अस्ताचल पर जाकर उधर की कमलिनियों के साथ विहार करते हैं अतः इधर की कमलिनियाँ खण्डिता हुई । मैंने हिन्दी एवं संस्कृत दोनों व्याख्याओं में इस बात का संकेत किया है । **शान्ति नेयम्**—"नी" धातु द्विकर्मक है, अतः "नयनसलिलम्" यह पद यहाँ मुख्य कर्म है एवं "सलिलम्" यह गौणकर्मवाची पद है । **प्रत्यावृत्तः**—प्रति उपसर्गपूर्वक 'वृत्' धातु से "क्त" प्रत्यय करके "प्रत्यावृत्तः" ऐसा रूप बनता है । **कररुधि**—'कर' उपपदपूर्वक "रुध्" धातु से क्विप् प्रत्यय करके उसका सर्वापहारी लोप करके "कररुध्" ऐसा शब्द बनता है । यह रूप उसी शब्द के सप्तमी विभक्ति का है ।

अलङ्कारः—यहाँ "भानोः वर्त्म त्यज" इस पूर्वार्द्धकथित वाक्य का उत्तरार्द्ध का वाक्यार्थ हेतु है, अतः "काव्यलिङ्ग" अलङ्कार है । और लिङ्ग-समानता से नलिनी में नायिका और सूर्य में नायक का आरोप होने से "समासोक्ति" अलङ्कार है, एवं "कररुधि" इस शब्द के "कर" में "श्लेष" अलङ्कार है । एवं तीनों का अङ्गाङ्गिभाव होने से "संकर" नामक अलङ्कार है ॥३९॥

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
छायात्मापि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम् ।

तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्यान्-
मोघीकर्तुं चटुलशफरोद्वर्तन—प्रेक्षितानि ॥ ४० ॥

अन्वयः—गम्भीरायाः सरितः चेतसि इव प्रसन्ने पयसि प्रकृतिसुभगः ते याऽऽत्मा अपि प्रवेशम् लप्स्यते । तस्मात् अस्याः कुमुद-विशदानि चटुलशफ-रोद्वर्तन—प्रेक्षितानि त्वम् धैर्यात् मोघीकर्तुम् न अर्हसि ।

व्याख्या—हे मेघ ! गम्भीरायाः एतन्नामिकायाः, सरितः=नद्याः, चेतसि मानसे, इव=यथा, प्रसन्ने=स्वच्छे, पयसि=जले, प्रकृतिसुभगः=शाश्वतिकमनोहरः, ते=तव मेघस्येति यावत्; छायात्माऽपि=प्रतिबिम्बस्वरूपात्माऽपि; प्रवेशम्=निवेशम्, लप्स्यते=प्राप्स्यति । तस्मात्=तत्कारणात्, तस्याः= गम्भीरायाः, कुमुदविशदानि=कैरवोज्ज्वलानि, चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि =चञ्चलमत्स्योल्लुण्ठनानि, त्वम्=मेघः, धैर्यात्=धीरत्वात्, मोघीकर्तुम् =विफलीकर्तुम्, न अर्हसि=न योग्योऽसि ।

शब्दार्थः—(हे मेघ !) गम्भीरायाः=गम्भीरा नाम की, सरितः=नदी के, चेतसि=हृदय, इव=की तरह, प्रसन्ने=निर्मल, पयसि=जल में, प्रकृति-सुभगः=स्वभाव से सुन्दर, ते=तुम्हारा, छायात्माऽपि=छायारूपी शरीर भी, प्रवेशम्=प्रवेश को, लप्स्यते=प्राप्त करेगा । तस्मात्=इस कारण से, अस्याः= इस गम्भीरा नदी के, कुमुदविशदानि=कुमुद के समान धवल, चटुलशफरो-द्वर्तनप्रेक्षितानि=चञ्चल मछलियों के उच्छलन रूप चितवनों को, त्वम्=तुम, धैर्यात्=धीरता से, मोघीकर्तुम्=निष्फल करने मे, न अर्हसि=समर्थ नहीं हो ।

भावार्थः—हे मेघ ! गम्भीरायाः प्रसन्नहृदय इव स्वच्छे जले प्रतिबिम्ब-रूपेण प्रविष्टो हि त्वं गम्भीरया नद्या कयाचिदुदात्तनायिकयेव चञ्चलम-त्स्योल्लुण्ठन-रूपैरवलोकनैरवलोकयिष्यसे । त्वमपि धैर्यमाश्रित्य तदवलोकनं निष्फली कर्तुम् न समर्थोऽसि ।

हिन्दी—हे मेघ ! गम्भीरा नदी के प्रसन्न हृदय के समान निर्मल जल में छायारूप से प्रविष्ट तुम्हें गम्भीरा नदी किसी उदात्त नायिका की तरह चञ्चल-

मछलियों के उद्वर्तन (उछलन) रूपी चितवनों से देखेगी। तुम भी धीरता का अवलम्बन कर उसके अवलोकन को व्यर्थ मत होने देगा।

समासः—प्रकृत्या सुभगः=प्रकृति–सुभगः (तृ० तत्०)। छाया चासौ आत्मा च छायात्मा (कर्म० धा०)। कुमुदानीव विशदानि=कुमुदविशदानि (उपमानकर्म०)। चटुलानि च तानि शफरोद्वर्तनानि चटुलशफरोद्वर्तनानि (कर्मधा०), तान्येव प्रेक्षितानि=चटुल–शफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि (रूपक०)।

कोशः—चित्तन्तु–चेतो हृदयम्, इत्यमरः। सुन्दरेऽधिकभाग्ये च दुर्दिनेतर-वासरे। तुरीयांशे श्रीमति च सुभगः, इति शब्दार्णवः। सिते कुमुदे कैरवे, इत्यमरः। त्रिषु स्याच्चटुलं शीघ्रम् इति विश्वः।

टिप्पणी—**प्रकृतिसुभगः**—यहाँ 'प्रकृति' शब्द से प्रकृत्यादिभ्यः उपसंख्यानम्' इस सूत्र से तृतीया विभक्ति आती है तब तृतीया समास होता है। **प्रवेशः**–'प्र' उपसर्गपूर्वक प्रवेशार्थक 'विश' धातु से घण् प्रत्यय करके 'प्रवेश' ऐसा रूप बनता है। **कुमुदविशदानि**=इस पद का विग्रह तो समास के समय प्रदर्शित किया गया है। यहाँ महोपाध्याय पं० मल्लिनाथजी ने 'कुमुदवत् विशदानि' ऐसा विग्रह किया है। यहाँ कुमुद' शब्द से 'तत्र तस्येव' इस सूत्र से 'वति' प्रत्यय किया गया है, न कि 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' इस सूत्र से, और इस सूत्र से 'क्रिया' पद की अनुवृत्ति भी 'तत्र तस्येव' इस सूत्र में नहीं जाती है। अतः 'वति', प्रत्यय होने में कोई अनुपपत्ति नहीं है। कुछ टीकाकार जैसे कि विद्याविनोद, शारदारञ्जन राय और संसारचन्द्र जी एवं मोहनदेव पन्त जी इत्यादि विद्वानों ने महोपाध्याय के उपर्युक्त विग्रह का खण्डन किया है, सम्भव है उन्हें 'तत्र तस्येव' यह सूत्र ध्यान में न रहा हो-**धैर्यात्**–'धीर' शब्द से 'ष्यञ्' प्रत्यय करके धैर्य यह रूप बनता है। उक्त रूप पञ्चमी विभक्ति का है। यहां पञ्चमी विभक्ति 'ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च' इस सूत्र से हुई है। यहाँ 'आश्रित्य' इस ल्यबन्त पद का लोप हुआ है।

अलङ्कारः—यहाँ 'संकर' नामक अलङ्कार है। क्योंकि यहाँ पयः का चेतः से, प्रेक्षितों का कुमुदों के साथ समानता (सादृश्य) होने से शाब्दी उपमा

हुई एवं गम्भीरा का नायिका के साथ आर्थ सादृश्य होने से यहाँ 'एकदेश विवर्तनी' उपमाऽलङ्कार हुआ और 'कुमुदविशदानि' यहाँ वत् इवादि का लोप होने से लुप्तोपमा हुई एवं उद्वर्तनों में प्रेक्षितों का आरोप होने से 'रूपक' अलङ्कार हुआ और इन तीनों का अङ्गाङ्गिभाव संकर है ॥ ४० ॥

तस्याः किञ्चित्करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं
नीत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम् ।
प्रस्थानं ते कथमपि सखे ! लम्बमानस्य भावि
ज्ञातस्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः ॥४१॥

अन्वयः—हे सखे ! प्राप्तवानीरशाखम् किञ्चित्करधृतम् इव मुक्त-रोधोनितम्बम् नीलम् तस्याः सलिलवसनम् नीत्वा लम्बमानस्य ते प्रस्थानम् कथमपि भावि ज्ञातस्वादः कः विवृतजघनाम् विहातुम् समर्थः ॥ ४१ ॥

व्याख्या—हे सखे = हे मित्र ! प्राप्तवानीरशाखम् = लब्ध–वेतसशाखम्, किञ्चित्करधृतम् = ईषत् हस्तगृहीतम्, इव = यथा (स्थितम्), मुक्त-रोधो–नितम्बम् = परित्यक्ततटकटि, नीलम् = श्यामलम्, तस्याः = गम्भीरायाः; सलिलवसनम् = जलाम्बरम्, नीत्वा = अपहृत्य, लम्बमानस्य = जलभारावनतस्य ते = मेघस्य, प्रस्थानम् = प्रयाणम्, कथमपि = केनापि–प्रकारेण, भावि = भविष्यति । यतो हि–ज्ञातस्वादः = अनुभूतकामिनीसंभोगसुखः, कः = पुरुषः, विवृतजघनाम् = प्रदर्शित–कटि–पूर्वभागाम्, विहातुम् = त्यक्तुम्, समर्थः, योग्यः ।

शब्दार्थः—हे सखे = हे मित्र ! प्राप्तवानीरशाखम् = बेंत की शाखाओं को जिसने प्राप्त कर ली हैं, किञ्चित्करधृतम् = कुछ कुछ हाथ से पकड़े हुए की, इव = तरह, मुक्तरोधोनितम्बम् = जिसने तटरूपी, नितम्ब-प्रदेश को छोड़ दिया है (ऐसे) नीलम् = नीले रंग के, सलिलवसनम् = जलरूपी वस्त्रों को, नीत्वा=हटाकर, लम्बमानस्य=जल के भार से अवनत, ते=तुम्हारा, प्रस्थानम् =जाना, कथमपि=किसी प्रकार अर्थात् कष्ट से, भावि=होगा । (क्योंकि) ज्ञातस्वादः = जिसने स्त्री के संभोग के सुख का अनुभव कर लिया है ऐसे

क:=कौन पुरुष, विवृत-जघनाम्=उघड़ी जंघाओं वाली (कामिनी) को, विहातुम्-छोड़ने के लिए, समर्थः=(होगा) अर्थात् कोई नहीं।

भावार्थः—हे मेघ ! वेतसशाखाप्राप्ता ईषद्धस्तगृहीतमिव त्यक्त-तटरूप-नितम्ब कृष्णवर्णं जलरूपवस्त्रमपनीय तव गम्भीरायाः नद्याः प्रस्थानं कष्टेन भविष्यति ! यतो हि अनुभूतकामिनी-संभोग-सुखः कः पुरुष एवं स्यात् यः प्रदर्शितजघनां नारीं त्यक्तुम् (अनुपभोक्तुम्) समर्थो भवेत्।

हिन्दी—हे मेघ ! समीप तक बेंत की शाखाओं के पहुँचने के कारण कुछ-कुछ हाथों से पकड़े हुए की तरह, छोड़ दिया है तटरूपी नितम्ब को जिसने काले रंग के जलरूपी वस्त्र को हटाकर गम्भीरा नदी के पास से तेरा जाना बहुत कठिन होगा। क्योंकि जिसने कामिनीसंभोग के सुख का अनुभव कर लिया है ऐसा कौन पुरुष होगा जो उघड़ी जंघाओं वाली स्त्री को छोड़ सकता है ?'

समासः—प्राप्ता वानीर-शाखा येन तत् प्राप्त-वानीर-शाखम् (बहुव्री०)। करेण धृतम्=करधृतम् (तृ० तत्०)। रोध एवं नितम्बः रोधोनितम्बः (रूपक) मुक्तः रोधोनितम्बो येन तत्=मुक्तिरोधोनितम्बम् (बहुव्री०)। सलिलमेव वसनं तत्=सलिलवसनम् (रूपक० कर्म०) ज्ञातः स्वादो येन सः ज्ञातस्वादः (बहु०)। विवृतं जघनं यस्याः ताम विवृत-जघनाम्। (बहुव्री०)।

कोशः—कूलं रोधश्च तीरश्च प्रतीरश्च तटं त्रिषु, इत्यमरः। नितम्बः पश्चिमे भागेऽद्रि कटके कटौ, इति यादवः। जघनं स्यात् कटौ पूर्वश्रोणिभागा-परांशयोः, इति यादवः।

टिप्पणी—विवृतम्—"वि" उपसर्गपूर्वक "वृ" धातु से "क्त" प्रत्यय करके "विवृत" शब्द बनता है। **विहातुम्**—"वि" उपसर्गपूर्वक (ओ) हा धातु से जिसका "त्याग" अर्थ है "तुमुन्" प्रत्यय करके "विहातुम्" ऐसा रूप बनता है। कुछ टीकाकार "विवृतजघनाम्" के स्थान पर "विपुल-जघनाम्" ऐसा पाठ मानते हैं।

अलंकारः—यहाँ "करधृतमिव" इस पद में "उत्प्रेक्षा" रोध में नितम्ब एवं सलिल में वसन का आरोप शब्दरूपक तथा गम्भीरा में नायिका का

आरोप अर्थरूपक है अतः एकदेश विवर्तिरूपक एवं चतुर्थ चरण के वाक्यार्थ द्वारा ऊपर के तीनों चरणों के वाक्यार्थ का समर्थन होने से "अर्थान्तरन्यास" ये तीन अलंकार हैं। एवञ्च उपर्युक्त तीनों अलंकारों का अङ्गाङ्गि-भाव होने "संकर" अलंकार है ॥ ४१ ॥

त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसित—वसुधा-गन्धसंपर्करम्यः
स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः ।
नीचैः वास्यत्युपजिगमिषोदेवपूर्वं गिरिं ते
शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम् ॥४२॥

अन्वय—त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधा-गन्धसंपर्करम्यः स्रोतोररन्ध्रध्वनित सुभगम दन्तिभिः पीययानः काननोदुम्बराणाम् परिणमयिता शीतो वायुः देवपूर्वम् गिरिम् उपजिगमिषोः ते नीचैः वास्यति ।

व्याख्या—(हे मेघ !) त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसंपर्करम्य=त्वद-वृष्टिवर्धितपृथ्वीगन्धसंस्पर्शसुरभिः, स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगम्=शुण्डाग्रछिद्रशब्द-सुन्दरम् यथा स्यात्तथा, दन्तिभिः=गजैः, पीयमानः=आघ्रायमाणः, काननोदुम्ब-राणाम् =बन्यहेमदुग्धकानाम्, परिणमयिता=परिपाकयिता, शीतः=हिमः, वायुः=पवनः, देवपूर्वम्="देव"शब्दपूर्वकम्, गिरिम्=पर्वतम्, देवगिरि"-पर्वतमित्यर्थः, उपजिगमिषोः=यियासोः, ते=मेघस्य, नीचैः=शनैः, वास्यति=प्रापयिष्यतीत्यर्थः ।

शब्दार्थः—त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसित–वसुधा-गन्धसम्पर्करम्यः=तुम्हारे बरसने के कारण प्रसन्न पृथ्वी के संसर्ग से सुन्दर, स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगम्=(हाथी के) शुण्ड के छिद्रों में शब्दपूर्वक जिसका सेवन सुन्दर प्रतीत होता है, दन्तिभिः=हाथियों के द्वारा, पीयमानः=सूँघा जाता, शीतः=ठंडी, वायुः= हवा, काननोदुम्बराणाम्=जंगली गूलरों को; परिणमयिता=पकाने वाली, देवपूर्वम्=जिसके पूर्व में "देव" शब्द है ऐसे, गिरिम्=पर्वत को (देवगिरि को) उपजिगमिषोः=जाने की इच्छा वाले, ते=तेरे, नीचैः=नीचे या धीरे, वास्यति=बहेगी ।

भावार्थः—(हे मेघ !) वृष्ट्युपबृंहितावनिसौरभसंपन्नं गजैः शुण्डाग्रछिद्रैः सशब्दमाघ्रायमाणः वन्योदुम्बरफलानां परिणमयिता शीतलः पवनः देवगिरिं यियासोस्ते नीचैः वास्यति।

हिन्दी—हे मेघ ! तुम्हारे बरसने के कारण प्रसन्न भूमि के गन्ध के संसर्ग से सौरभयुक्त, शुण्ड के अग्रभागस्थ छिद्रों के द्वारा शब्दपूर्वक सूंघने में अच्छे हाथियों के द्वारा सूँघा गया, बन के गूलरों को पकाने वाला शीतल पवन तुम्हारे नीचे बहेगा, अर्थात् तुम्हें पंखा झलेगा।

समासः—तव निष्यन्दः त्वन्निष्यन्दः (ष० तत्०) तेन उच्छ्वसिता (तृ० तत्०) त्वन्निष्यन्दच्छ्वसिता चासौ वसुधा च–त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधा (कर्म०) तस्याः गन्धः (ष० तत्०) तस्य सम्पर्कः (ष० तत्०) तेन रम्यः= त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसित—वसुधागन्ध–सम्पर्करम्यः (तृ० तत्०) स्रोतसो रन्ध्राणि= स्रोतोरन्ध्राणि (ष० तत्०) तेषां ध्वनितम् (ष० तत्०) काननेषु उदुम्बराणाम्-काननोदुम्बराणाम् (स० तत्०)। देव शब्दः पूर्वो यस्य सः देवपूर्वः (बहु०)।

कोशः—स्रोत इन्द्रिये निम्नगारये, इत्यमरः। दन्तो दन्तावलो हस्ती द्विरदोऽनेकपो द्विपः, इत्यमरः। उदुम्बरो जन्तु–फलो यज्ञाङ्गो हेम–दुग्धकः, इत्यमरः।

टिप्पणी–उच्छ्वसिताः–उद् उपसर्गपूर्वक "श्वस्" धातु से "क्त" प्रत्यय करके इडादि कर स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् किया गया है। **संपर्कः**–"सम्" उपसर्गपूर्वक "पृच्" धातु से "घञ्" प्रत्यय करके "संपर्क" ऐसा रूप निष्पन्न होता है। **त्वन्निष्यन्दो०—स्रोतोरन्ध्र०**–ये दोनों समस्तपद क्रिया-विशेषण हैं। **परिणमयिता**–यहाँ परि उपसर्गपूर्वक णिजन्त "परिणामि" धातु से कर्ता में तृच् प्रत्यय हुआ है। एवं "मितां ह्रस्व" इस सूत्र से ह्रस्व करके परिणमि बनाकर गुणादि करके "परिणमयिता" ऐसा रूप बनता है। **देवपूर्वम् गिरिम्**–इस प्रकार के प्रयोग संस्कृत साहित्य के बहुत से कवियों के काव्यों में पाये जाते हैं। जैसे कि कालिदास के रघुवंश महाकाव्य के ८वें सर्ग २९वें श्लोक को देखिये "दशपूर्वरथं यमाख्यया दशकण्ठारिगुरुर्विदुर्बुधाः" और महाकवि भारवि

के किरातार्जुनीय महाकाव्य के १८वें सर्ग के ४४ वें श्लोक को देखें—"धनुरूप-पदमस्मै वेदमभ्यादिदेश" इसी तरह महाकवि माघ के शिशुपालवध के प्रथम सर्ग के ४२वें श्लोक में "हिरण्यपूर्वं कशिपुं प्रचक्षते" ऐसा वर्णन है। रघुवंश का उक्त पद "दशरथ" इसको, एवं किरातार्जुनीय का पद "धनुर्वेद" को एवं शिशुपाल का पद "हिरण्य-कशिपु" को व्यक्त करने के लिए कहा गया है। इसी तरह महाकवि ने यदि "देवपूर्वं गिरिम्" ऐसा प्रयोग कर ही दिया तो महोपाध्यायजी का अवाच्य वचन "दोष का उद्घाटन प्रयुक्त" प्रतीत नहीं होता।

"देवगिरि" से यहाँ देवगढ़ विवक्षित है न कि 'दक्षिण' में स्थित देवगिरि या दौलताबाद। क्योंकि देवगढ़ जो चम्बल के दक्षिण में मालवा के मध्य में पड़ता है वहीं कार्तिकेयजी का मन्दिर भी है जिसका वर्णन आगे स्वयं कवि करेंगे ॥ ४२ ॥

तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा
पुष्पासारैः स्नपयतु भवान्व्योमगङ्गाजलार्द्रैः ।
रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूना-
मत्यादित्यं हुतवहमुखे संभृतं तद्धि तेजः ॥ ४३ ॥

अन्वयः—तत्र नियतवसतिम् स्कन्दम् पुष्पमेघीकृतात्मा भवान् व्योम-गङ्गाजलार्द्रैः पुष्पासारैः स्नपयतु। तत् हि वासवीनाम् चमूनाम् रक्षा—हेतोः नवशशि—भृता हुतवह—मुखे, सम्भृतम् अत्यादित्यम् तेजः।

व्याख्या—तत्र = देवगिरौ, नियतवसतिम् = निश्चितनिवास-वन्तम्, स्कन्दम् = कार्तिकेयम्, पुष्पमेघीकृतात्मा = कुसुम—वर्षकमेघीकृतदेहः, भवान् = मेघः, व्योमगङ्गाजलार्द्रैः = देवनदी—तोयक्लिन्नैः, पुष्पासारैः = कुसुम—वृष्टिभिः, स्नपयतु = अभिषिञ्चतु। तत् = स्कन्दः, वासवीनाम् = इन्द्र—सम्बन्धिनीनाम्, चमूनाम् = सेनानाम्, रक्षाहेतोः = रक्षणाय, नवशशिभृता = अभिनवहिमांशु-धारिणा, हुतवहमुखे = अग्निवदने, सम्भृतम् = सञ्चितम्, अत्यादित्यम् = दिन-करातिशायि, तेजः = प्रतापः अस्ति, शंकर—प्रतिमूर्ति एवाऽस्ति।

शब्दार्थः—तत्र=वहाँ देवगिरि पर, नियत—वसतिम्=निश्चित निवास वाले, स्कन्दम्=कार्तिकेय को, पुष्पमेघीकृतात्मा=अपने-आपको फूल का मेघ बना कर, भवान्=तुम, व्योमगङ्गाजलार्द्रैः=आकाशगङ्गा के जल से सिक्त (भींगे हुए), पुष्पासारैः=फूलों की वृष्टि से, स्नपयतु=नहलाओ, तत्=वह, वासवीनाम्=इन्द्र की, चमूनाम्=सेनाओं की, रक्षाहेतोः=रक्षा के लिए, नवशशिभृता=नूतन चन्द्रधारी शंकर के द्वारा, हुतवहमुखे=अग्नि के मुख में, सम्भृतम्=एकत्रित किया गया, अत्यादित्यम्=सूर्य का अतिक्रमण करने वाला तेजः=तेज (ही है)। अर्थात् सूर्य की प्रतिमूर्ति ही है।

भावार्थः—हे मेघ! तत्र देवगिरौ पुष्पमेघीकृत—विग्रहस्त्वं पुष्पसंपातैः कार्तिकेयमभिषिञ्चतु। सः स्कन्दः इन्द्रसम्बन्धिनीनां सैन्यानां रक्षणाय शंकरेण वह्निमुखे सञ्चितं तेज एवास्ति, शंकर-प्रतिमूर्ति एवास्तीति भावः।

हिन्दी—(हे मेघ!) उस देवगिरि पर्वत पर, अपने-आपको फूल का मेघ बनाकर तुम, वहाँ निश्चित रूप से रहनेवाले कार्तिकेय को आकाशगङ्गा के जल से गीली पुष्पवृष्टि से नहलाना। वे (कार्तिकेय) इन्द्र की सेना की रक्षा के लिए अग्नि के मुख में शंकर द्वारा एकत्रित किये गये तेज हैं। अर्थात् शंकर की प्रतिमूर्ति ही है।

समासः—नियता वसतिर्यस्य स नियतवसतिः (बहु०), तम्। पुष्पाणां मेघः=पुष्पमेघः (ष० तत्०)। अपुष्पमेघः पुष्पमेघः यथा सम्पद्यते तथा कृतः पुष्पमेघीकृतः, तथाविधः आत्मा यस्य स पुष्पमेघीकृतात्मा (बहु०)। व्योम्नि गङ्गा व्योमगङ्गा (स० तत्०) तस्याः जलम् (स० तत्०), तेन आर्द्राः= व्योमगङ्गाजलार्द्राः (तृ० तत्०) तैः। पुष्पाणाम् आसारैः=पुष्पासारैः (ष० तत्०)। नवश्चासौ शशी=नवशशी (कर्मधारय) तं बिभर्ति इति नवशशिभृत् तेन नवशशिभृता (उपपद०)। हुतस्य वहः=हुतवहः (ष० तत्०) हुतवहस्य मुखे=हुतवहमुखे (ष० तत्०)। आदित्यमतिक्रान्तमिति=अत्यादित्यम् (मयूरव्यंसका०)।

कोशः—पार्वतीनन्दनः स्कन्दनः, इत्यमरः। धारासम्पात आसारः,

इत्यमरः । वासवो वृत्रहा वृषा, इत्यमरः । ईश्वरः शर्व ईशानः पिनाकी शशि-शेखरः, इत्यमरः ।

टिप्पणी—स्नपयतु—णिजन्त "स्नापि" धातु से "स्नापयतु" ऐसा प्रयोग बनाना उचित था, परन्तु अनुपसर्ग होने के कारण "ग्लास्नवनुवमां च" इस सूत्र से विकल्प से मित्त्व हो जाने के कारण "मितां ह्रस्वः" इस सूत्र से ह्रस्व होकर "स्नपयतु" ऐसा रूप बना है । **वासवीनाम्**—वासवस्येयं वासवी तासाम्, यहाँ "वासव" शब्द से "तस्येदम्" इस सूत्र से अण् प्रत्यय करके आदिवृद्धि करके स्त्री-विवक्षा में "ङीप्" होकर "वासवी" ऐसा रूप बनाया जाता है, इसी के षष्ठी विभक्ति के बहुवचन का वासवीनाम् प्रयोग है। **कार्तिकेय और हुतवहमुखे सम्भृतम्**—तारकासुर के उपद्रव से संत्रस्त देवताओं की रक्षा के लिए "शंकर" जी ने अपना वीर्य अग्नि में स्थापित किया। इसी पौराणिक कथा को आधार बनाकर "हुतवहमुखे संभृतं तद्धि तेजः" ऐसा कहा गया । एवञ्च जब उस वीर्य को अग्नि नहीं सहन कर पाये तो उन्होंने उसे गङ्गाजी में डाल दिया, और गङ्गा की लहरों पर तैरता हुआ वह वीर्य स्नान करती छः कृत्तिकाओं के पेट में चला गया; और वे भी तेजाधिक्य के कारण इसे न सह सकीं तो शरकण्डों के वन में उसे डाल दिया । इस प्रकार कृत्तिकाओं के मुख से उत्पन्न होने के कारण उन्हें "कार्तिकेय" कहा जाता है। शरकण्डे के वन में उत्पन्न हुए अतः "शरजन्मा" कहा जाता है ।

अलङ्कारः—यहाँ "रूपक" एवं "अर्थान्तरन्यास" ये दो अलंकार हैं, और दोनों के अङ्गाङ्गिभावतया रहने के कारण "संकर" अलंकार है ॥४३॥

ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बर्हं भवानी
पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति ।
धौतापाङ्गं हरशशिरुचा पावकेस्तं मयूरं
पश्चादद्रि— ग्रहण—गुरुभिर्गर्जितैर्नर्तयेथाः ॥ ४४ ॥

अन्वयः—ज्योतिर्लेखावलयि गलितम् यस्य बर्हम् भवानी पुत्रप्रेम्णा

कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति। हरशशिरुचा धौतापाङ्गम् पावकेः तम् मयूरम् पश्यत् अद्रिग्रहणगुरुभिः गर्जितैः नर्तयेथाः।

व्याख्या—ज्योतिर्लेखावलयि=कान्तिराजिमण्डलयुक्तम्; गलितम्=स्रस्तम्, पतितमिति भावः। बर्हम्=पिच्छम्, भवानी=गौरी, पुत्रप्रेम्णा=सुतस्नेहेन, कुवलयदलप्रापि=नीलकमलपत्रप्राप्यम्, यथा स्यात्तथा, कर्णे=कर्णे, करोति=आदधाति। हरशशिरुचा=शिवशशित्विषा, धौतापाङ्गम्=धवलितनयनप्रान्तम्, पावकेः=कार्तिकेयस्य, तम्=वर्णितम्, मयूरम्=बर्हिणम्, पश्चात्=स्कन्दाभिषेकानन्तरम्, अद्रिग्रहणगुरुभिः=देवगिरि-प्रतिध्वनिवर्द्धिगुणितैः, गर्जितैः=स्तनितैः, नर्तयेथाः=नृत्यङ्कारय।

शब्दार्थः—ज्योतिर्लेखावलयि=कान्तिवाली रेखाओं के मण्डन से युक्त, गलितम्=गिरे हुए, यस्य=जिसके, बर्हम्=पंख को, भवानी=पार्वती, पुत्र-प्रेम्णा=पुत्र-प्रेम के कारण, कुवलयदलप्रापि=नील कमल के पत्रों से युक्त, कर्णे=कान में, करोति=पहनती है। हरशशिरुचा=शंकरजी के मस्तकस्थ चन्द्रमा की कान्ति से, धौतापाङ्गम्=धुल गये हैं (श्वेत हो गये हैं) नेत्र कोरक जिसके, पावकेः=कार्तिकेय के, तम्=उस, मयूरम्=मोर को, पश्चात्=कार्तिकेय के अभिषेक के बाद, अद्रिग्रहणगुरुभिः=देवगिरि की प्रतिध्वनि से बढ़े हुए, गर्जितैः=गर्जनों से, नर्तयेथाः=नचाना।

भावार्थः—हे मेघ! स्कन्दाभिषेचनानन्तरं कान्तिपङ्क्ति–मण्डलान्वितं यस्य पिच्छं पार्वती सुतस्नेहेन नीलपद्मपत्रप्रापि श्रोत्रे धारयति, यस्यापाङ्गः शिवशशि–चन्द्रिका–धवलितमस्ति- कार्तिकेयस्य तं मयूरं देवगिरिप्रतिध्वनि-वर्द्धितैः गर्जितैः नर्तयेथाः।

हिन्दी—हे मेघ! कार्तिकेय को पुष्पवृष्टि से नहला चुकने के बाद कान्ति वाली रेखाओं के मण्डलों से युक्त गिरे हुए जिसके पंख को पार्वती पुत्र-प्रेम से नीलकमल के पत्तों से युक्त कानों में पहनती हैं; एवं जिसकी आँखों की कनखियाँ शिवजी के चन्द्रमा की चन्द्रिका से श्वेत हो गयी हैं, कार्तिकेय के उस "मयूर" को देवगिरि के प्रतिध्वनि से बढ़े हुए गर्जन से नचाना।

टिप्पणी-कुवलयदलप्रापि—समास की व्युत्पत्ति के अलग-अलग करने से अर्थ भी अनेक प्रकार के उक्तपद के हैं। जैसा कि मैंने ऊपर किया है। उस व्युत्पत्ति के अनुसार "कमलदल के साथ जिसे धारण करती है" ऐसा अर्थ होता है। (१) यदि कुवलयदलं प्राप्नोति इति "कुवलयदलप्राप्" ऐसा विग्रह करके "कर्णे" इस सप्तम्यन्त पद का विशेषण माना जाय तो इसका अर्थ होगा 'कुवलय के पत्तों को छोड़कर जिसे पहनती हैं।" (२) कोई-कोई मूल के "प्रापि" इस पाठ के स्थान पर "क्षेपि" ऐसा पाठ मानते हैं, उसके अनुसार अर्थ होगा "कुवलयदलं क्षिपतीति=कुवलयदलक्षेपि"। कुछ लोग "प्रापि" के स्थान पर "स्पर्धि" ऐसा पाठ मानते हैं, कुवलयदलं स्पर्धते तच्छीलमस्यास्तीति" "कुवलयदलस्पर्धि" इस विग्रह के अनुसार अर्थ होगा "नील कमल के पत्तों से स्पर्धा करने वाला" इत्यादि। **पावकिः**—पावकस्यापत्यं पुमान्=पावकिः, यहाँ "पावक" शब्द से "अत इञ्" इस सूत्र से "इञ्" प्रत्यय किया गया है। **नर्तयेथाः**—गात्रविक्षेपार्थक "नृत्" धातु से णिच् करके लिङ्लकार के मध्यम-पुरुष एकवचन का यह रूप है। यद्यपि यहाँ णिजन्त "नृत्" अकर्मक होते हुए भी चित्वान् कर्ता से युक्त है अतः "अणावकर्म्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्" इस सूत्र से, चलनार्थक होने से "निगरणचलनार्थेभ्यश्च" इस सूत्र से परस्मैपद होना चाहिए था, परन्तु "न पादम्याङ्यसपरिमुहरुचिनृतिवदवसः" इस सूत्र से निषेध हो गया और "णिचश्च" इस सूत्र से आत्मनेपद हो गया ॥ ४४ ॥

आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लङ्घिताध्वा
सिद्धद्वन्द्वैर्जलकण-भयाद्वीणिभिर्मुक्तमार्गः ।
व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्
स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम् ॥४५॥

अन्वयः—एनम् शरवणभवम् देवम् आराध्य वीणिभिः सिद्धद्वन्द्वैः जलकण-भयात् मुक्तमार्गः उल्लङ्घिताध्वा सुरभितनयाऽऽलम्भजाम् भुवि स्रोतोमूर्त्या परिणताम् रन्तिदेवस्य कीर्तिम् मानयिष्यन् व्यालम्बेथाः ।

व्याख्या—एनम्=पूर्वोक्तम्, शरवणभवम्=वाणतृणारण्यजातम्, देवम्=सुरम्, कार्तिकेयमिति भावः आराध्य=सम्पूज्य, वीणिभिः=वीणावद्भिः, सिद्धद्वन्द्वैः = सिद्धयुगलैः, जलकणभयात् = तोयविन्दुभीतेः, मुक्तमार्गः=उज्झिताध्वा, (सन्) उल्लङ्घिताध्वा=निस्तृतपथः, सुरभितनयाऽऽलम्भजाम् = गवालम्भनजाताम्, भुवि = अवनौ, स्रोतोमूर्त्या = नदीरूपेण, परिणताम् = परिवर्तिताम्, रन्तिदेवस्य=एतन्नामकस्य दशपुरनरेशस्य, कीर्तिम्=यशः, 'चर्मण्वती' नाम्नी नदीमित्यर्थः, मानयिष्यन्=सत्कुर्वन्; व्यालम्बयेथाः=अवतरेः ।

शब्दार्थः—एनम्=पहले कहे गये, शरवणभवम्=सरकण्डों के वन में उत्पन्न. देवम्=देवता की अर्थात् कार्तिकेय की, आराध्य=आराधना करके, वीणिभिः=वीणाधारी, सिद्धद्वन्द्वैः=सिद्धों के जोड़ों द्वारा, जलकणभयात्=जल-कण के भय से, त्यक्तमार्गः=जिसका मार्ग छोड़ दिया गया हैं, उल्लङ्घिताध्वा=जिसने अपना मार्ग तय कर लिया है (ऐसे तुम), सुरभितनयालम्भजाम्=गौओं के बलिदान से (गोमेधयज्ञ से), भुवि=पृथ्वी पर उत्पन्न, स्रोतोमूर्त्या=नदीरूप से, परिणताम्=परिणत, रन्तिदेवस्य=इस नाम के दशपुर के राजा के, कीर्तिम्=यश को, अर्थात् "चर्मण्वती" नदी को, मानयिष्यन्=सत्कृत करते हुए, व्यालम्बेथाः=नीचे उतरना ।

भावार्थः=हे मेघ ! पूर्ववर्णितं भगवंतं कार्तिकेयं संपूज्य वीणावद्भिः सिद्धमिथुनैः तोयपतनभयात् परित्यक्तपथः अतिक्रान्ताध्वा (त्वम्) दशपुरनरेशस्य यशोमूर्ति गवालम्भनोद्भूवां भूमौ नदीरूपेण परिणतां चर्मण्वतीं सत्कुर्वन् नीचैः अवतरेः ।

हिन्दी—हे मेघ ! पहले कहे गये कार्तिकेय की पूजा करके, वीणाधारी सिद्धयुगलों ने जिसका मार्ग छोड़ दिया है एवं जिसने मार्ग पार कर लिया है (ऐसे तुम) यज्ञ मे गौओं के बलिदान से उत्पन्न, पृथ्वी पर नदीरूप में परिणत रन्तिदेव नामक दशपुरनरेश की कीर्तिमूर्ति, "चर्मण्वती" का सत्कार करते हुए नीचे उतरना ।

समास:—शरवणे भवो यस्य तम्=शरवण-भवम् (व्यधिकरण)। जलस्य कणा:=जलकणा: (ष० तत्०) तेभ्य: भयात्=जलकणभयात् (ष० तत्०)। त्यक्त: मार्गो यस्य स: त्यक्तमार्ग: (बहुव्री०)। उल्लङ्घितोऽध्वा येन स:=उल्लङ्घिताध्वा (बहुव्री०)। सुरभे: तनया:=सुरभितनया: (ष० तत्०) तासाम् आलम्भनम् सुरभितनयालम्भनम् (ष० तत्०) तस्मात् जाताम्=सुरभितनयालम्भजाम् (ष० तत्०)। स्रोतस: मूर्ति:=स्रोतोमूर्ति: (ष० तत्०) तया।

कोश:—शरो बाणे बाणतृणे, इति शब्दार्णव:। शरजन्मा षडानन:, इत्यमर;। अयनं वर्त्ममार्गाध्व, इत्यमर:। सुरभिर्गवि च स्त्रियाम्, इत्यमर:।

टिप्पणी—शरवणभवम्-भवनं भवं=''भू'' धातु से ''ऋदोरप्'' इस सूत्र से धातु के उकारान्त होने के कारण अप् प्रत्यय किया गया है। शरवण= पद-घटक ''वन'' शब्द के नकार को ''प्रविरन्त: शरेच्छुप्लक्षाऽऽम्रकार्ष्यखदिर-पीयूषक्षाम्योऽसंज्ञायामपि'' इस सूत्र से णत्व हो गया है। **वीणिभि:**—वीणा अस्त्येषामिति ''वर्णित:'' यां ''वीणा'' शब्द से ''व्रीह्यादिभ्यश्च'' इस सूत्र से ''इनि'' प्रत्यय करके ''वीणिन्'' शब्द बना है। **उल्लङ्घित:**—''उद्'' उपसर्ग पूर्वक 'लघि' धातु से कर्म में 'क्त' प्रत्यय करके इडादि करके ''उल्लिङ्घित'' शब्द निष्पन्न होता है। **मानयिष्यन्**—णिजन्त ''मानि'' धातु के लृट् लकार के शतृ प्रत्ययान्त उक्त शब्द है। **व्यालम्बेथा:**—''वी'' एवं ''आङ्'' उपसर्ग-पूर्वक ''लबि'' धातु के लिङ् लकार के मध्यमपुरुष के एकवचन का यह रूप है। **रन्तिदेव:**—प्राचीन समय में भरतवंश में उत्पन्न संस्कृति के पुत्र ''रन्ति-देव'' थे। यह दशपुर के राजा थे। ये बहुत बड़े याज्ञिक, दानी एवं प्रतापी थे। इन्होंने ही कबूतर की प्राणरक्षा के लिए अपना मांस काटकर बाज को दिया था।

अलङ्कार:—यहाँ कीर्ति में एवं चर्मण्वती नदी में भेद होने पर भी अभेदेन वर्णन होने के कारण ''अतिशयोक्ति'' नामक अलङ्कार है॥ ४५॥

त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे
तस्या: सिन्धो: पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम्।

प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी-
रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥ ४६ ॥

अन्वयः—शार्ङ्गिणः वर्णचौरे त्वयि जलम् आदातुम् अवनते पृथुमपि दूर-भावात् तनुम् तस्याः सिन्धोः प्रवाहम् गगनगतयः दृष्टीः आवर्ज्य एकम् स्थूलमध्येन्द्रनीलम् भुवः मुक्तागुणम् इव नूनम् प्रेक्षिष्यन्ते ।

व्याख्या—शार्ङ्गिणः = श्रीकृष्णस्य; वर्णचौरे = कान्ति-चौरे, समान-वर्णके इति भावः, त्वयि = मेघे, जलम् = तोयम्, आदातुम् = ग्रहीतुम्, अवनते = लम्बिते सति, पृथुमपि = स्थूलमपि, दूरभावात् = विप्रकृष्टत्वात्, तनुम् = सूक्ष्म-मिवाभासमानम्, तस्याः = पूर्वकथितायाः, सिन्धोः = एतन्नामिकायाः नद्याः, प्रवाहम् = वेगम्, गगनगतयः = खेचराः, सिद्धादयः इत्यर्थः, दृष्टीः = नेत्राणि, आवर्ज्य = संनियम्य, एकम् = एकयष्टिकम्, स्थूलमध्येन्द्रनीलम् = पृथुमध्यमणी-भूतेन्द्रनीलम्, भुवः = पृथिव्याः, मुक्तागुणम् = मौक्तिकहारम्, इव = यथा, नूनम् = अवश्यम्, प्रेक्षिष्यन्ते = अवलोकयिष्यन्ति ।

शब्दार्थः—शार्ङ्गिणः = श्रीकृष्ण के, वर्णचौरे = रंग को चुराने वाले अर्थात् श्यामरंगवाले, त्वयि = तुम्हारे, जलम् = जल, आदातुम् = लेने के लिए, अवनते = नीचे झुकने, (उतरने पर), पृथुमपि = विशाल होने पर भी, दूर-भावात् = दूर होने के कारण, तनुम् = छोटे से दीखने वाले, तस्याः = उस पहले कही गयी, सिन्धोः = सिन्धु (चर्मण्वती) नदी के, प्रवाहम् = प्रवाह को, गगन-गतयः = आकाशचारी सिद्धगन्धर्वादि, दृष्टीः = नजरों का (आँखों को), आवर्ज्य = केन्द्रित कर, एकम् = एक नदी वाली, स्थूलमध्येन्द्रनीलम् = जिसके बड़े मणियों के मध्य एक इन्द्रनीलमणि लगा है (ऐसे) भुवः = पृथ्वी को, मुक्ता-गुणम् = मोती की माला के, इव = समान, नूनम् = अवश्य, प्रेक्षिष्यन्ते = देखेंगे ।

भावार्थः—हे मेघ ! कृष्णसमानवर्णके त्वयि तोयाऽऽदातुमवनते सति गगनचारिणः सिद्धादयः विशालमपि विप्रकृष्टत्वात् सिन्धोः तनुमिव प्रतीयमानं प्रवाहम्, एकयष्टिकामिन्द्रनीलमणियुक्तां पृथिव्याः मालामिव त्वां दृष्टीः नियम्य प्रेक्षिष्यन्ते ।

हिन्दी—हे मेघ ! श्रीकृष्ण के समान नीले रंग के तुम्हारे जल लेने के लिए उतरने पर, गगनचारी सिद्धगन्धर्वादि, विशाल होने पर भी दूर होने के कारण छोटे से दीखने वाले सिन्धु नदी के प्रवाह को मध्यमणीभूत इन्द्रनील मणिवाली एक लरी की पृथ्वी की मोती की माला की तरह तुम्हें दृष्टि केन्द्रित कर अवश्य देखेंगे।

समास:—गगने गतिर्येषान्ते=गगनगतय: (बहु०)। मध्यश्चासौ इन्द्रनील:=मध्येन्द्रनील: (कर्मधारय), स्थूल: मध्येन्द्रनीलो यस्य तम्–स्थूलमध्येन्द्रनीलम् (बहु०)। मुक्ताया: गुणम् मुक्तागुणम् (ष० तत्पु०)। वर्णस्य चौर:—वर्णचौर: तस्मिन् (ष० तत्०)।

कोश:—चाप: शार्ङ्गमुरारेस्तु, इत्यमर:। विशङ्कटं पृथु बृहद्विशालं पृथुलं महत्, इत्यमर:। स्तोकाल्पक्षुल्लका: सूक्ष्मं श्लक्ष्णं दभ्रं कृशं तनु, इत्यमर:।

टिप्पणी—शार्ङ्गिण:—"शृङ्गस्य विकार:" इस विग्रह में शृङ्ग शब्द से "तस्य विकार:" इस सूत्र से अण् प्रत्यय करके वृद्धिरपरत्वादि करके 'शार्ङ्ग' ऐसा शब्द निष्पन्न होता है। और—"शार्ङ्गमस्यास्तीति" इस विग्रह में "शार्ङ्ग" शब्द से "अत इनिठनौ" इस सूत्र से "इनि" प्रत्यय करके 'शार्ङ्गिन्' ऐसा शब्द निष्पन्न किया जाता है। उक्त रूप इसी शब्द के षष्ठी विभक्ति के एक वचन का है। **चौर:**—इस शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की जा सकती है।—(१) चोरणं चुरा: स्तेय अर्थ में विद्यमान "चुर" धातु से "अप्रत्ययात्" इससे अप्रत्यय करके स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् करेंगे, एवञ्च चुरा शीलमस्या: स्तीति इस विग्रह में "छत्रादिभ्यो ण:' इस सूत्र से "ण" प्रत्यय करके "चौर" शब्द बनाया जा सकता है। (२) दूसरी व्युत्पत्ति "चोरयतीति चोर:, चोर एव चौर:" ऐसी भी हो सकती है। स्वार्थिक णिजन्त "चोरि" धातु से कर्त्ता में अच् प्रत्ययादि करके "चोर" शब्द बना लेंगे और उसी से स्वार्थ में "प्रज्ञादिभ्यश्च" इस सूत्र से "चौर" ऐसा रूप बनाया जा सकता है।

अलंकार:—यहाँ "एक के वर्ण का दूसरे द्वारा चोरी होना" रूप असम्भव वस्तुसम्बन्ध होता हुआ शार्ङ्गी के वर्णसाम्य का प्रतिपादन करने के

कारण निदर्शना अलंकार है। काले रंग के मेघ से युक्त सिन्धु (चर्मण्वती) के प्रवाह में स्थूलमणियों के मध्यमणीभूत इन्द्रनील मणि वाले हार की संभावना पृथ्वी के कण्ठ में की गई है, अतः "उत्प्रेक्षा" अलंकार हुआ। उत्प्रेक्षा वाचक शब्द यहाँ "नूनम्" है।

इस प्रकार यहाँ दोनों अलङ्कारों का अङ्गाङ्गिभाव होने से "सङ्कर" अलङ्कार है॥ ४६॥

तामुत्तीर्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां
पक्ष्मोत्क्षेपादुपरि-विलसत्कृष्णशारप्रभाणाम्।
कुन्दक्षेपानुगमधुकर — श्रीमुषामात्मबिम्बं
पात्रीकुर्वन्दशपुरवधूनेत्र — कौतूहलानाम् ॥ ४७॥

अन्वयः—ताम् उत्तीर्य आत्मबिम्बम् परिचितभ्रूलताविभ्रमाणाम् पक्ष्मोत्क्षेपात् उपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम् कुन्दक्षेपाऽनुगमधुकरश्रीमुषाम् दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् पात्री-कुर्वन् व्रज।

व्याख्या—(हे मेघ) ताम्=चर्मण्वतीम्, उत्तीर्य=पारङ्कृत्वा, आत्मबिम्बम्=स्वस्वरूपम्, परिचितभ्रूलताविभ्रमाणाम्=अवगतभ्रूवल्लीविलासानाम्, पक्ष्मोत्क्षेपात्=नेत्रलोमोन्नमनात्, उपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम्=ऊर्ध्वभागविराजितनीलशबलकान्तीनाम्, कुन्दक्षेपाऽनुगमधुकरश्रीमुषाम्=माध्यपुष्पेतस्ततः गमनानुगभ्रमरं शोभापहारिणाम्, दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम्=रन्तिदेवनगरी-वनिताक्षि-कौतूहलानाम्, पात्रीकुर्वन्=भाजनीकुर्वन्, व्रज=गच्छ।

शब्दार्थः—हे मेघ! ताम्=उस चर्मण्वतीनदी को, उत्तीर्य=पार करके, आत्मबिम्बम्=अपनी मूर्ति को, परिचितभ्रूलताविभ्रमाणाम्=जो भ्रूलताओं के विलास से परिचित हैं, पक्ष्मोत्क्षेपात्=पलकों को ऊपर उठाने के कारण, उपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम्=ऊपर विराजमान काले, लाल तथा सफेद कान्ति से सम्पन्न हैं (ऐसे), कुन्दक्षेपाऽनुगमधुकरश्रीमुषाम्=कुन्दपुष्प के ऊपर इधर-उधर घूमनेवाले भौरों की शोभा को चुराने वाले हैं, दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम्=

रन्तिदेव राजा की नगरी की स्त्रियों के नेत्रों की अभिलाषाओं का, पात्री-कुर्वन्=भाजन बनाते हुए, व्रज=जाना।

भावार्थः—हे मेघ ! त्वं चर्मण्वतीं नदीमुत्तीर्य स्वात्मबिम्बमवलोकनाय ऊर्ध्वाननां भ्रूविलासज्ञानां दशपुरवनितानां नेत्राणां कौतूहल-विषयीकुर्वन् गच्छ।

हिन्दी—हे मेघ ! उस चर्मण्वती नदी को पार कर अपनी मूर्ति को, भ्रूविलास से परिचित, पलकों को ऊपर उठाने के कारण ऊपर विराजमान काले, लाल तथा सफेद कान्तियों से युक्त कुन्दपुष्प पर इधर-उधर घूमने वाले भ्रमरों की शोभा को चुराने वाले दशपुर की नारियों के नेत्रों को अभिलाषाओं का पात्र बनाते हुए जाना।

समासः—आत्मनः बिम्बम्=आत्मबिम्बम् (ष० तत्०) भ्रुवः लता इव=भ्रूलता (उपमितकर्मधारय), भ्रूलतानां विभ्रमाः=भ्रूलताविभ्रमाः (ष० तत्०) परिचिता भ्रूलताविभ्रमा येषु तानि परिचरितभ्रूलताविभ्रमाणि तेषाम्. (बहुव्री०)। पक्ष्मणाम् उत्क्षेपः पक्ष्मोत्क्षेपः (ष० तत्०) तस्मात्। कृष्णाश्च ताः शाराः=कृष्णशाराः (कर्मधारय) उपरिविलसन्त्यः (सुप्सुपेति-समासः) उपरिविलसन्त्यः कृष्णशाराः प्रभा येषां तानि तेषाम्=उपरिविल-सत्कृष्णशारप्रभाणाम् (बहुव्रीहिः)। दशपुराणि यत्र तत् दशपुरम् (बहुव्री०)।

कोशः—पक्ष्म सूत्रे च सूक्ष्मांशे किञ्जल्के नेत्रलोमनि, इति विश्वः। कृष्णे नीलासितश्याम-कालश्यामल-मेचकाः, इत्यमरः। कृष्णरक्तसिताशाराः, इति यादवः। माध्यं कुन्दम्, इत्यमरः। वधूर्जायाष्नुषा स्त्री च, इत्यमरः।

टिप्पणी—**उत्तीर्य**—उद् उपसर्गपूर्वक "प्लवन और संतरण" अर्थ में विद्यमान "तॄ" धातु से क्त्वा प्रत्यय करके उसके स्थान में "ल्यप्" करके ऐसा रूप बनता है। **उत्क्षेपः**—"उद्" उपसर्ग-पूर्वक क्षेपणार्थक "क्षप्" धातु से भाव में "घञ्" प्रत्यय करके "उत्क्षेप" ऐसा रूप निष्पन्न किया जाता है। **कृष्णशाराः**—यहाँ जो कर्मधारय समास "कृष्णाश्च ताः शाराः" किया गया है वह दोनों पद के वर्णवाची होने कारण "वर्णो वर्णेन" इस सूत्र से किया गया है।

श्रीमुषाम्—श्रीं मुष्णन्ति इति "श्रीमुट्" तेषाम् । यहाँ स्तेयार्थक "मुष्" धातु से क्विप् प्रत्यय किया जाता है परन्तु उसका सर्वापहारी लोप हो जाता है।

पात्रीकुर्वन्—"अपात्रं पात्रं यथा सम्पद्यते" इस विग्रह में "पात्र" शब्द से अभूततद्भाव अर्थ में "च्वि" प्रत्यय करके "कृ" का अनुप्रयोग करके शतृ प्रत्यय लाकर "पात्रीकुर्वन्" ऐसा रूप बनाया जाता है।

अलङ्कारः—यहाँ कुन्द पुष्प सफेद, उसी तरह दशपुर-वधुओं के नेत्र भी सफेद, एवं उस फूल पर भ्रमर काला है, उसी तरह आँखों की पुतलियाँ भी काली हैं, इसलिए यहाँ "उपमा" अलङ्कार है ॥ ४७ ॥

ब्रह्मावर्तं जनपदमथच्छायया गाहमानः
क्षेत्रं क्षत्रप्रधन-पिशुनं कौरवं तद्भजेथाः ।
राजन्यानां शितशरशतैर्यत्र गाण्डीव-धन्वा
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि ॥ ४८ ॥

अन्वयः—'अथ ब्रह्मावर्तम्' जनपदम् छायया गाहमानः छत्रप्रधनपिशुनम् तत् कौरवं क्षेत्रम् भजेथाः । यत्र गाण्डीवधन्वा शितशर-शतैः राजन्यानाम् मुखानि धारा-पातैः कमलानि त्वम् इव अभ्यवर्षत् ।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम्, ब्रह्मावर्तम् = ब्रह्मावर्तनामानम् जनपदम् = देशम्, छायया=अनातप-मण्डलेन, गाहमानः=प्रविशन्, क्षत्रप्रधनपिशुनम्=राजन्यरण सूचकम्, तत्=प्रसिद्धम्, कौरवम्=कुरुसम्बन्धि, क्षेत्रम् = स्थानम्, कुरुक्षेत्रमित्यर्थः, भजेथाः = गच्छेः । यत्र=कुरुक्षेत्रे, गाण्डीवधन्वा=अर्जुनः । शित-शर-शतैः=अत्यन्ततीक्ष्णबाणसहस्रैः, राजन्यानाम्=नृपानाम्, योद्धानामिति भावः । मुखानि=वदनानि, धारापातैः=आसारैः, कमलानि=पद्मानि, त्वम्=मेघः, इव=यथा, अभ्यवर्षत्=अभिमुखं दृष्टवान्, बाणप्रहारैः शिरांसि पातयामासेत्यर्थः ।

शब्दार्थः—अथ = पश्चात्, ब्रह्मावर्तम् = ब्रह्मावर्त नामक, जनपदम्=देश को, छायया=छायारूप से, गाहमानः=प्रविष्ट होता हुआ, क्षत्रप्रधनपिशुनम् = क्षत्रियों के युद्ध को सूचित करने वाले, तत्=उस प्रसिद्ध, कौरवम्=कुरुवंशियों के, क्षेत्रं=स्थान को अर्थात् कुरुक्षेत्र को, भजेथाः=प्राप्त करना । यत्र=जहाँ गाण्डीव-

धन्वा = अर्जुन ने, शितशरशतैः = असंख्यतीक्ष्णबाणों के द्वारा, राजन्यानाम् = राजाओं के, मुखानि = शिरों पर, धारासारैः = मूसलाधार वृष्टि के द्वारा, कमलानि = कमलों पर, त्वम् = मेघ की, इव = तरह, अभ्यवर्षत् = वर्षा की थी अर्थात् क्षत्रियों के मस्तकों को वेध डाला था।

भावार्थः—हे मेघ ! पश्चात् छाया-रूपेण ब्रह्मावर्तनामकं देशं प्रविश्य कौरव-युद्ध सूचक-कुरु-क्षेत्रं गच्छ। यत्र अर्जुनः स्वतीक्ष्णबाणसहस्रैः प्रतिभटानां शिरांसि धारासंपातैः यथा त्वं कमलानि पातयसे तथैव पातयामास।

हिन्दी—हे मेघ ! उसके बाद छायारूप से ब्रह्मावर्त देश में प्रवेश करते हुए तुम, क्षत्रियों के युद्ध को आज भी जो सूचित कर रहा है, उस प्रसिद्ध कुरुक्षेत्र को जाना। जहाँ अर्जुन ने अपने असंख्य तीखे बाणों के द्वारा क्षत्रियों के मस्तकों को उसी तरह काट गिराया था जिस तरह तुम मूसलाधार वृष्टि के द्वारा कमलों को गिराते हो।

समासः—क्षत्राणां प्रधनं = क्षत्रप्रधनम्, (ष० तत्०) तस्य पिशुनम् = क्षत्रप्रधनपिशुनम् (ष० तत्०)। शिताश्च ते शराः शितशराः (कर्म०) तेषां शतानि तैः (ष० तत्) = शितशरशतैः। गाण्डीवं धनुर्यस्य गाण्डीवधन्वा (बहु० व्रीहिः)। धाराणां पाताः = धारापाताः (ष० तत्०) तैः।

कोशः—नीवृज्जनपदो देशः, इत्यमरः। युद्धमायोधनं जन्यं प्रधनं प्रविदारणम्, इत्यमरः। कपिध्वजस्य गाण्डीवगाण्डिवौ पुन्नपुंसकौ, इत्यमरः। मूर्धाभिषिक्तो राजन्यः, इत्यमरः।

टिप्पणी—ब्रह्मावर्तम्—आवर्तनं आवर्तः=“आङ्” उपसर्गपूर्वक वर्तनार्थक “वृत्” धातु से भाव में घञ् प्रत्यय करके “आवर्त” शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ “सृष्टि” है। ब्रह्मणः आवर्तः यस्मिन् सः=ब्रह्मावर्तः देश-विशेषः। **गाहमानः**—विलोडन अर्थ में विद्यमान “गाह्” धातु से लट्‌लकार के स्थान पर “लटः शतृशानच” इस सूत्र से “शानच्” प्रत्यय करके मुडादि करके “गाहमानः” ऐसा रूप बनता है। **कौरवं तद्भजेथाः**—यद्यपि इस श्लोक में “यद्” शब्द के पाठ के बिना भी “तद्” शब्द का प्रयोग है, एवञ्च साहित्यिकों ने ऐसे स्थल पर सामान्य रूप से “विधेयाऽविमर्श” नामक दोष को माना है; क्योंकि “यद्

और तद्'' शब्द का नित्य सम्बन्ध होता है। तथापि कुछ ऐसे स्थल भी होते हैं, जहाँ ''यद्'' शब्द की अपेक्षा किये बिना भी ''तद्'' शब्द के प्रयोग से दोष नहीं आता। इसमें प्रमाण आलङ्कारिकों की निम्नलिखित पंक्ति हैं— ''प्रक्रान्तप्रसिद्धाऽनुभूतार्थकस्तच्छब्दो यच्छब्दोपादानं नापेक्षते''इति। इसका अर्थ है कि ''प्रक्रान्त अर्थात् पूर्ववर्णित पदार्थ में प्रसिद्ध अर्थ में और अनुभूत अर्थ में प्रयुक्त 'तद्' शब्द 'यद्' की अपेक्षा नहीं करता। अतः यहाँ प्रसिद्ध अर्थ में ''तद्'' शब्द के प्रयोग होने के कारण उक्त दोष नहीं है।

कौरवम्—कुरूणामिदं कौरवम् यहाँ ''कुरु'' शब्द से ''तस्येदम्'' इस सूत्र से ''अण्'' प्रत्यय करके वृद्ध्यादि करके ''कौरवम्'' ऐसा रूप निष्पन्न किया गया है। **कुरुक्षेत्रः**—यहाँ पाण्डवों और कौरवों का प्रसिद्ध ''महाभारत'' युद्ध हुआ था। परशुरामजी ने वहीं पर २१ बार क्षत्रियों को निर्मूल करने के अभिप्राय से उनका संहार कर ''स्यमन्तपञ्चक'' क्षेत्र की स्थापना की थी। **गाण्डीवम्**—गाण्डी ग्रन्थिः अस्यास्तीति गाण्डीवम्, यहाँ ''गाण्डी'' शब्द से ''गाण्डजगात्संज्ञायाम्'' इस सूत्र से ''व'' प्रत्यय हुआ है, क्योंकि यह अर्जुन के धनुष की संज्ञा है। **शितम्**—''शो तनूकरणे'' इस धातु से ''क्त'' प्रत्यय करके ''शाच्छोरन्यतरस्याम्'' इस सूत्र से विकल्प से इत्व हुआ है। **राजन्यः**—राज्ञामपत्यानि इस विग्रह में ''राजन्'' शब्द से ''राजश्वसुराद्यत्'' इस सूत्र से यत् प्रत्यय हुआ है एवं ''ये चाऽऽभावकर्मणोः'' इस सूत्र से ''टी'' (अन्) को प्रकृतिभाव हो गया, तब ''राजन्य'' ऐसा रूप बना है।

अलंकारः—यहाँ अर्जुन की बाणवृष्टि की तुलना मेघ की जलवृष्टि से की गयी है, अतः ''उपमा'' अलङ्कार है॥ ४८॥

हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्कां
बन्धुप्रीत्या समर-विमुखो लाङ्गली याः सिषेवे।
कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य सारस्वतीना—
मन्तःशुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः॥ ४९॥

अन्वयः—बन्धुप्रीत्या समरविमुखः लाङ्गली अभिमतरसाम् रेवतीलोचनाङ्काम् हालाम् हित्वा याः सिषेवे । हे सौम्य ! त्वम् अपि तासाम् सारस्वतीनाम् अपाम् अभिगमम् कृत्वा अन्तःशुद्धः वर्णमात्रेण कृष्णः भविता ।

व्याख्या—बन्धुप्रीत्या = संबन्धिस्नेहेन, न तु भीरुतया, समरविमुखः = युद्धपराङ्मुखः, लाङ्गली = बलरामः, अभिमतरसाम् = इष्टस्वादाम्, रेवतीलोचनाङ्काम् = स्वप्रियानयनाङ्किताम्, हालाम् = मदिराम्, हित्वा = त्यक्त्वा, याः = सरस्वत्यापः, सिषेवे = सेवितवान्' पपावित्यर्थः । हे सौम्य ! = हे भद्र ! त्वम् = मेघः अपि, तासाम् = पूर्वकथितानाम्. सारस्वतीनाम् = सरस्वतीसंबन्धिनीनाम् अपाम् = तोयानाम्, अभिगमम् = सम्मुखगमनम्, पानमित्यर्थः, कृत्वा = विधाय, अन्तः-शुद्धः = निर्मलान्तः-करणः सन्, वर्णमात्रेण = शारीरिकरूपेणैव, कृष्णः = श्यामः, न तु हृदयेनापि कृष्णः पापी इति भावः । भविता = भविष्यसि ।

शब्दार्थः—बन्धुप्रीत्या = बान्धवप्रेम से, चूंकि कौरव-पाण्डव संबन्धी थे इस स्नेह से न कि भय से, समरविमुखः = युद्ध से विमुख, लाङ्गली = बलराम ने, अभिमतरसाम् = इष्टस्वादवाली, रेवतीलोचनाङ्काम् = अपनी प्रिया की आँखों (की छाया) से चिह्नित, हालाम् = मदिरा को, हित्वा = छोड़कर, याः = जिसका (सरस्वती के जल का), सिषेवे = सेवन किया था, अर्थात् पान किया था । हे सौम्य = हे भद्र, त्वम् = तुम, अपि = भी, तासाम् = उस, सारस्वतीनाम् = सरस्वती के, अपाम् = जलों का, अभिगमम् = सेवन, कृत्वा = करके अर्थात् उसका पान करके, अन्तःशुद्धः = निर्मलान्तःकरण वाले होकर, वर्णमात्रेण = केवल रंग से, न कि हृदय से भी, कृष्णः = श्यामवर्ण के, भविता = हो जाओगे ।

भावार्थः—हे सौम्य ! बान्धव प्रेम्णा समरपराङ्मुखो हलधरः अभीष्टस्वादां स्वप्रियानयनप्रतिबिम्बितां मदिरां त्यक्त्वा याः सारस्वतीः अपः पपौ । त्वमपि तेषां सारस्वतीनाम् अपां पानं कृत्वा निर्मलान्तः-करणः सन् रूपेणैव (न तु हृदयेन) श्यामो भविता ।

हिन्दी—हे सज्जन ! बान्धव-स्नेह के कारण युद्ध से विरत बलराम ने अपनी इच्छित स्वादवाली, अपनी प्रिया के नेत्रों के प्रतिबिम्ब से चिह्नित मदिरा को छोड़कर जिस सरस्वती के जल का सेवन किया था । तुम भी उस जल का

सेवन (पान) करके निर्मल अन्तःकरण वाले होकर केवल रूप से (न कि हृदय से भी) श्यामरंग के हो जाओगे।

समासः—बन्धूनां प्रीतिः=बन्धुप्रीतिः (ष० तत्०) तया। समरात् विमुखः समरविमुखः (पञ्चमी तत्०)। अभिमतो रसो यस्या सा अभिमत-रसा (बहु०) ताम्। रेवत्याः लोचने एव अङ्कं यस्या सा रेवतीलोचनाङ्का (बहु०) ताम्।

कोशः—रेवती रमणो रामः, इत्यमरः। कलङ्काङ्को लाञ्छनं च, इत्य-मरः। सुरा हलिप्रिया हाला, इत्यमरः। तालांको मुसली हली, इत्यमरः।

टिप्पणी—लाङ्गली-लाङ्गलमस्यास्तीति लाङ्गली, यहाँ "लाङ्गल" शब्द से "अतइनिठनौ" इस सूत्र से "इन" प्रत्यय करके "लाङ्गली" शब्द निष्पन्न होता है। इसका अर्थ हलवाला होता है, यह बलरामजी का नाम है; क्योंकि हल ही उनका प्रधान अस्त्र था। ये रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न वसुदेव के ७वें पुत्र थे। **रेवतीलोचनाङ्काम्**—बलरामजी "मदिरा" के बहुत प्रेमी थे और पति यदि मदिरा पीता हो तो पत्नी भी यदि उसका साथ दे तो कोई अनुचित नहीं इसीलिए रेवती भी मदिरा पीती थी अतएव मदिरा में उसकी आँखों की परछाई पड़ती होगी, जिसका कवि ने कथन किया है। **सारस्वती-नाम्**—सरस्वत्याः इमा सारस्वत्यः। सरस्वती शब्द से "तस्येदम्" इस सूत्र से अण् प्रत्यय करके वृद्धयादि करके स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् करके "जस्" विभक्ति लाकर "सारस्वत्यः" ऐसा रूप बनता है, तासाम्=सरस्वतीनाम् यह षष्ठीविभक्ति का रूप है। **अभिगमम्**—"अभि" उपसर्गपूर्वक "गम्" धातु से "ग्रहवृद्धनिश्चिगमश्च" इस सूत्र से "अप्" प्रत्यय करके "अभिगम" ऐसा रूप निष्पन्न होता है। उक्त रूप उसी शब्द के द्वितीया विभक्ति का है। **वर्ण-मात्रेण**—वर्ण एव "वर्णमात्रम्" यहाँ एव के साथ विग्रह करके "मात्र" के साथ-साथ समास किया गया है, अतः अस्वपद विग्रह होने के कारण "मयूर-व्यंसकादयश्च" इस सूत्र से नित्य समास किया गया है। उक्त रूप तृतीया विभक्ति का है। **भविता**—यहाँ "भू" धातु से भविष्यत् अर्थ में "वर्तमान-समीपवर्तमानवद्वा" इस सूत्र से वर्तमान काल में "ण्वुल्तृचौ" इस सूत्र से "तृच्" प्रत्यय किया गया है॥ ४९॥

तस्मात् गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपान-पंक्तिम् ।
गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः
शम्भोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ॥ ५० ॥

अन्वयः—तस्मात् अनुकनखलम् शैलराजाऽवतीर्णाम् सगर तनय-स्वर्ग-सोपानपंक्तिम् जह्नोः कन्याम् गच्छ । या गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनाम् फेनैः विहस्य इव इन्दुलग्नोर्मिहस्ता शम्भोः केशग्रहणम् अकरोत् ।

व्याख्या—तस्मात् = कुरुक्षेत्रात्, अनुकनखलम् = कनखलतीर्थ-समीपे, शैलराजाऽवतीर्णाम् = हिमालयनिःसृताम्, सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम्=सगर-पुत्रव्योमगमनारोहणशृङ्खलाम् स्वर्गसाधनभूतामिति भावः । जह्नोः = एतन्नाम-कस्य राज्ञः, कन्याम् = पुत्रीम् जाह्नवीं गङ्गामित्यर्थः । गच्छेः = यायाः । या = जाह्नवी, गौरीवक्त्र-भ्रुकुटिरचनाम् = पार्वतीवदनभ्रूभङ्गनिर्मिताम्, फेनैः = डिण्डिरैः विहस्य इव = उपहासं कृत्वेव; इन्दुलग्नोर्मिहस्ता=चन्द्रसंलग्नवीचिकरा (सती), शम्भोः = शंकरस्य, केशग्रहणम् = जटाग्रहणम्, अकरोत् = चकार ।

शब्दार्थः—तस्मात् = कुरुक्षेत्र से (आगे), अनुकनखलम् = कनखलतीर्थ के समीप, शैलराजाऽवतीर्णाम् = हिमालय से उतरी, सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम् = सगर राजा के पुत्रों के लिए स्वर्ग की सीढ़ी के समान, जह्नोः = जह्नु-नामक राजा की, कन्याम् = लड़की, जाह्नवी गङ्गा के पास, गच्छेः = जाना । या = जिस गङ्गाने, गौरीवक्त्र-भ्रकुटि-रचनाम् = पार्वतीके मुख में (ईर्ष्यावश उत्पन्न) भ्रकुटि रचना का, फेनैः = फेन के द्वारा, विहस्य इव = उपहास-सी करती हुई, इन्दुलग्नोर्मिहस्ता = चन्द्रमा को स्पर्श करते हुए लहररूपी हाथों वाली, शम्भोः = शिवजी का, केशग्रहणम्=जटा-जूट ग्रहण, अकरोत् = की है ।

भावार्थः—हे मेघ ! कुरुक्षेत्रादग्रे कनखलतीर्थ-समीपे सगरपुत्राणां कृते स्वर्गसोपानभूतां जाह्नवीं गच्छ । या जाह्नवी, (पतिशिरःस्थितत्वात्) पार्वती-मुखे उत्पन्नभ्रकुटिरचनां फेनैः उपहासं कृत्वेव चन्द्रसंस्पर्शन–शीलोर्मिकरा (सती) शिवजटाजूटग्रहणं कृतवती ।

हिन्दी—हे मेघ ! कुरु–क्षेत्र से आगे कनखल के समीप हिमालय से उतरी सगरपुत्रों के लिए स्वर्ग सोपानभूत जाह्नवी के पास जाना। जिसने अपने फेन के द्वारा (ईर्ष्यावश) पार्वती के मुख में उत्पन्न भ्रुकुटि का उपहास-सी करती हुई चन्द्रमा को छूनेवाले तरङ्गरूपी हाथ से शिवजी के जटा-जूट को पकड़ लिया है।

समासः—कनखलस्य समीपे अनुकनखलम् (अव्ययीभावः)। सगरस्य तनयाः=सगरतनयाः (ष० तत्०), सोपानानां पङ्क्तिः=सोपानपंक्तिः (ष० तत्०) स्वर्गस्य सोपानपङ्क्तिः=सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिः (ष० तत्०)। गौर्याः वक्त्रम्=गौरीवक्त्रम् (ष० तत्०) भ्रुकुटेः रचना भ्रुकुटिरचना, गौरीवक्त्र-भ्रुकुटिरचना (स० तत्०) ताम्। इन्दौ लग्नाः=इन्दुलग्नाः (स० तत्०), इन्दुलग्नाः ऊर्मय एव हस्ताः यस्याः सा इन्दुलग्नोर्मिहस्ता (बहु०) ताम्। केशानां ग्रहणम् केशग्रहणम् (ष० तत्०)।

कोशः—गङ्गा विष्णुपदी जह्नुतनया सुरनिम्नगा, इत्यमरः। वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्, इत्यमरः। डिण्डिरोऽब्धिकफः फेनः; इत्यमरः।

टिप्पणी—कनखलः—यह तीर्थ हरिद्वार के समीप है। हरिवंशपुराण में इसका वर्णन मिलता है, जैसे—

हरिद्वारे कुशावर्ते नीलके भिल्ल-पर्वते।
स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते ॥

महोपाध्याय मल्लिनाथजी कनखल को कनखल नामक पर्वत मानते हैं। उनका आधार महाभारत के वनपर्व का "एते कनखलाः राजन् ऋषीणां दयिता नगाः" यह श्लोक है। **जह्नोः कन्याम्**—सगरवंश में उत्पन्न भगीरथ के द्वारा अपने पूर्वजों के उद्धार के लिए जब गङ्गा पृथ्वी पर लायी गयीं, तब गंगाजी ने राजा जह्नु की यज्ञशाला को डुबा दिया तो क्रुद्ध होकर जह्नु ने उन्हें पी लिया और पुनः अनुनय आदि करने पर उन्हें बाहर निकाल दिया अतः गंगाजी को जह्नुतनया कहते हैं। **सगरः**—यह सूर्यवंश में उत्पन्न हुए थे। इनके नाम के

विषय में प्रसिद्धि है कि ये जब गर्भ में ही थे उसी समय इनकी विमाता ने इनकी माता को गर (विष) दे दिया, परन्तु किसी ऋषि के आशीर्वाद के कारण ये मरे नहीं, सकुशल उत्पन्न हो गये अतः उन्हें "सगर" नाम दिया गया। **गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचना:**—यहाँ पार्वती के मुख में भ्रुकुटि की कल्पना कवि ने किया है। पार्वती और गंगा दोनों हिमालय से उत्पन्न हैं और संयोग की बात यह है कि दोनों बहन एक शंकरजी की ही पत्नी हुईं। फिर ये दोनों बहनें परस्पर सौत हो गयीं। फिर पार्वती के मुँह में भ्रकुटि क्यों न हो? वह सोचती हैं मैं तो अर्द्धाङ्ग की ही स्वामिनी रही, गंगा तो पति देवता के शिर पर चढ़ी है। शंकरजी ने इसे सिर पर चढ़ा रखा है। फिर तो ईर्ष्या स्वाभाविक ही है। और इधर क्रुद्ध पार्वती को और अधिक क्रुद्ध करने के लिए फेन बहाने के व्याज से मानो हँसकर उनका उपहास-सी कर रही हैं।

अलंकार:—यहाँ "विहस्य इव" इस अंश में "उत्प्रेक्षा" अलंकार है एवं "ऊर्मिहस्ता" यहाँ "रूपक" अलंकार है एवं दोनों के अंगांगिभाव होने से "संकर" अलंकार है॥ ५० ॥

तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पश्चार्द्धलम्बी
त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्यगम्भः।
संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसिच्छाययाऽसौ
स्यादस्थानोपगत - यमुना - सङ्गमेवाभिरामा ॥ ५१ ॥

अन्वयः—सुरगज इव व्योम्नि पश्चार्द्धलम्बी त्वम् अच्छस्फटिकविशदम् तस्याः अम्भः तिर्यक् पातुम् तर्कये चेत् सपदि स्रोतसि संसर्पन्त्यां भवतः छायया असौ अस्थानोपगत-यमुना सङ्गमा इव अभिरामा स्यात्।

व्याख्या—सुरगजः=देवहस्ती, इव=यथा, व्योम्नि=नभसि, पश्चार्द्ध-लम्बी=पश्चिमभागार्धापनतः, त्वम्=मेघः अच्छस्फटिकविशदम्=निर्मल-स्फटिकधवलम्, तस्याः=गङ्गायाः, अम्भः=तोयम्, तिर्यक्=तिरश्चीनं यथा स्यात्तथा, पातुम्=पानङ्कर्तुम्, तर्कयेः=विचारये, चेत्=तर्हि, सपदि=सहसा.

स्रोतसि=प्रवाहे, संसर्पन्त्या=संक्रामन्त्या, भवतः=मेघस्य, छायया=प्रतिबिम्बेन, असौ=गङ्गा, अस्थानोपगत-यमुनासंगमा=प्रयागभिन्नस्थलप्राप्त-कालिन्दीसमागमा, इव=यथा, अभिरामा=मनोहरा, स्यात्=भवेत् ।

शब्दार्थः—सुरगजः=देवताओं के हाथी की, इव=तरह, व्योम्नि=आकाश में, पश्चार्द्धलम्बी=पीछे के आधे भाग से झुके हुए, त्वम्=तुम अच्छस्फटिकविशदम्=निर्मलस्फटिक के समान श्वेत, तस्याः=उस गंगा के, अम्भः=जल को, तिर्यक्=टेढ़ा होकर, पातुम्=पीने को, तर्कयेः=सोचेंगे, चेत्=यदि, तब, सपदि=सहसा, स्रोतसि=प्रवाह में, संसर्पन्त्या=चलते हुए, भवतः=तुम्हारे, छायया=प्रतिबिम्ब से, असौ=वह गंगा, अस्थानोपगत-यमुनासङ्गमा=अस्थान प्रयाग से भिन्न दूसरे स्थान में [प्राप्त] यमुना के संगम वाली, इव=की तरह, अभिरामा=मनोहर, स्यात्=दिखाई देगी ।

भावार्थः—हे मेघ ! दिग्गज इवाकाशे पाश्चार्धेण स्थितः पूर्वार्द्धेन त्वं यदा गङ्गायाः स्वच्छस्फटिक-धवलं जलं पातुं चिन्तयसे तदा सहसा प्रवाहे त्वच्छाया संयुक्ततया गंगा प्रयागेतरस्थाने प्राप्त-यमुना-समागममेव मनोहरा भवेत् ।

हिन्दी—हे मेघ ! सुरगजों की तरह आकाश में पीछे के आधेभाग से रहकर आगे के आधे भाग से टेढ़ा होकर जब तुम गंगाजी के निर्मलस्फटिक मणि की तरह धवल जल को पीने को सोचोगे तभी सहसा प्रवाह में तुम्हारी छाया पड़ने के कारण गंगा प्रयाग से भिन्न स्थान में यमुना संगम वाली-सी मनोहर दिखाई देगी ।

समासः—अपरम् अर्धम्=पश्चार्द्धम् (कर्मधारयः) पश्चार्द्धेन लम्बते तच्छीलः इति पश्चार्द्धलम्बी (उपपदसमासः)। अच्छासौ स्फटिकः अच्छ-स्फटिकः (कर्म०) तदिव विशदम्=अच्छस्फटिकविशदम् (उपमान कर्म०)। न स्थानम्=अस्थानम् (नञ्) अस्थाने उपगतः=अस्थानोपगतः (स० तत्०) यमुनायाः संगमः=यमुनासंगमः (ष० तत्०) अस्थानोपगतः यमुना संगमो यस्याः सा=अस्थानोपगतयमुनासंगमा (बहु०)।

कोशः—प्रसन्ने भल्लुकेऽच्छः, इत्यमरः। विशदश्वेतपाण्डुराः, इत्यमरः। सतिर्यङ् यस्तिरोऽञ्चति; इत्यमरः। सद्यः सपदि तत्क्षणे, इत्यमरः। छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः, इत्यमरः।

टिप्पणी—पश्चार्द्धम्—परं च तत् अर्धम् "यहाँ समास होने पर "अपरस्यार्द्धे पश्च भावो वक्तव्यः" इस वार्तिक से "अपर" के स्थान पर "पश्च" आदेश हुआ है।

तिर्यक्—तिरस उपपदक "अञ्च" धातु से क्विन् प्रत्यय करके उसका सर्वापहारी लोप हो जाता है। उपपद समास किया जाता है और "तिरस्तिर्यलोपे" इस सूत्र से "तिरस्" के स्थान पर "तिरि" आदेश करके न लोप कुत्वादि करके "तिर्यक्" ऐसा रूप निष्पन्न होता है।

पातुम्—पानार्थक "पा" धातु से तुमुन् प्रत्यय करके उक्त रूप बनाया जाता है।

संसर्पन्त्याः—',सम्" उपसर्गपूर्वक "सृप" धातु से लट् के स्थान पर शतृ प्रत्यय करके स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप् करके "संसर्पन्ती" ऐसा रूप बनता है। उक्त रूप उसी शब्द के तृतीया के एकवचन का है।

अभिरामाः—"अभि" उपसर्गपूर्वक क्रीडार्थक "रम्" धातु से अधिकरण में घञ् प्रत्यय करके स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् करके "अभिरामा" ऐसा रूप निष्पन्न होता है।

सुरगजः—ये आठों दिशाओं के आठ दिग्गज होते हैं। अमर कोषकार ने कहा है—

'ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः।
पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः॥

इन्हें ही सुरगज भी कहा जाता है।

अलंकार—यहाँ "अच्छ–स्फटिक–विशदम्" में लुप्तोपमा एवं "अस्थानोपगत–यमुना–संगमा इव" यहाँ उत्प्रेक्षा है और दोनों के अंगांगिभाव के कारण "संकर" अलंकार है॥ ५१॥

आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां
तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः ।
वक्ष्यस्यध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्णः
शोभां शुभ्र–त्रिनयन--वृषोत्खातपङ्कोपमेयाम् ।। ५२ ।।

अन्वयः—आसीनानाम् मृगाणाम् नाभिगन्धैः सुरभितशिलम् तस्याः एव प्रभवम् तुषारैः गौरम् अचलम् प्राप्य अध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्णः शुभ्र–त्रिनयन–वृषोत्खात–पङ्कोपमेयाम् शोभाम् वक्ष्यसि ।

व्याख्या—आसीनानाम्=स्थितानाम्, मृगाणाम्=कुरङ्गाणाम्, गन्धमृगाणामिति भावः । नाभिगन्धैः=कस्तूरिकागन्धैः, सुरभितशिलम्=सुगन्धितप्रस्तरम्, तस्याः=गङ्गायाः, एव प्रभवम्=उत्पत्तिस्थलम्, तुषारैः=हिमैः, गौरम्=धवलम्, अचलम्=पर्वतम्, प्राप्य=आसाद्य, हिमालयं गत्वेत्यर्थः, अध्वश्रमविनयने=मार्गपरिश्रमापनोदने, तस्य=हिमालयस्य, शृङ्गे=सानौ, निषण्णः=उपविष्टः (सन्, त्वम्) शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम्=श्वेतशिववृषभविदारितकर्दमतुल्याम्, शोभाम्=श्रियम्, वक्ष्यसि=धारयिष्यसि ।

शब्दार्थः—आसीनानाम्=बैठे हुए, मृगाणाम्=हिरणों के (गन्धमृगों के), नाभिगन्धैः=कस्तूरी की सुगन्धि से, सुरभितशिलम्=सुगन्धित पत्थरवाले, तस्याः एव=उस गङ्गा के ही, प्रभवम्=उत्पत्ति स्थान, तुषारैः=बर्फों से, गौरम्=उजले, अचलम्=पर्वत को अर्थात् हिमालय को, प्राप्य=प्राप्त करके, अध्वश्रमविनयने=मार्ग के परिश्रम को दूर करने मे, तस्य=उस हिमालय की, शृङ्गे=चोटी पर, निषण्णः=बैठे हुए (तुम), शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम्=शिवजी के उजले नन्दी के द्वारा विदीर्ण की गयी कीचड़ की तरह, शोभाम्=शोभा को, वक्ष्यसि=धारण करोगे ।

भावार्थः—हे मेघ ! तदनन्तरमुपविष्टानां गन्धमृगाणां कस्तूरिकागन्धैः सुरभितप्रस्तरे गङ्गापितरि हिमशुक्ले पर्वते हिमालये मार्गपरिश्रमापनोदनायोपविष्टस्त्वं शिवस्य श्वेतनन्दिनोत्खातकर्दमशोभां प्राप्स्यसि ।

हिन्दी—हे मेघ ! उसके बाद बैठे हुए मृगों के कस्तूरी के सुगन्ध से सुगन्धित पत्थर वाले; गंगा की उत्पत्ति के स्थान; बर्फों से उजले पर्वत हिमालय की चोटी पर मार्ग परिश्रम को दूर करने के लिए जब तुम बैठोगे तब शिवजी के उजले नन्दी के द्वारा विदारित कीचड़ के समान शोभा को धारण करोगे।

समासः—सुरभिताः शिला यस्य स सुरभितशिलः (बहु०) तम्। नाभीनां गन्धाः=नाभिगन्धाः (ष० तत्०) तैः। अध्वनः श्रमः अध्वश्रमः (ष० तत्०) तस्य विनयनम्=अध्वश्रमविनयनम्, (ष० तत्०) तस्मिन् अध्वश्रमविनयने। त्रिनयनस्य वृषः=त्रिनयनवृषः (ष० तत्०) शुभ्रश्चासौ त्रिनयनवृषः=शुभ्रत्रिनयनवृषः (कर्म०) शुभ्रत्रिनयनवृषेण उत्खातः शुभ्रत्रिनयन–वृषोत्खातः (तृ० तत्०) स चासौ पङ्कः (कर्म धा०) शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपंकेनोपमेयाम्=शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम् (तृ० तत्०)। त्रीणि नयनानि यस्य स त्रिनयनः (ब० व्री०)।

कोशः—मृगनाभिर्मृगमदः कस्तूरी च, इत्यमरः। नाभिः प्रधाने कस्तूर्यां मदे च क्वचिदीरितः, इति विश्वः। अवदातः सितो गौरः, इत्यमरः। सुकृतं वृषभे वृषः, इत्यमरः। शुभ्रमुद्दीप्तशुक्लयोः, इत्यमरः।

टिप्पणी—आसीनानाम्—"आसत इति" इस विग्रह में उपवेशन अर्थात् बैठने के अर्थ में "आस" धातु से लट् लकार के स्थान पर "लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे" इस सूत्र से "शानच्" प्रत्यय आदेश करके, शानच् के आकार को "ईदासः" इस सूत्र से ईकार आदेश करके "आसीन" ऐसा रूप बनता है। उक्त रूप उसी के षष्ठी विभक्ति का है।

प्रभवः—"प्र" उपसर्गपूर्वक "भू" धातु से "ऋदोरप्" इस सूत्र से "अप्" प्रत्यय करके गुणादि करके "प्रभव" ऐसा रूप निष्पन्न होता है।

अचलः—चलतीति चलः, न चलः अचलः, यहाँ संचलनार्थक "चल्" धातु से "नन्दिग्रहिपचादिभ्यो" इस सूत्र से पचादित्वात् अच् प्रत्यय होता है।

विनयनम्—वि उपसर्गपूर्वक नी धातु से करण में अथवा कर्ता में ल्युट् प्रत्यय होता है।

विनीयतेऽनेनेति विनयनम् = इस प्रकार करण में "वि" उपसर्गपूर्वक "नी" धातु से "करणाधिकरणयोश्च" इस सूत्र से "ल्युट्" प्रत्यय होता है।

कर्ता में विनयतीति विनयनम् इस विग्रह में उसी धातु से "कृत्यल्युटो बहुलम्" इस सूत्र से बहुल ग्रहणात् ल्युट् प्रत्यय किया जाता है और "युवोरनाकौ" इस सूत्र से "यु" के स्थान में अनादेश होता है तब "विनयनम्" ऐसा रूप निष्पन्न होता है।

विषण्णः—"वि" उपसर्गपूर्वक गत्यर्थक "सद्" (लृ) धातु के कर्ता में क्त प्रत्यय किया जाता है।

त्रिनयनः—यहाँ समास के पश्चात् "पूर्वपदात्संज्ञायामगः" इस सूत्र से णत्व प्राप्त था परन्तु उक्त शब्द के क्षुभ्नादि गणपठित होने के कारण "क्षुभ्नादिषु च" इस सूत्र से णत्व का निषेध हो जाता है।

उत्खातः—"उद्" उपसर्गपूर्वक "खन्" धातु से क्त प्रत्यय होता है एवं धातु के न् को आत्व हो जाता है।

उपमेयाम्—उपमातुं योग्या इस विग्रह में "उप" उपसर्गपूर्वक "मा" धातु से "अचो यत्" इस सूत्र से यत् प्रत्यय करके "ई द्यति" इस से धातु के अकार को ईकारादेश करके गुण करके टाप् करके "उपमेया' 'निष्पन्न होता है। द्वितीयां-विभक्ति का उक्त रूप है।

अलङ्कारः—यहाँ हिमालय की तुलना नन्दी से एवं मेघ की तुलना कीचड़ से की गयी है अतः यहाँ "उपमा" अलङ्कार है ॥ ५२ ॥

तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसङ्घट्टजन्मा
बाधेतोल्काक्षपित-चमरी-बाल-भारो दवाग्निः।
अर्हस्येनं शमयितुमलं वारि-धारा-सहस्रै-
रापन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् ॥५३॥

अन्वयः—वायो सरति सरलस्कन्धसंघट्टजन्मा उल्काक्षपित-चमरीबालभारः दवाग्निः तम् बाधेत चेत् एनम् वारिधारासहस्रैः अलम् शमयितुम् अर्हसि हि उत्तमानाम् सम्पदः आपन्नार्तिप्रशमनफलाः।

व्याख्या—वायो=पवने, सरति=वाति सति, सरल स्कन्ध-संघट्टजन्मा=देवदारुप्रकाण्डसंघर्षणोद्भवः, उल्काक्षपितचमरीबालभारः=स्फुलिङ्गप्रदग्ध-चमरीकेश-समूहः, दवाग्निः=अरण्यवह्निः, तम्=हिमालयम्, बाधेत=पीडयेत् चेत् (तर्हि) एनम्=वह्निम्, वारिधारासहस्रैः=जलसंपातैः, अलम्=पर्याप्तं यथास्यात्तथा शमयितुम्=निर्वापयितुम्, अर्हसि=योग्योऽसि, हि=यतः, उत्तमानाम्=महताम्, सम्पदः=समृद्धयः, आपन्नार्तिप्रशमनफलाः=पीडितपीडानिवारण हेतुकाः (भवन्ति)।

शब्दार्थः—वायौ=हवा के, सरति=चलने पर- सरलस्कन्ध-संघट्ट-जन्मा=देवदारु की शाखाओं के संघर्षण से उत्पन्न; उल्काक्षपितचमरीबाल-भारः=चिनगारियों से चमरीगायों की पूँछ की बालों को दग्ध कर देने वाली दवाग्निः=वन की आग, तम्=उस हिमालय को, चेत्=यदि, बाधते=पीडित करे, तर्हि=तब, एनम्=इस दवाग्नि को, वारिधारासहस्रैः=जल की असंख्य धाराओं से (मूसलाधार वृष्टि से) अलम्=पर्याप्त रूप से, शमयितुम्=बुझाने के लिए, अर्हसि=तुम योग्य हो अर्थात् तुम बुझा सकते हो। हि=क्योंकि, उत्तमानाम्=बड़ों की, सम्पदः=समृद्धि, आपन्नार्तिप्रशमनफलाः=दुखियों की पीड़ाओं को दूर करने के लिए (भवन्ति=होती हैं)।

भावार्थः—हे मेघ ! वायौ सरति यदि देवदारु-प्रशाखासंघर्षणोत्पन्नः उल्कया चमरीपुच्छ-केशदग्धको दवाग्निः हिमालयं पीडयेत् तर्हि त्वं जलधारसहस्रैः दवाग्निमुपशामयेः। यतो हि महतां समृद्धयः पीडित-पीडानिवारण-हेतुकाः भवन्ति।

हिन्दी—हे मेघ ! हवा के चलने पर यदि देवदारु की शाखाओं की रगड़ से उत्पन्न चिनगारियों से चमरीगाय की पूँछ को झुलसा देनेवाली दवाग्नि हिमालय को पीड़ित करता हो तो तुम अपने जल की सहस्रधाराओं से दवाग्नि को बुझा

सकते हो; क्योंकि बड़ों की समृद्धि पीड़ितों की पीड़ा को दूर करने के लिए होती है।

समास—सरलानां स्कन्धाः=सरलस्कन्धाः (ष० तत्०) तेषां संघट्टनं सरलस्कन्ध-संघट्टनम् (ष० तत्) सरलस्कन्ध-संघट्टनेन जन्म यस्य सरलस्कन्ध-संघट्ट-जन्मा (बहु०) उल्काभिः क्षपिताः=उल्काक्षपिताः (तृ० तत्०) चमरीणां बालभाराः=चमरीबालभाराः (ष० तत्०) उल्काक्षपिताः चमरीबालभाराः येन स उल्काक्षपिताचमरीबालभाराः (बहु०)। वारीणां धाराः वारिधाराः (ष० तत्०) वारिधाराणां सहस्रैः वारिधारासहस्रैः (ष० तत्०)। आपन्नानाम् आर्तिः आपन्नार्तिः (ष० तत्०) तस्याः प्रशमनम्=आपन्नार्तिप्रशमनम् (ष० तत्०) तदेव फलं यासां ता आपन्नार्तिप्रशमनफलाः (बहु०)।

कोशः—अस्त्री प्रकाण्डः स्कन्धः स्यान्मूलाच्छाखावधेस्तरोः, इत्यमरः। उल्का स्यान्निर्गतज्ज्वाला, इत्यमरः। वने च वनवह्नौ च दवो दाव इतीष्यते, इति यादवः। दवो दावो वनवह्निः, इत्यभिधानचिन्तामणिः।

टिप्पणी-वायुः—वातीति वायुः "वा" धातु से औणादिक "कृवापाजि०" इत्यादि सूत्र से यु प्रत्यय करके "वायु" शब्द निष्पन्न किया काता है। **चमरीः**—"चमरी" शब्द "चमरी" गाय का वाचक है। यह एक पशु (गाय) विशेष है जो हिमालय की तराई में अधिक पायी जाती है। इसकी पूँछ में बालों का गुच्छा रहता है जिसका चँवर बनाया जाता है। यह अपने बालों से बहुत स्नेह रखती है। **दवः**—दुनुतीति दवः—इस विग्रह में उपताप (संताप) अर्थ में विद्यमान (टु) दु धातु से पचाद्यच् करके गुणादि करके "दव" ऐसा रूप बनता है। "दाव" शब्द तो उसी धातु से "दुन्योरनुपसर्गे" इस सूत्र से होने वाला ण प्रत्यय करने पर होता है। **बाधेत**—"बाध" धातु के लिङ् लकार के प्रथम पुरुष के एक वचन का यह रूप है। **शमयितुम्**—उपशमनार्थक "शम्" धातु से णिच् प्रत्यय करके पश्चात् "तुमन्" प्रत्यय करके "शमयितुम्" ऐसा रूप निष्पन्न होता है। **सम्पदः**—"सम्" उपसर्गपूर्वक "पद" धातु से क्विप् प्रत्यय भाव में करके उसका सर्वापहारी लोप करके "सम्पत्" शब्द बनता है, उक्त रूप प्रथमा के बहु-

वचन का है। **आपन्नः**—"आङ्" उपसर्गपूर्वक "पद" धातु से कर्त्ता में "क्त" प्रत्यय करके "आपन्न" रूप निष्पन्न होता है। **आर्ति**—"आङ्" उपसर्गपूर्वक गत्यर्थक ऋ धातु से भाव में "क्तिन्" प्रत्यय करके "अर्ति" ऐसा शब्द बनता है।

अलंकारः—यहाँ तृयीया चरण के वाक्यार्थ का समर्थन चतुर्थ चरण के वाक्यार्थ के द्वारा होता है, अतः "अर्थान्तरन्यास" नामक अलंकार है ॥ ५३ ॥

ये संरम्भोत्पतनरभसाः स्वाङ्ग-भङ्गाय तस्मिन्
मुक्ताध्वानं सपदि शरभा लङ्घयेयुर्भवन्तम् ।
तान्कुर्वीथास्तुमुल-करका-वृष्टि-पातावकीर्णान्
के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भ-यत्नाः ॥५४॥

अन्वयः—तस्मिन् संरम्भोत्पतन–रभसाः ये शरभाः मुक्ताध्वानम् भवन्तम् सपदि स्वाङ्ग-भङ्गाय लङ्घयेयुः तान् तुमुलकरकावृष्टि–पाताऽवकीर्णान् कुर्वीथाः निष्फलारम्भ–यत्नाः के वा परिभवपदम् न स्युः।

व्याख्या—तस्मिन्=हिमालये, संरम्भोत्पतन–रभसाः=क्रोधोत्प्लवनवेगशालिनः, ये, शरभाः=अष्टापद-मृगविशेषाः, मुक्ताध्वानम्=परित्यक्तमार्गम्, भवन्तम्=मेघम्, सपदि=सहसा, स्वाङ्गभङ्गाय=निजगात्रत्रोटनाय लंघयेयुः=अतिक्रमणं कुर्युः, तान्=शरभान्, तुमुल–करका–वृष्टि–पाताऽवकीर्णान्=भीषणोपलवर्षणविकीर्णान्, कुर्वीथाः=कुरुष्व, निष्फलारम्भयत्नाः=विफलव्यापार-संलग्नाः, के वा=जन्तवः, परिभवपदम्=तिरस्कार–पात्राः, न स्युः=न भवेयुः, सर्वे भवत्येवेति ध्वनिः।

शब्दार्थः—तस्मिन्=उस हिमालय पर, संरम्भोत्पतन–रभसः=क्रुद्ध होकर उछलने से वेगवाले, ये=जो, शरभाः=आठ पैर वाले मृग (पशु) विशेष, मुक्ताध्वानम्=मार्ग को छोड़े हुए, भवन्तम्=तुमको, (यदि) सपदि=सहसा स्वांगभङ्गाय=अपने ही अंगों के विनाश के लिए, लङ्घयेयुः=अतिक्रमण करें (तो) तान्=उन मृगों को, तुमुलकरका–वृष्टिपातावविकीर्णान्=

ओलों की घोर वृष्टि से तितर-बितर, कुर्वीथाः=कर देना । निष्फलारम्भयत्नाः=व्यर्थ के कामों को करने का प्रयास करने वाले, के वा=कौन जन्तु, परिभव-पदम्=अपमान के पात्र, न स्युः=नहीं होते ।

भावार्थः—हे मेघ ! क्रोधेणोत्पतनत्वात् वेगशीलाः शरभाः त्यक्तमार्गं भवन्तं यदि निजगात्रविक्षताय अतिक्रमणं कुर्युस्तर्हि त्वमपि करकानां तुमुल-वृष्टिभिस्तान् विप्रकीर्णान् कुरुष्व । व्यर्थव्यापारसंलग्नाः के प्राणिनः तिरस्कार-भाजनाः न भवन्ति । अर्थात् सर्वेऽपि भवन्त्येवेतिभावः ।

हिन्दी—हे मेघ ! क्रोध से कूदने के कारण वेगवाले शरभ (जिनकी आठ टाँगें होती हैं) छोड़ दिया है मार्ग को जिसने ऐसे तुम्हारा यदि अपने ही अङ्गों को विनष्ट करने के लिए अतिक्रमण करें तो तुम ओलों की घोर वर्षा से उन्हें तितर-वितर कर देना; क्योंकि व्यर्थ के कामों को करने का प्रयास करने वाले कौन अपमान के पात्र नहीं होते ? अर्थात् सब होते ही हैं ।

समासः—संरम्भेण उत्पतनम्=संरम्भोत्पतनम् (तृ० तत्०) संरम्भोत्पतने रभसः येषान्ते संरम्भोत्पतनरभसाः (बहु०) । मुक्तः अध्वा येन स मुक्ताध्वा (बहु०) तम् । अङ्गानां भङ्गः अङ्गभङ्गः (ष० तत्०) स्वस्य अङ्गभङ्गः स्वाङ्गभङ्गः (ष० तत्०) तस्मै । तुमुलाश्च ताः करकाः=तुमुल—करकाः (कर्मधारय) तासां वृष्टिः तुमुल-करका-वृष्टिः (ष० तत्) तस्याः पातः (ष० तत्) तेन अवकीर्णाः तुमुलकरकावृष्टिपाताऽवकीर्णाः (तृ० तत्०) तान् । आरम्भेषु यत्नः=आरम्भयत्नः (स० तत्०) निष्फल आरम्भयत्नः येषान्ते निष्फलारम्भ-यत्नाः (बहु०) । परिभवस्य पदम् परिभवपदम् (ष० तत्०) ।

कोशः—रभसो हर्षवेगयोः, इति विश्वः । द्राक्झटित्याजसाह्नाय द्राङ्मंक्षु सपदिद्रुते, इत्यमरः, सद्यः सपदि तत्क्षणे इति च । तुमुलं रण-संकुले, इत्यमरः । स्युर्पुनर्वै वेत्यवधारण-वाचकाः, इत्यमरः । वर्षोपलस्तु करको-करकाऽपि च दृश्यते, इत्यमरः, इति रुद्रः ।

टिप्पणी—संरम्भः=संरम्भणं संरम्भः—यहाँ भाव में सम् उपसर्गपूर्वक "रभ्" धातु से घञ् प्रत्यय किया गया है । **शरभाः**—"शरभः शलभे चाऽष्टापदे

प्रोक्तो मृगान्तरे" इति विश्वः। आठ पैर वाले मृग को शरभ कहते हैं आजकल यह नहीं मिलता है। यह मृग सिंह को भी परास्त कर मार डालता है। पुराणों में कथा आती है कि—प्रह्लाद को हिरण्यकशिपु से रक्षा करने के लिए जब भगवान विष्णु ने "नृसिंह"—रूप धारण कर उस दैत्यराज को मार डाला तब भी उनका क्रोध शान्त नहीं हो सका, तब सभी देवताओं की प्रार्थना करने पर शिवजी ने "शरभ" का रूप धारण कर उन्हें परास्त करके उनका क्रोध शान्त किया। **स्वाङ्गभङ्गाय**—यहाँ तादर्थ्ये में चतुर्थी है। **लङ्घयेयुः**—णिजन्त "लंघि" धातु के लिङ् लकार के प्रथम पुरुष के बहुवचन का यह रूप है। **अवकीर्णाः**—"अव" उपसर्गपूर्वक (डु) "कृ" धातु से क्त प्रत्यय करके णत्व करके "अवकीर्ण" ऐसा रूप बनता है। जस् विभक्ति का यह रूप है। **निष्फलः**—फलान्निष्क्रान्तः निष्फलः, यहाँ "निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या" इस वार्तिक से जो "मयूरव्यंसकादयश्च" सूत्र में पठित है, समास हुआ है। **परिभवः**—"परि" उपसर्गपूर्वक "भू" धातु से "अप्" प्रत्यय करके "परिभव" शब्द बनता है। इसका अर्थ तिरस्कार होता है "अनादरः परिभवः परीभावस्तिरस्क्रिया" अमर कोश की यह उक्ति ही प्रमाण है।

अलंकारः—यहाँ तृतीय चरण के वाक्यार्थ का समर्थन चतुर्थ चरण के वाक्यार्थ से होता है अतः अर्थान्तरन्यास नामक अलङ्कार है ॥ ५४ ॥

तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्धेन्दुमौलेः
शश्वत् सिद्धैरुपचित—बलिं भक्तिनम्रः परीयाः।
यस्मिन्दृष्टे करणविगमादूर्ध्वमुद्धूतपापाः
कल्पिष्यन्ते स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः ॥५५॥

अन्वयः—तत्र दृषदि व्यक्तम् शश्वत् सिद्धैः उपचितबलिम् अर्धेन्दुमौलेः चरणन्यासम् भक्तिनम्रः परीयाः यस्मिन् दृष्टे उद्धूतपापाः श्रद्दधानाः करणविगमात् ऊर्ध्वम् स्थिरगणपदप्राप्तये कल्पिष्यन्ते।

व्याख्या—तत्र=हिमालये, दृषदि=प्रस्तरे, व्यक्तम्=स्पष्टम्, शश्वत्=स्थायी, सिद्धैः=गन्धर्वैः, उपचितबलिम्=विरचित-पूजाविधिम्, अर्धेन्दुमौलेः=

इन्दुशेखरस्य, शिवस्येत्यर्थः, चरणन्यासम्=पादचिह्नम्, भक्तिनम्रः=भक्त्या-वनतः, (सन्) परीयाः=प्रदक्षिणां कुर्याः, यस्मिन्=पदन्यासे, दृष्टे=अव-लोकिते, उद्धूतपापाः=मुक्तकिल्बिषाः, (सन्तः) श्रद्दधानाः=भक्ताः, करण-विगमात्=शरीरत्यागात्, ऊर्ध्वम्, अनन्तरम्, स्थिरगणपदप्राप्तये=स्थायिप्रमथ-स्थानलब्धये, संकल्पन्ते=समर्थाः भवन्ति ।

शब्दार्थः—तत्र=उस हिमालय पर, दृषदि=(किसी) पत्थर पर, व्यक्तम्=स्पष्ट, शश्वत्=स्थायी, सिद्धैः=सिद्धों के द्वारा, उपचितबलिम्=जिसकी पूजा की गयी है ऐसे, अर्धेन्दुमौलेः=शिवजी के, चरणन्यासम्=चरणचिह्न को, भक्तिनम्रः=भक्ति से झुक कर, परीयाः=प्रदक्षिणा करना, यस्मिन्=जिस चरणचिह्न के, दृष्टे=दीखने पर, उद्धूतपापाः=निष्पाप होकर, श्रद्दधानाः=भक्तगण, करणविगमात्=शरीर त्यागने के, ऊर्ध्वम्=पश्चात्, स्थिरगणपदप्राप्तये=शिवजी के गणों के स्थायी स्थान की प्राप्ति के लिए, सङ्कल्पन्ते=समर्थ होते हैं ।

भावार्थः—हे मेघ ! तत्र हिमालये कस्मिंश्चित् पाषाणे स्पष्टं स्थायि सिद्धैः रचितपूजाविधि शिवस्य चरणचिह्नं भक्तिविनम्रः सन् प्रदक्षिणां कुर्याः । यस्मिन्नवलोकिते भक्ताः निष्कल्मषाः सन्तः शिव–प्रमथेषु स्थायिस्थानं प्राप्तुं समर्थाः भवन्ति ।

हिन्दी—हे मेघ ! किसी पत्थर पर स्पष्ट, स्थायी तथा सिद्धों ने जिसकी पूजा कर ली है ऐसे शिवजी के चरणचिह्न की प्रदक्षिणा, भक्ति से विनम्र होकर करना । जिस चरणचिह्न के देखने पर भक्तलोग शिवजी के गणों में स्थायी स्थान प्राप्त करने में समर्थ होते हैं ।

समासः—चरणयोः न्यासः चरणन्यासः (ष० तत्०) तम् । उपचितः बलिर्यस्य तम् उपचितबलिम् (बहु०) तस्य । अर्धश्चासौ इन्दुः अर्धेन्दुः (कर्म०) अर्धेन्दुः मौलौ यस्य सः अर्धेन्दुमौलिः (बहु०) तस्य । उद्धूतानि पापानि येषान्ते उद्धूतपापाः (कर्म०) । गणानां पदं गणपदम् (ष० तत्०) स्थिरञ्च

तत् गणपदम्=स्थिरगणपदम् (कर्म०) तस्य प्राप्तिः स्थिरगणपदप्राप्तिः (ष० तत्०) तस्मै ।

कोशः—सिद्धिर्निष्पत्तियोगयोः, इति विश्वः । बलिः पूजोपहारयोः, इति यादवः । अघः खण्डे समेंऽशके, इति विश्वः । करणं साधकतमं क्षेत्रगात्रेन्द्रियेष्वपि, इत्यमरः । गणः प्रमथसंख्यौघाः, इति वैजयन्ती । पापं किल्बिषं कल्मषम् इत्यमरः ।

टिप्पणी—**व्यक्तम्**—"वि" उपसर्गपूर्वक "अञ्जू" धातु से कर्ता में "क्त" प्रत्यय करके "व्यक्त" ऐसा रूप बनता है । **शश्वत्**—यह अव्यय है । **परीयाः**—"परि" उपसर्गपूर्वक गत्यर्थक "इण्" धातु के लिङ् लकार के मध्यमपुरुष के एकवचन का यह रूप है । **न्यासः**—"नि" उपसर्गपूर्वक "अस्" धातु के भाव में "घञ्" प्रत्यय करके "न्यास" ऐसा रूप बनता है । **करणविगमादूर्ध्वम्**–यहाँ "ऊर्ध्वं" शब्द जो दिशावाची है, के आगे रहने के कारण करणविगम शब्द से "अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते" इस सूत्र से पञ्चमी हुई है ॥ ५५ ॥

शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः
संसक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरीभिः ।
निर्ह्लादस्ते मुरज इव चेत्कन्दरेषु ध्वनिः स्यात्
संगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः ॥ ५६ ॥

अन्वयः—अनिलैः पूर्यमाणाः कीचकाः मधुरम् शब्दायन्ते संसक्ताभिः किन्नरीभिः त्रिपुरविजयः गीयते कन्दरेषु ते निर्ह्लादः मुरजे ध्वनिः इव स्यात् तत्र पशुपतेः समयः संगीतार्थः भावी ननु ।

व्याख्या—(हे मेघ !) अनिलैः=पवनैः, पूर्यमाणाः=पूरिताः, कीचकाः=वेणुविशेषा, मधुरम्=श्राव्यम्, शब्दायन्ते=स्वनन्ति, संसक्ताभिः=संयुक्ताभिः किन्नरीभिः=किन्नरकामनीभिः, त्रिपुरविजयः=त्रिपुरासुरवधः, गीयते=स्तूयते, कन्दरेषु=गुहासु, ते=मेघस्य, निर्ह्लादः=निर्घोषः, मुरजे=मृदंगे,

ध्वनिः=शब्दः, इव=यथा, स्यात्=भवेत्, तत्र=चरणन्याससमीपम्, पशुपतेः=शिवस्य, संगीतार्थः=संगीतवस्तु, समग्रः=सम्पूर्णः, भावी=भविष्यति, ननु=खलु।

शब्दार्थः—(हे मेघ !) अनिलैः=पवन के द्वारा, पूर्यमाणाः=जिनके छिद्र भर दिये गये हैं वे, कीचकाः=वेणु विशेष, मधुरम्=कर्णप्रिय, शब्दायन्ते=ध्वनि करते हैं, संसक्ताभिः=(आपस में) मिली हुई, किन्नरीभिः=किन्नर वधूओं के द्वारा, त्रिपुरविजयः=त्रिपुरासुर का वध, गीयते=गाया जाता है, कन्दरेषु=गुफाओं में, ते=तुम्हारा, निर्ह्रादः=निर्घोष, मुरजे=मृदंगपर, ध्वनिः=शब्द की, इव=तरह, स्यात्=(यदि) होगा (तो) तत्र=तब, पशुपतेः=शिवजी का, संगीतार्थः=संगीत वस्तु, समग्रः=सम्पूर्ण, भावी=हो जाएगा, ननु=अवश्य।

भावार्थः—हे मेघ ! वायुपूरिताः कीचकाः कर्णप्रियं शब्दं कुर्वन्ति। संयुक्ताः किन्नरवनिताः शिवस्य त्रिपुरविजयं गायन्ति। गुहासु तव निर्घोषः मृदंगे ध्वनिरिव यदि भवेत् तर्हि शंकरस्य संगीतार्थः सम्पूर्णो भविष्यति।

हिन्दी—(हे मेघ !) वायु से भरे कीचक (वेणु विशेष) कर्णप्रिय शब्द कर रहे हैं, आपस में मिली किन्नरियाँ शिवजी के मयनिर्मित त्रिपुरविजय का गान करती हैं, कन्दराओं में यदि तुम्हारा निर्घोष मृदंग की ध्वनि के समान हो जाए तो शिवजी का संगीत सम्पूर्ण हो जाएगा।

समासः--त्रीणि पुराणि यस्य स त्रिपुरः (बहु०) वा त्रयाणां पुराणां समाहारः त्रिपुरम् (समाहारद्विगुः)। त्रिपुरस्य विजयः=त्रिपुर-विजयः (ष० तत्०) पशूनां पतिः पशुपतिः (ष० तत्०) तस्य, संगीतस्य अर्थः संगीतार्थः (ष० तत्०)।

कोशः—कीचको दैत्यभेदे स्याच्छुष्कवंशे द्रुमान्तरे, इति विश्वः। दरी तु कन्दरो वास्त्री, इत्यमरः। तौर्यत्रिकं तु संगीतं न्यायारम्भे प्रसिद्धके। तूर्याणां त्रितये च, इति शब्दार्णवः। तौर्यत्रिकं नृत्यगीतं वाद्यनाट्यमिदं त्रिषु, इत्यमरः। अर्थोऽभिधेये रैवस्तु प्रयोजननिवृत्तिषु, इत्यमरः।

टिप्पणी–पूर्यमाणाः—णिजन्त "पूरि" धातु से लट्लकार के स्थान पर "शानच्" आदेशकर "पूर्यमाण" ऐसा शब्द बनता है। **मधुरम्**–यह क्रिया विशेषण है। **शब्दायन्ते**–"शब्द" शब्दसे "शब्दं कुर्वन्ति" इस अर्थ में "शब्द-वैरकलहाभ्रकण्वमेघेभ्यः" इस सूत्र से "क्यङ्" प्रत्यय करके लट् लकार के प्रथम पुरुष के बहुवचन (झि) का "शब्दायन्ते" ऐसा रूप होता है। **किन्नरः**–यह एक देवयोनि विशेष है। ये दो प्रकार के होते हैं। एक जाति के किन्नर वे होते हैं जिनके मुँह घोड़े का और अङ्ग मनुष्य की तरह और दूसरे वे होते हैं जिनका मुँह तो मनुष्य की तरह और शेष अङ्ग घोड़े के होते हैं। इनका कण्ठ बड़ा ही सुरीला होता है। ये लोग बहुत अच्छा गाते हैं। **त्रिपुरविजयः**—मय दानव ने लोहे, सोने और चाँदी के तीन पुर (लोक) निर्माण कर और उसमें सुरक्षित रूप से रहकर देवताओं को सताया करता था तब देवताओं की प्रार्थना करने पर शिवजी ने उसको परास्त किया था। **गीयते** – "गै" धातु से कर्म में यक् प्रत्यय करके धातु को आत्व करके उसे पुनः ईकारादेश करके लट् लकार के प्रथम पुरुष के एकवचन में गीयते ऐसा रूप बनता है। **सङ्गीतम्** —सम्यग् गीतम्—सङ्गीतम्–यहाँ "कुगति प्रादयः" से समास हुआ है। **ननु**—यह निश्चयार्थक अव्यय है।

अलंकारः—यहाँ शिवजी के चरण-चिह्न के समीप कीचक शब्द, किन्नरियों का विजय गीत, और मेघध्वनि के क्रम से होने से पर्यायालङ्कार हुआ एवं "मुरज इव" यहाँ श्रौती उपमा है। एवञ्च दोनों के अंगागिभावतया रहने के कारण संकर अलंकार है ॥ ५६ ॥

प्रालेयाद्रेरुप-तटमति-क्रम्य तांस्तान्विशेषान्
हंसद्वारं भृगुपति-यशोवर्त्म यत्क्रौञ्च-रन्ध्रम् ।
तेनोदीचीं दिशमनु-सरेस्तिर्यगायाम-शोभी
श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः ॥५७॥

अन्वयः—प्रालेयाद्रेः उपतटम् तान् तान् विशेषान् अतिक्रम्य हंसद्वारम् भृगुपतियशोवर्त्म यत् क्रौञ्चरन्ध्रम् तेन वलि-नियमनाऽभ्युद्यतस्य विष्णोः श्यामः पाद इव तीर्यगायामशोभी उदीचीम् दिशम् अनुसरेः ।

व्याख्या:—(हे मेघ !) प्रालेयाद्रेः=हिमालयस्य, उपतटम्=तटस्य समीपे, तान् तान्, विशेषान्=प्रसिद्धान्, पदार्थान्, अतिक्रम्य=उल्लङ्घ्य, हंसद्वारम्=चक्राङ्गद्वारम्, भृगुपतियशोवर्त्म=परशुराम-कीर्तिमार्गम्, यत् क्रौञ्चरन्ध्रम्=यत्क्रौञ्चाख्य-विलम्, तेन=विलेन, वलिनियमनाभ्युद्यतस्य=वलिनिबन्धोत्सुकस्य, विष्णोः=वामनस्य, श्यामः=कृष्णः, पादः इव=चरण इव, तिर्यगायाम-शोभी=तिरश्चीनदैर्घ्यशोभी (सन् त्वम्) उदीचीम्=उत्तराम्, दिशम्=आशाम्, अनुसरेः=अनुगच्छ ।

शब्दार्थः—(हे मेघ !) प्रालेयाद्रेः=हिमालय के, उपतटम्=तटों के समीप, तान्-तान् विशेषान्=उन-उन विशेष प्रसिद्ध पदार्थों को, अतिक्रम्य=लांघ-कर, हंसद्वारम्=हंसों का मार्ग, भृमुपतियशोवर्त्म=परशुराम के यश का मार्ग, यत्=जो, क्रौञ्चरन्ध्रम्=पर्वत के क्रौञ्चनामक विवर, तेन=उस विवर से, वलिनियमनाभ्युद्यतस्य=वलि को वश करने में तत्पर, विष्णोः=वामनावतार भगवान् विष्णु के, श्यामः=कृष्ण वर्ण के, पादः=चरण की, इव=तरह तिर्यगायामशोभी=टेढ़ा लम्बा होने के कारण सुन्दर लगने वाले, (तुम) उदीचीम्=उत्तर, दिशम्=दिशा को, अनुसरेः=चले जाना ।

भावार्थः—हे मेघ ! हिमालयतट-निकटे दर्शनीयान् पदार्थान् दृष्ट्वा हंसद्वारेण, परशुराम-यशः-सूचकेन क्रौञ्चाख्यपर्वतविलेन त्वम् वलिनिबन्धन-तत्परस्य वामनस्य वक्रदीर्घश्याम-पाद इव शोभायमानः सन् उत्तरां दिशम् गच्छ ।

हिन्दी—(हे मेघ !) हिमालय पर्वत के किनारे उन प्रसिद्ध पदार्थों को देखकर मानसरोवर जाने वाले हंसों के मार्गभूत, परशुराम की कीर्ति के सूचक "क्रौञ्च" नामक पर्वत के छिद्र से, वलि को वश करने में तत्पर भगवान् वामन के श्याम रंग के पैर के समान टेढ़ा और विस्तृत से शोभायमान तुम उत्तर दिशा को चले जाना ।

समास:—तटानां समीपम् = उपतटम् (अव्ययीभाव:) । हंसानां द्वारम् = हंसद्वारम् (ष० तत्०) । भृगूणां पति: = भृगुपति: (ष० तत्०) भृगुपते: यश: = भृगुपति-यश: (ष० तत्०) भृगुपतियशस: वर्त्म भृगुपति-यशोवर्त्म (ष० तत्०) क्रौञ्चस्य रन्ध्रम् = क्रौञ्चरन्ध्रम् (ष० तत्०) । बले: नियमनम् बलिनियमनम् (ष० तत्) तस्मिन् अभ्युद्यत: = बलिनियमनाभ्युद्युत: (ष० तत्०) तस्य । तिर्यक् चासौ आयाम: तिर्यगायाम: (कर्म०) तेन शोभते तच्छील इति तिर्यगायामशोभी ।

कोश:—प्रालेयं मिहिका चाथ, इत्यमर: । विशेषोऽवयवे द्रव्ये द्रष्टव्योत्तमवस्तुनि, इति शब्दार्णव: । दैर्घ्यमायाम आनाह:, इत्यमर: ।

टिप्पणी—प्रालेयम्—प्रलीयन्ते पदार्था अस्मिन्निति प्रलय:, प्रलयादागतम् प्रालेयम् । "प्र" उपसर्गपूर्वक "आश्लेष" अर्थ में विद्यमान "ली" (ङ) धातु से "एरच्" इस सूत्र से अच् प्रत्यय करके प्रलय ऐसा रूप बनाया जाता है और प्रलयादागत: इस विग्रह में "प्रलय" शब्द से "तत् आगत:" इस सूत्र से अण् प्रत्यय करके आदि वृद्धि करके "केकय—मित्र युप्रलयानां यादेरिय:" इस सूत्र से "य" को "इय" आदेश करके गुणादि करके प्रालेयम्" ऐसा सिद्ध होता है । **हंसद्वारम्**—कवि प्रसिद्धि है कि हंस लोग मानसरोवर इसी क्रौञ्च-पर्वत के छिद्र से जाते हैं अत: "हंस द्वारम्" यह विशेषण दिया गया । भृगोरपत्यानि पुंमास: इस विग्रह में "भृगु" शब्द से अपत्य अर्थ ऋष्यन्धक—वृष्टि-कुरुभ्यश्च" इस सूत्र से अण् प्रत्यय होता है । परन्तु बहुत्व विवक्षा में **भृगुपतियश:**—"अत्रि भृगु-कुत्स वसिष्ठ-गौतमाऽङ्गिरोभ्यश्च" इससे प्रत्यय का लुक् हो जाता है । **नियमनम्**—"नि" उपसर्गपूर्वक "यम्" धातु से भाव में ल्युट् प्रत्यय करके "नियमन" ऐसा रूप निष्पन्न होता है । पुराणों में ऐसी कथा आती है कि परशुरामजी ने कार्तिकेयजी से स्पर्धा करते हुए क्रौञ्च पर्वत में छिद्र कर डाला था । बस इसी कथा के आधार पर उक्त छिद्र परशुरामजी का यशोवर्त्म हो गया ।

अलङ्कारः—"यशोवर्त्म" यहाँ तो रूपक अलंकार है एवं "विष्णोः पाद-इव" यहाँ श्रौती उपमा है एवञ्च दोनों का अङ्गाङ्गिभाव रहने से संकर अलंकार है ॥ ५७ ॥

गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासित-प्रस्थ-सन्धेः
कैलासस्य त्रिदश-वनितादर्पणस्यातिथिः स्याः ।
शृङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं
राशीभूतः प्र तदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ॥५८॥

अन्वयः—ऊर्ध्वं च गत्वा दशमुखभजोच्छ्वासित–प्रस्थ–सन्धेः त्रिदशवनितादर्पणस्य कैलासस्य अतिथिः स्याः । यः कुमुदविशदैः शृङ्गोच्छ्रायैः खं वितत्य प्रतिदिनम् राशीभूतः त्र्यम्बकस्य इव स्थितः ।

व्याख्या—(हे मेघ !) ऊर्ध्वं च=उपरि च, गत्वा=प्राप्य, दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः=रावणबाह्वालिङ्गितसानुसन्धेः, त्रिदशवनितादर्पणस्य=देवललनामुकुरस्य, कैलासस्य=शिवाद्रेः, अतिथिः=आगन्तुकः, स्याः=भवेः । यः=कैलासः, कुमुदविशदैः=श्वेतपद्मधवलैः, शृङ्गोच्छ्रायैः=शिखरोनत्यैः, खम्=नभः, वितत्यः=व्याप्य, प्रतिदिनम्=दिने-दिने, राशीभूतः=पुञ्जीभूतः, त्र्यम्बकस्य=शङ्करस्य, अट्टहास इव=अतिहास इव, स्थितः=विद्यमानो वर्तते इति भावः ।

शब्दार्थः—ऊर्ध्वं च=और ऊपर, गत्वा=जाकर, दशमुखभुजोच्छ्वासित-प्रस्थसन्धेः=रावण की भुजाओं के आलिङ्गन से वियोजित शिखर सन्धि वाले, त्रिदशवनितादर्पणस्य=देवताओं की स्त्रियों के लिए दर्पण के समान; कैलासस्य=कैलास पर्वत का, अतिथिः=आगन्तुक, स्याः=होना । यः=जो कैलास पर्वत; कुमुदविशदैः=कमल के समान श्वेत, शृङ्गोच्छ्रायैः=चोटियों की ऊँचाई से, खम्=आकाश को, वितत्य=व्याप्त कर, प्रतिदिनम्=प्रतिदिन, राशीभूतः=एकत्रित, त्र्यम्बकस्य=शिवजी के, अट्टाहास इव=ठहाका (जोर की हँसी)-सा, स्थितः=स्थित है ।

भावार्थः—(हे मेघ !) क्रौञ्चबिलान्निर्गत्य ऊर्ध्वं च गत्वा, रावणबाहूद्वार-प्रस्थितशृङ्ग सन्धेः देवललनामुकुरभूतस्य कैलासस्य आगन्तुको भवेः। यः कैलासः श्वेतपद्मवदुज्ज्वलैः शृङ्गोच्चैराकाशमभिव्याप्य पुञ्जीभूतः शिवस्य अट्टहास इव वर्तमानोऽस्ति।

हिन्दी—(हे मेघ !) क्रौञ्चबिल से बाहर निकलने के बाद ऊपर जाकर, रावण ने अपनी भुजाओं के आलिंगन से जिसकी चोटियों की सन्धि को ढीला कर दिया और देवाङ्गनाओं के लिए दर्पण के समान है उस कैलास पर्वत का अतिथि बनना। जो कैलास पर्वत कमल के समान अपनी उजली ऊँची चोटियों से आकाश को व्याप्त कर शिवजी के पुञ्जीकृत अट्टहास के समान विद्यमान है।

समासः—दशमुखानि यस्य सः दशमुखः (बहु०), दशमुखस्य भुजाः = दशमुखभुजाः (ष० तत्०) तैः उच्छ्वासिताः दशमुखभुजोच्छ्वासिताः (तृ० तत्०) प्रस्थसन्धयो यस्य सः दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धिः (बहु०) तस्य। तिस्रो दशाः येषान्ते = त्रिदशाः (बहु०) तेषां वनिताः = त्रिदशवनिताः (ष० तत्०) तासां दर्पणः = त्रिदशवनितादर्पणः (ष० तत्०) तस्य। शृङ्गाणाम् उच्छ्रायैः = शृङ्गोच्छ्रायैः (ष० तत्०) कुमुदानीव विशदाः = कुमुदविशदाः (उपमान कर्म०) तैः, दिने-दिने इति = प्रतिदिनम् (अव्ययीभावः)। त्रीणि अम्बकानि यस्य सः = त्र्यम्बकः (बहु०) त्रयाणाम् (लोकानाम्) अम्बकः (पिता) त्र्यम्बकः (ष० तत्०) त्रीन् (वेदान्) अम्बते (उच्चार्यते) इति त्र्यम्बः त्र्यम्ब एव त्र्यम्बकः स्वार्थे कन् (द्वि० तत्०)।

कोशः—अमरा निर्जरादेवास्त्रिदशा विबुधाः सुराः, इत्यमरः। विरूपाक्षस्त्रिलोचनः, इत्यमरः। अट्टावतिशयक्षोभौ, इति यादवः। विशदश्वेतपाण्डुराः, इत्यमरः।

टिप्पणी—**गत्वा**–"गम्" धातु से "क्त्वा" प्रत्यय करके गत्वा बनाया जाता है। **दशमुखभुजोच्छ्वासित०**–वाल्मीकि रामायण में एक कथा आती है कि रावण एक बार बल के मद से मदान्ध होकर कैलास पर्वत को लंका में उठा ले जाने की इच्छा से उसे भुजाओं से उखाड़ने लगा। रावण के इस तरह करने से कैलास पर रहने वाले सभी जीव-जन्तु विकल से होने लगे, अधिक क्या

पार्वतीजी ने भी भयातुर होकर शिवजी का आलिङ्गन किया। इधर सभी को भयभीत देख शिवजी ने रावण के अभिमान को चूर्ण करने के लिए कैलास पर्वत को अपने अँगूठे से नीचे की ओर दबाया। परिणामस्वरूप कैलास तो बैठ ही गया साथ ही रावण भी उसी में कुचला जाने लगा। तब रावण के बहुत प्रार्थना करने पर शिवजी ने उसे बचा लिया। **कैलासः**—केलीनां समूहः = कैलम् "तस्य समूहः" इस सूत्र से अण् प्रत्यय हुआ और कैलेन आस्यते अस्मिन्निति "कैलासः" 'कैल' उपपदक "आस" धातु से "हलश्च" इस सूत्र से अधिकरण में "घञ्" प्रत्यय करके "कैलास" यह रूप निष्पन्न होता है। **अतिथिः**—अविद्यमाना तिथिर्यस्य स अतिथिः—जहाँ "नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वाचोत्तरपदलोपः" इस वार्तिक से नञ् बहुव्रीहि समास हुआ है तब "अतिथि" ऐसा रूप बनता है। **राशीभूतः**—अराशिः राशिः यथा सम्पद्यते इति राशीभूतः "अभूततद्भाव" अर्थ में 'च्वि' प्रत्यय हुआ है। **श्रायाः**—श्रयणानि श्रायाः सेवा अर्थ में विद्यमान 'श्रि' धातु से 'श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे' इस सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय करके 'श्राय' ऐसा रूप बनता है। एवं उद्गताः श्रायाः = उच्छ्रायाः 'कुगतिप्रादयः' इस सूत्र से समास हुआ है।

अलंकारः—प्रस्तुत पद्य में 'कुमुदविशदैः' यहाँ उपमा एवं 'अट्टहास इव' यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है। और दोनों अङ्गाङ्गिभाव रूप से विद्यमान हैं। अतः 'संकर' अलंकार है ॥ ५८ ॥

उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे
सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेद—गौरस्य तस्य।
शोभामद्रेः स्तिमितनयन-प्रेक्षणीयां भवित्री-
मसंन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव ॥५९॥

अन्वयः—स्निग्धभिन्नाऽञ्जनाऽऽभे त्वयि तटगते सद्यःकृत्तद्विरददशनच्छेद-गौरस्य तस्य अद्रेः मेचके वाससि असंन्यस्ते सति हलभृत इव स्तिमितनयन-प्रेक्षणीयाम् शोभाम् भवित्रीम् उत्पश्यामि।

व्याख्या—स्निग्धभिन्नाऽञ्जनाऽऽभे = चिक्कणमर्दित —कज्जलकान्तौ, त्वयि = मेघे, तटगते = सानुगते, (सति) सद्यः = तत्क्षणम्, कृत्तद्विरददशनच्छेद-

गौरस्य = छिन्नहस्तिदन्त—वच्छुभ्रस्य, तस्य = पूर्वोक्तस्य, अद्रेः = पर्वतस्य, कैलासस्येतिभावः। मेचके = श्यामे, वाससि = वस्त्रे, असंन्यस्ते = अपरित्यक्ते, स्कन्धस्थापित इत्यर्थः, हलभृत इव – बलरामस्येव, स्तिमित–नयनप्रेक्षणीयाम् = निश्चलनयनदर्शनीयाम्, भवित्रीम् – भाविनीम्, शोभाम् = श्रियम्, उत्पश्यामि = तर्कयामि।

शब्दार्थः—स्निग्धभिन्नाञ्जनाऽऽभे = पीसे गये चिकने सुरमे के समान कान्ति वाले, त्वयि = तुम्हारे, तटगते = समीप जाने पर, सद्यः-कृत्तद्विरद-दशनच्छेदगौरस्य = तुरन्त काटे गये हाथी के दाँत के समान उजले, तस्य = उस, अद्रेः = पर्वत के (कैलास के), मेचके = काले, वाससि = कपड़े के, असंन्यस्ते = नहीं छोड़ने पर अर्थात् कन्धे पर रखने पर, हलभृतः इव = बलराम के समान; स्तिमितनयनप्रेक्षणीयाम् = निश्चल नयन से देखने योग्य, भवित्रीम् = होने वाली, शोभाम् = सुन्दरता की, उत्पश्यामि = संभावना (मैं) करता हूँ।

भावार्थः—आर्य मेघ! चिक्कणमर्दितकज्जलशोभे त्वयि कैलाससमीपगते सति तत्क्षणकृत्तहस्तिदन्तवच्छुक्लस्य तस्य कैलासपर्वतस्य श्यामवसनन्यस्तस्कन्धस्य बलरामस्य निश्चलनयनदर्शनीयां शोभां तर्कयामि।

हिन्दी—चिकने सुरमे की चमक के समान चमक वाले तुम्हारे समीप जाने पर तुरन्त काटे गये हाथी के दाँत के समान उजले उस कैलास पर्वत की सुन्दरता का कंधे पर रखे काले कपड़े से होने वाली बलराम की निश्चल आँखों से देखने योग्य शोभा के समान मैं संभावना करता हूँ।

समासः—स्निग्धं च तद्भिन्नम् = स्निग्ध–भिन्नम् (कर्म०) स्निग्धभिन्नञ्च तदञ्जनम् = स्निग्धभिन्नाञ्जनम् (कर्म०) तस्येव आभा यस्य स स्निग्धभिन्नाञ्जनाऽभः (बहु०) तस्मिन्। तटंगतः = तटगतः (द्वि तत्०) तस्मिन्। द्वौ रदौ यस्य स द्विरदः (बहु०) द्विरदस्य दशनः = द्विरददशनः (ष० तत्०) सद्यः कृत्तः = सद्यः कृत्तः (सुप्सुपेति समासः) सद्यः कृत्तश्चासौ द्विरददशनः = सद्यः कृत्तद्विरददशनः (कर्म०) तस्याच्छेदः (ष० तत्०) तदिव गौरः = सद्यः कृत्त-द्विरददशनच्छेदगौरः (उपमानकर्मधारयः) तस्य। स्तिमिते च ते नयने = स्तिमितनयने (कर्मधारयः) ताभ्यां प्रेक्षणीयाम् = स्तिमित–नयन–प्रेक्षणीयाम् (तृ० तत्०)।

कोशः—चिक्कणं मसृणं स्निग्धम्, इत्यमरः । सद्यः सपदि तत्क्षणे, इत्यमरः । रदना दशना दन्ताः, इत्यमरः । कृष्णे नीलासितश्यामकालस्यामल-मेचकाः, इत्यमरः । स्कन्धोभुजशिरोंसोऽस्त्री, इत्यमरः ।

टिप्पणी—स्निग्धः—"स्निह" धातु से "क्त" प्रत्यय करके स्निग्ध ऐसा रूप निष्पन्न किया जाता है । स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे यहाँ "सप्तमी विशेषणे बहुव्रीहौ" इस सूत्र के "सप्तमी" पद से ज्ञापित व्यधिकरण बहुव्रीहि समास हुआ है । **कृत्तः**=कृत् धातु से "क्त" प्रत्यय करके "कृत्तः" ऐसा शब्द निष्पन्न होता है । **हलभृतः**=बिभर्तीति "भृत्" भरण अर्थ में विद्यमाने "भृ" (ञ्) धातु से 'क्विप्' प्रत्यय करके "भृत्" ऐसा रूप निष्पन्न होता है । हलं बिभर्ति इति हलभृत् यहाँ "उपपद समास" हुआ है ।

अलङ्कारः—यहाँ कज्जल की तुलना मेघ से और काले वस्त्र से भी मेघ की तुलना की गयी है एवं हिमालय की तुलना बलराम से की गयी है अतः उपमा अलङ्कार है ॥ ५९ ॥

हित्वा तस्मिन् भुजग-वलयं शम्भुना दत्तहस्ता
क्रीडा-शैले यदि च विचरेत्पाद-चारेण गौरी ।
भङ्गी-भक्त्या विरचित-वपुःस्तम्भितान्तर्जलौघः
सोपानत्वं कुरु मणितटा—रोहणायाग्रयायी ॥६०॥

अन्वयः—तस्मिन् क्रीडाशैले शम्भुना भुजग-वलयम् हित्वा दत्तहस्ता गौरी पादचारेण विचरेत् यदि अग्रयायी स्तम्भिताऽन्तर्जलौघः भङ्गीभक्त्या विरचितवपुः मणितटाऽरोहणाय सोपानत्वम् कुरु ।

व्याख्या—तस्मि=पूर्वोक्ते, क्रीडाशैले=केलि-पर्वते कैलास इति यावत् । शम्भुना=शिवेन, भुजगवलयम्=अहिकङ्कणम्, हित्वा=परित्यज्य, दत्तहस्ता=कराऽवलम्बा, (सती) गौरी=पार्वती, पादचारेण=चरणःसंचारेण, विचरेत्=चलेत्, यदि=चेत् (तर्हि) अग्रयायी=अग्रेसरः, स्तम्भितान्तर्जलौघः=अवरुद्धाभ्यन्तरतोयवेगः, भङ्गीभक्त्या=पर्वरचनया, विरचितवपुः=निर्मितशरीरः;

(त्वम्) मणितटाऽऽरोहणाय = रत्न-तटाऽऽरोहणाय, सोपानत्वम् = शृङ्खला-भावम्, कुरु = विधेहि। सोपानरूपस्त्वं भव इति भावः।

शब्दार्थः—तस्मिन् = उस, क्रीडाशैले = केलिपर्वत (कैलास) पर, भुजग-वलयम् = सर्प के कंगन को, हित्वा = छोड़कर, शम्भुना = शिवजी के द्वारा, दत्तहस्ता = हाथ का सहारा दी गयी, गौरी = पार्वती, पादचारेण = पैरों से, विचरेत् = चलें, यदि, तर्हि = तो, अग्रयायी = आगे-आगे चलते हुए, स्तम्भितान्तर्जलौघः = भीतर जल के प्रवाह को रोके हुए, भंगीभक्त्या = पौड़ियों के क्रम से, विरचित-वपुः = शरीर की रचना वाले (तुम)। मणितटारोहणाय = मणि तट पर चढ़ने के लिए, सोपानत्वम् कुरु = सीढ़ी का काम करना।

भावार्थः—हे मेघ! तस्मिन् केलिपर्वते कैलासे (भयापनोदनाय) कङ्कणं परित्यज्य शिवेन प्राप्तकरावलम्बा पार्वती यदि पद्भ्यां विहरेत् तर्हि अग्रेसरः अवरुद्धान्तर्जलसमूहस्त्वं स्वशरीरेण पर्वरचनां कृत्वा मणितटारोहणाय सोपानरूपो भव।

हिन्दी—हे मेघ! उस क्रीड़ा पर्वत (कैलास) पर साँप के कंगन को छोड़कर शिवजी के द्वारा हाथ का सहारा दी गयी पार्वती यदि पैदल चलें तो तुम आगे-आगे चलते हुए, भीतर जल के प्रवाह को रोके हुए, अपने शरीर के द्वारा पौड़ियों की रचना कर मणितट पर चढ़ने के लिए सीढ़ी का काम करना।

समासः—क्रीडायाः शैलः = क्रीडाशैलः (ष० तत्०) तस्मिन्। भुजग एव वलयम् = भुजगवलयम् (कर्मधारयः) दत्तः हस्तो यस्यै सा दत्तहस्ता (बहु०) जलानाम् ओघः = जलौघः (ष० तत्०) अन्तः स्थितः जलौघः = अन्तर्जलौघः (मध्यमपदलोपी) स्तम्भितः अन्तर्जलौघः येन सः स्तम्भितान्तर्जलौघः (बहु०)। विरचितं वपुर्येन सः विरचितवपुः (बहु०) भङ्गीनां भक्ति = भङ्गीभक्तिः (ष० तत्०) तया। मणीनां तटम् = मणितटम् (ष० तत्०) मणितटे आरोहणं मणितटारोहणम् (ष० तत्०) तस्मै।

कोशः—आवापकः परिहार्यः कटकी वलयोऽस्त्रियाम्, इत्यमरः। निकर-व्रातवार-संघात-सञ्चयाः, इत्यमरः। आरोहणं स्यात् सोपानम्, इत्यमरः।

टिप्पणी—क्रीडाशैले—कैलास पर्वत को क्रीडापर्वत कहने में शम्भु-रहस्य का उक्त श्लोक प्रमाण है—

कैलाशः कनकाऽद्रिश्च मन्दरो गन्धमादनः ।
क्रीडाऽर्थं निर्मिताः शम्भोर्देवैः क्रीडाद्रयोऽभवन् ॥

पादचारः—चरणं चारः=गत्यर्थक "चर्" धातु के भाव में "हलश्च" इस सूत्र से घञ् प्रत्यय करके "चार" ऐसा शब्द निष्पन्न होता है । **अग्रयायी**—अग्रे यातीति तच्छीलः इस विग्रह में अग्र उपपदपूर्वक गत्यर्थक "या" धातु से "णिनि' प्रत्यय करके वृद्ध्यादि करके "अग्रयायी" ऐसा रूप बनता है । **भक्तिः**—"भज्" धातु से क्तिन् प्रत्यय करके "भक्ति" ऐसा शब्द बनता है । **विरचितम्**—"वि" उपसर्गपूर्वक "रच्" धातु से कर्म में "क्त" प्रत्यय करके "विरचितम्" ऐसा रूप निष्पन्न होता हैं । **आरोहणम्**—"आङ्" उपसर्गपूर्वक "रुह" धातु से "ल्युट्" प्रत्यय करके "आरोहणम्" ऐसा रूप बनाया जाता है ।

अलङ्कारः—यहाँ भुजग में वलय का आरोप किया गया है अतः "रूपक" अलङ्कार है ॥ ६० ॥

तत्रावश्यं वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं
नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम् ।
ताभ्यो मोक्षस्तव यदि सखे ! घर्मलब्धस्य न स्यात्
क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैः गर्जितैर्भाययेस्ताः ॥६१॥

अन्वयः—तत्र अवश्यम् सुरयुवतयः वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयम् त्वाम् यन्त्रधारागृहत्वम् नेष्यन्ति । हे सखे ! घर्मलब्धस्य तव ताभ्यः मोक्षः न स्यात् क्रीडालोलाः ताः ताः श्रवणपरुषैः भाययेः ।

व्याख्या—(हे मेघ !) तत्र=कैलासे, अवश्यम्=नूनम्, सुरयुवतयः=देवललनाः, वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्ण तोयम्=कङ्कणकोटिताडनोत्सृष्टजलम्, त्वाम्=मेघम्, यन्त्रधारागृहत्वम्=कृत्रिमधारागेहत्वम्, नेष्यन्ति=प्रापयिष्यन्ति । हे सखे !=हे मित्र ! घर्मलब्धस्व=आतपप्राप्तस्य, तव=मेघस्य, ताभ्यः=देवयुवतिभ्यः, मोक्षः=मुक्तिः, न स्यात्=न भवेत् (चेत्) "तर्हि" क्रीडालोलाः=

केलिचपला:, ता:=सुरयुवती:, श्रवणपरुषैः=कर्णकटुभि:, गर्जितैः=स्तनितैः, भाभये:=त्रासये: ।

शब्दार्थः— (हे मेघ !) तत्र=वहाँ कैलास पर, अवश्यम्=निश्चय ही। सुरयुवतय:=देवाङ्गनाएँ, वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयम्=कङ्कणों के अग्रभाग के प्रहार से जल उगलते हुए, त्वाम्=तुमको, यन्त्रधारा-गृहत्वम्=कृत्रिम जलप्रवाह का घर, नेष्यन्ति=बना देगी। हे सखे !=हे मित्र ! घर्मलब्धस्य=गर्मी को प्राप्त, तव=तुम्हे, ताभ्य:=उन देवललनाओं से, मोक्ष:=मुक्ति (छुटकारा), न स्यात्=न मिले (यदि) तो तुम, क्रीडालोला:=खेल में लगी चञ्चल, ता:=उन देवप्रियाओं को, श्रवणपरुषैः=कर्णकठोर, गर्जितैः गर्जनों से, भायये:=डराना।

भावार्थः—हे मेघ ! कैलासे सुरयुवतय: कङ्कणप्रहारैरुत्सृष्टजलं त्वां कृत्रिमजलधारागृहत्वं नूनं विधास्यन्ति। हे सखे ! यदि ते ताभ्यो देवललनाभ्यो मुक्तिर्न स्यात् तर्हि त्वं कर्णकठोरैर्गर्जनैस्ता: त्रासये: ।

हिन्दी—हे मेघ ! उस कैलास पर्वत पर देवाङ्गनाएँ निश्चित ही तुम्हें अपने कङ्कणों के अग्रभाग के प्रहार से जलवर्षण के लिए विवश करती हुई कृत्रिम जलधारा का साधन बना देगी। हे सखे, इस प्रकार आतप प्राप्त तुम्हें यदि उन देवललनाओं से मुक्ति न मिले तो तुम क्रीड़ासक्त चञ्चल उन देवललनाओं को अपने श्रवणकठोर गर्जनों से भयभीत करना।

समासः– वलयानां कुलिशानि=वलयकुलिशानि (ष० तत्०) उद्गीर्णं तोयं येन स: उद्गीर्णतोय: (बहु०) वलय-कुलिशैः उद्घट्टनानि=वलयकुलिशोद्घट्टनानि (तृ० तत्०) वलयकुलिशोद्घट्टनैः उद्गीर्णतोय: वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोय: । सुराणां युवतय:=सुरयुवतय: (ष० तत्०)। यन्त्रेषु धारा: =यन्त्रधारा: (स० तत्) यन्त्रधाराणां गृहत्वम्=यन्त्रधारागृहत्म् (ष० तत्)। घर्मे लब्ध:=घर्मलब्ध: (स० तत्) तस्य। क्रीडायां लोला: क्रीडालोला: (स० तत्०) श्रवणयो: परुषाणि=श्रवणपरुषाणि (स० तत्०) तैः।

कोशः—कटको वलयोऽस्त्रियाम्, इत्यमर:। चलनं कम्पनं कम्पं चलं लोलं चलाचलम्, इत्यमर:। अथ मित्रं सखा सुहृत्, इत्यमर:। निष्ठुरं परुषम्, इत्यमर: ।

टिप्पणी—तत्र-तस्मिन्निति "तत्र" यह अव्यय है। 'तद्' शब्द से "सप्तम्यास्त्रल्", इस सूत्र से त्रल् प्रत्यय किया जाता है। **उद्घट्टनम्**-उद्घट्ट एव उद्घट्टनम्, यहाँ 'उद्' उपसर्गपूर्वक 'घट्ट' धातु से भाव में ल्युट् करके अनादेश आदि करके 'उद्घट्टनम्' यह रूप बना है। **उद्गीर्णः**—'उद्' उपसर्गपूर्वक निगरणार्थ 'गॄ' धातु से 'क्त' प्रत्यय करके णत्वादि करके 'उद्गीर्णः' ऐसा रूप निष्पन्न होता है। **नेष्यन्ति**—यह प्रापणार्थक (णि) नि धातु के लृट् लकार के बहुवचन का रूप है। **भाययेः**—भयार्थक णिजन्त 'भायि' धातु के लिङ् लकार के मध्यमपुरुष के एकवचन का यह रूप है। यहाँ "भीस्मयोर्हेतुभये" इस सूत्र से आत्मनेपद हुआ है या 'नुघुक्' आगम ही। यहाँ भय का कारण (हेतु) मेघ नहीं अपितु 'गर्जित' है ॥ ६१ ॥

हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददानः
कुर्वन्कामं क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य ।
धुन्वन्कल्पद्रुम—किसलयान्यंशुकानीव वातै—
र्नानाचेष्टैर्जलद ! ललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम् ॥ ६२ ॥

अन्वयः—हे जलद ! हेमाम्भोज-प्रसवि मानसस्य सलिलम् आददानः ऐरावतस्य क्षणमुखपटप्रीतिम् कुर्वन् अंशुकानि इव कल्पद्रुमकिसलयानि वातैः धुन्वन् नानाचेष्टैः ललितैः तम् नगेन्द्रम् कामम् निर्विशेः।

व्याख्या—हे जलद !–हे मेघ ! हेमाम्भोजप्रसवि=स्वर्णपद्मोत्पादकम्, मानसस्य=मानससरोवरस्य, सलिलम्=तोयम्, आददानः=गृह्णन् पिबन् इति भावः, ऐरावतस्य=एतन्नामक इन्द्रगजस्य, क्षणमुखपटप्रीतिम्=मुहूर्त्तवदनवस्त्रानन्दम्, कुर्वन्=विदधत्, अंशुकानि इव=मसृणवस्त्राणीव, कल्पद्रुमकिसलयानि=कल्पवृक्षपल्लवानि, वातैः=पवनैः, धुन्वन्=कम्पयन्, नानाचेष्टैः=अनेकक्रीडितैः, ललितैः=विलासैः, तम्=पूर्वोक्तम्, नगेन्द्रम्=पर्वतराजम् कैलासमित्यर्थः, कामम्=पर्याप्तम्, निर्विशेः=उपभुङ्क्ष्व ।

शब्दार्थः—हे जलद ! हे मेघ ! हेमाम्भोजप्रसवि=स्वर्णकमलों का उत्पादक, मानसस्य=मानसरोवर के, सलिलम्=जल को, आददानः=ग्रहण करते

हुए, ऐरावतस्य=ऐरावत नामक इन्द्र के हाथी को, क्षणमुखपटप्रीतिम्=कुछ समय के लिए मुँह ढकने वाले वस्त्र का आनन्द, कुर्वन्=देते हुए, अंशुकानीव=महीन (चिकने) वस्त्र की तरह, कल्पद्रुमकिसलयानि=कल्पवृक्ष के पल्लवों को, वातैः=वायु से, धुन्वन्=कँपाते हुए, नाना-चेष्टैः=अनेक प्रकार की चेष्टाओं से युक्त, ललितैः=विलासों से, तम्=उस, नगेन्द्रम्=पर्वतराज कैलास का, निर्विशेः=आनन्द लेना ।

भावार्थः—हे मेघ ! स्वर्णपद्मोत्पत्तिस्थानभूतं मानससरोवरजलं पिबन्, किञ्चिन्ममुहूर्तं यावत् इन्द्रहस्तिनः ऐरावतस्याननावगुण्ठनानन्दं प्रयच्छन् मसृण-वस्त्राणीव कल्पद्रुमपल्लवानि पवनैः कम्पयन् अनेक–प्रकारैः क्रीडितैः कैलासं यथेष्टमुपभुङ्क्ष्व ।

हिन्दी—हे मेघ ! स्वर्ण-कमलों को उत्पन्न करने वाले मानसरोवर के जल को पीते हुए, ऐरावत हाथी को मुँह के घूँघट का आनन्द देते हुए, पतले वस्त्रों के समान कल्पवृक्ष के पत्तों को हवा से हिलाते हुए तुम अनेक प्रकार की चेष्टाओं से युक्त क्रीड़ाओं से उस कैलास पर्वत का पर्याप्त उपभोग करना ॥ ६२ ॥

समासः—हेम्नः अम्भोजानि (ष० तत्०) हेमाम्भोजानां प्रसवि यत् तत्=हेमाम्भोजप्रसवि (ष० तत्०) । कल्पद्रुमाणां किसलयानि=कल्पद्रुम-किसलयानि (ष० तत्०) । नाना चेष्टा येषां येषु वा तैः, नानाचेष्टैः (बहु०) ।

कोशः—अंशुके वस्त्रमात्रे स्यात्परिधानोत्तरीययोः, इति शब्दार्णवः । ना भावभेदे स्त्रीनृत्ये ललितं त्रिषु सुन्दरे, अस्त्रियां प्रमदागारे क्रीडिते जातिपल्लवे, इति शब्दार्णवः । निर्वेशो भृतिभोगयोः, इत्यमरः । निर्वेश उपभोगः, इत्यमरः ।

टिप्पणी—**जलदः**–जलं ददाति इस विग्रह में "जल" उपपदपूर्वक दानार्थ "दा" धातु से "आतोऽनुपसर्गे कः" इस सूत्र से क प्रत्यय करके "जलद" ऐसा रूप निष्पन्न होता है । **हेमाम्भोजः**–अम्भसि जातानीति अम्भोजानि, यहाँ "अम्भस्" उपपदपूर्वक प्रादुर्भावार्थक 'जन्' धातु से "सप्तम्यां जनेर्डः" इस सूत्र से 'ड' प्रत्यय करके "डित्त्वसामर्थ्यादमस्यापि टेर्लोपः" इस वचन के

आधार पर धातु के "अन्" का लोप होकर "अम्भोज" ऐसा रूप बनता है। हेम्नः अम्भोजानि—हेमाम्भोजानि। **प्रसवि**–"प्र" उपसर्गपूर्वक प्रसवार्थक (षू०) "सू" धातु से "जिदृक्षि विश्रीण्वमाव्यथाम्यभपरिभूप्रसूभ्यश्च" इस सूत्र से "इनि" प्रत्यय करके गुणादि करके "प्रसवि" ऐसा रूप निष्पन्न होता है। **आददान**–"आङ्" उपसर्गपूर्वक दा धातु से लट् लकार के स्थान पर "शानच्" प्रत्यय का विधान कर "आददान" ऐसा रूप बनता है। **धुन्वन्**—कम्पनार्थक "धु" धातु से लट् के स्थान पर "शतृ" आदेश करके **"धुन्वन्"** ऐसा रूप बनता है। **निर्विशेः**–"निर्" उपसर्गपूर्वक "विश्" धातु के विधिलिङ् के मध्यमपुरुष के एकवचन का यह रूप है।

अलङ्कारः—"अंशुकानीव' यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है॥ ६२॥

तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगंगादुकूलां
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन्।
याबः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम्॥ ६३॥

अन्वयः—हे कामचारिन् प्रणयिन इव तस्य उत्सङ्गे स्रस्त-गंगादुकूलाम् अलकाम् दृष्ट्वा त्वं पुनः न ज्ञास्यसे न। उच्चैर्विमाना या वः काले सलिलोद्गारम् अभ्रवृन्दम् कामिनी मुक्ताजालग्रथितम् अलकमिव वहति।

व्याख्या—हे कामचारिन्=हे स्वेच्छाचारिन्! प्रणयिनः=प्रियतमस्य, इव=यथा, तस्य=कैलासस्य, उत्सङ्गे=क्रोडे, स्रस्तगङ्गादुकूलाम्=च्युतजाह्नवीवस्त्राम्, अलकाम्=कुबेरनगरीम्, प्रियामिवेति शेषः। दृष्ट्वा=विलोक्य, त्वं=मेघः, पुनः=भूयः, न=नहि, ज्ञास्यसे=परिचेष्यसे (इति) तु न=नहि, अर्थात् अवश्यं ज्ञास्यसे इति ध्वनिः। उच्चैर्विमाना=उन्नतसप्तभूमिभवनवती, या=अलका, वः=युष्माकम्, काले=समये वर्षतौ इत्यर्थः।

सलिलोद्गारम्=जलोत्सर्जनम्, अभ्रवृन्दम्=मेघनिचयम्, कामिनी=वनिता, मुक्ताजालग्रथितम्=मौक्तिक-प्रचुरैर्गुम्फितम्, अलकमिव=केशपाशमिव, वहति= धारयति।

शब्दार्थः—हे कामचारिन्=हे स्वच्छन्दचारी, प्रणयिन इव=प्रियतम की तरह, तस्य=उस (कैलास) की, उत्संगे=गोद में, स्रस्तगङ्गादुकूलाम्= खिसक गयी है गंगारूपी साड़ी जिसकी, ऐसी, अलकाम्=पुरी (रूपी कामिनी को) को, दृष्ट्वा=देखकर, त्वम्=तुम, पुनः=फिर, न=नहीं, ज्ञास्यसे= पहचानोगे (इति=ऐसा) नहीं, अर्थात् अवश्य पहचानोगे। उच्चैर्विमानाः= ऊँचे-ऊँचे सात-सात मंजिलों के भवन वाली, या=जो अलका, वः=तुम्हारे, काले=समय में, अर्थात् वर्षा के समय में, ललिलोद्गारम्=जल (के प्रवाह को छोड़नेवाले, अभ्रवृन्दम्=मेघ के समूह को, कामिनी=स्त्री, मुक्ताजाल-ग्रथितम्=मोतियों की लड़ियाँ जिसमें गुँथी हुई हैं ऐसे, अलकामिव=केश के समान, वहति–धारण करती है।

भावार्थः—हे स्वेच्छाचारिन्! प्रणयिनः इव कैलासस्योत्सङ्गे च्युतगंगा-वस्त्राम् अलकां प्रियतमस्याङ्के अवस्रस्तक्षौमा प्रेयसीमिव विलोक्य अवश्यं परि-चेष्यसे। या सप्तोन्नतभवना अलका वर्षासमये जलवर्षके मेघसमूहं क्रोध-रहिता रमणी मुक्तासमूहानुस्यूतं केशपाशमिव धारयति।

हिन्दी—हे स्वच्छन्द भ्रमणशील! प्रियतम के समान कैलास की गोद में खिसक गया है गंगारूपी वस्त्र जिसका ऐसी अलका को प्रियतम की गोद में खिसक गयी है साड़ी जिसकी ऐसी कामिनी की तरह देखकर अवश्य पहचान जाओगे। जो अलका वर्षा के समय जल बरसाने वाले मेघ-समूह को वैसे ही धारण करती है जैसे क्रोध-रहित कोई कामिनी मोतियों की लड़ियों से गुंथे केश-पाश को धारण करती है।

समासः—अलकापक्षे–गङ्गा दुकूलमिव–इति गङ्गादुकूलम् ("उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे")। कामिनी पक्षे–गङ्गा इव दुकूलम् (उपमानानि सामान्यवचनैः) स्रस्तं गङ्गादुकूलं यस्याः सा=स्रस्तगङ्गादुकूला (बहु०) ताम्। उच्चैः विमानानि यस्याः सा उच्चैर्विमाना (बहु०) इत्यलकापक्षे।

कामिनीपक्षे तु विगतः मानो यस्याः सा विमाना (बहु०) अतिशयेन **विमाना** उच्चैर्विमाना (कुगतिप्रादयः)। अभ्राणां वृन्दम् = अभ्रवृन्दम् (ष० तत्०)। मुक्तानां जालम्=मुक्ताजालम् (ष० तत्०) सलिलम् उद्गिरतीति सलिलोद्‌गारः (उपपद०) तम्।

कोश:—उत्सङ्गो मुक्तसंयोगे सक्थन्यूर्ध्वतलेऽपि च, इति मालतीमालायाम्। दुकूलं सूक्ष्मवस्त्रे स्यादुत्तरीये सितांशुके, इति शब्दार्णवः। विमानोऽस्त्री देवयाने सप्तभूमौ च सद्मनि, इति यादवः। पुंश्चल्यां मौक्तिके मुक्ता, इति यादवः। अलकाश्चूर्णकुन्तला, इत्यमरः।

टिप्पणी—**कामचारिन्**—"काम" उपपदपूर्वक "चर्" धातु से ताच्छील्य अर्थ में "णिनि" प्रत्यय करके कामचारिन् ऐसा रूप निष्पन्न होता है। यह सम्बोधन का रूप है। **प्रणयिनः**—"प्रणय" शब्द से 'अतइनिठनौ' इस सूत्र से "इनि" प्रत्यय करके "प्रणयिन" शब्द बनता है। यह रूप षष्ठी विभक्ति का है। **उत्संगः**—"उद्" उपसर्गपूर्वक "सञ्ज्" धातु से "हलश्च" इस सूत्र से घञ् प्रत्यय करके "उत्सङ्गः" ऐसा रूप होता है। **न ज्ञास्यसे न**—यहाँ दो नञ् का प्रयोग है जो दृढ़ता का बोधक होता है 'द्वौ नञौ प्रकृत्यर्थं गमयतः' इस वचन से। **ग्रथितः**—'ग्रंथ' धातु से 'क्त' प्रत्यय करके ग्रथित ऐसा रूप बनता है। **वहति**—प्रापणार्थक 'वह' धातु के लट् लकार के प्रथमपुरुष के एकवचन का यह रूप है।

अलंकारः—प्रस्तुत पद्य में कैलास में प्रणयी का साम्य तथा अलका में प्रणयिनी का साम्य गम्य है अतः एकदेश-विवर्तनी 'उपमा' अलंकार है। एवञ्च दोनों निरपेक्ष भाव से हैं अतः 'संसृष्टि' अलंकार है।

एक ही नायिका में आसक्त प्रणयी नायक को 'अनुकूल' एवं प्रियतम से उपलालित नायिका को स्वाधीनपतिका कहते हैं। प्रकृत में "कैलास" अनुकूल नायक है एवं 'अलका' स्वाधीन-पतिका नायिका ध्वनित है ॥ ६३ ॥

॥ इति शिवो वः शिवं तनोतु ॥

इति पूर्वमेघः



उत्तरमेघः

उत्तरमेघः

विद्युत्वन्तं ललित-वनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः
संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीर-घोषम् ।
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ।। १ ।।

अन्वयः—यत्र ललितवनिताः सचित्राः संगीताय प्रहतमुरजाः मणिमय-भुवः अभ्रंलिहाग्राः प्रासादाः विद्युत्वन्तम् सेन्द्रचापम् स्निग्धगम्भीरघोषम् अन्त-स्तोयम् तुङ्गम् त्वाम् तैः तैः विशेषैः तुलयितुम् अलम् ।

व्याख्या—पूर्वमेघे यक्षः अलकापरिचयं दत्वेदानीं स्वभवनाऽभिज्ञानं ददाति—यत्र=अलकायाम्, ललित-वनिताः=रमणीयललनाः, सचित्राः=आलेख्यसहिताः, संगीताय=नृत्यगीतवादित्राय, प्रहतमुरजाः=प्रताडितमृदङ्गाः, मणिमयभुवः=रत्ननिर्मितभूप्रदेशाः, अभ्रंलिहाग्राः=अभ्रङ्कशाग्राः, अत्युच्छ्रिता इति भावाः, प्रासादाः=देवालयाः, विद्युत्वन्तम्=सचपलम्, सेन्द्रचापम्=इन्द्रधनुःसहितम्, तुङ्गम्=उन्नतम्, त्वाम्=मेघम्, तैः तैः=पूर्वोक्तप्रकारैः, विशेषैः=ललितवनितादिभिः, तुलयितुम्=समानताङ्कर्तुम्, अलम्=पर्याप्ताः ।

शब्दार्थः—पूर्वमेघ में यक्ष अलकापुरी का परिचय देकर अब यहाँ अपने भवन का परिचय देने की भूमिका प्रस्तुत करता है—यत्र=जिस अलकापुरी में ललितवनिताः=सुन्दरस्त्रियाँ, सचित्राः=चित्रशालाएँ, संगीताय प्रहतमुरजाः=संगीत के लिए बजाये गये मृदङ्ग, मणिमयभुवः=रत्न से निर्मित पृथ्वी (फर्श), अभ्रंलिहाग्राः=गगनचुम्बी, प्रासादाः=देवालय, विद्युत्वन्तम्=बिजली से युक्त; सेन्द्रचापम्=इन्द्रधनुष से युक्त, स्निग्धगम्भीरघोषम्=मधुर एवं गम्भीर गर्जनों से युक्त, अन्तस्तोयम्=अन्दर जल से पूर्ण, तुङ्गम्=ऊँचे, त्वाम्=तुम्हारी, तैस्तैः=पूर्वोक्त प्रकारों से, विशेषैः=सुन्दरस्त्रियादि धर्मों से, तुल-यितुम्=समानता करने में, अलम्=समर्थ हैं ।

भावार्थः—हे मेघ ! यस्यामलकायां रमणीयललनाः चित्रशालाः, तोर्यत्रिकाय प्रताडितमृदङ्गाः मणिखचित-भूमयः अभ्रङ्कषाः देवालयाः एभिर्धर्मैः तडित्वन्तं इन्द्रधनुषायुक्तम्, मधुरगभीरस्तनितमुच्छ्रितं त्वां यथाक्रमं समीकर्तुं पर्याप्ताः (समर्थाः) सन्ति ॥ १ ॥

हिन्दी—हे मेघ ! जिस अलका में, रमणीय स्त्रियाँ, चित्रशालाएँ नृत्य-गीतादि के लिए बजाए गये मृदङ्ग, मणिखचित फर्श, गगनचुम्बी देवालय अपने इन ललित वनितत्वादिधर्म से क्रमपूर्वक बिजली से युक्त, इन्द्रधनुष से युक्त, कर्णप्रिय गम्भीर गर्जन वाले, ऊँचे, तुम्हारी तुलना करने में पूर्ण समर्थ हैं।

समासः—ललिता वनिता येषु ते ललितवनिताः (बहु०)। चित्रैः सहिताः सचित्राः (तुल्ययोगबहु०)। प्रहता मुरजाः येषु ते प्रहतमुरजाः (बहु०)। अभ्रंलिहानि अग्राणि येषान्ते अभ्रंलिहाग्राः (बहु०)। इन्द्रस्य चाप इन्द्रचापः। (ष० तत्०), इन्द्रचापेन सहितः सेन्द्रचापः (तृ० बहु०) तम्, स्निग्धो गम्भीरो घोषो यस्य स स्निग्धगम्भीर-घोषः (बहु०) तम्। अन्तर्गतं तोयं यस्य स अन्तर्गत-तोयः (बहु०) तम्।

कोशः—वनिता महिला तथा, इत्यमरः। आलेख्याश्चर्ययोश्चित्रम्, इत्यमरः मुरजा तु मृदङ्गे स्याद् ढक्कामुरजयोरपि, इति शब्दार्णवः। प्रासादो देव-भूभुजाम् इत्यमरः। अलंभूषण-पर्याप्ति-शक्ति-वारणवाचकम्, इत्यमरः। नृत्यं वाद्यं तथा गीतं त्रय संगीतमुच्यते, इति संगीतरत्नाकरः।

टिप्पणी—सचित्राः—यहाँ चित्रैः सहिताः इस विग्रह में "तेन सहेति तुल्ययोगे" इस सूत्र से (तुल्ययोग) बहुव्रीहि समास हुआ है एवं "वोपसर्जनस्य" इस सूत्र से विकल्प के "सह" के स्थान पर "स" भाव हुआ है। समभ्याभाव पक्ष में "सहचित्राः" ऐसा भी प्रयोग होता है। संगीताय—"सम्" उपसर्ग-पूर्वक शब्दार्थक "गै" धातु से भाव में "क्त" प्रत्यय करके "संगीतम्" ऐसा शब्द बनता है। यह रूप चतुर्थी विभक्ति का है, यहाँ तादर्थ्य में "तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या" इस वार्तिक के नियमानुरोध से चतुर्थी हुई है। प्रहताः—"प्र" उपसर्ग-पूर्वक "हन्" धातु से कर्म में "क्त" प्रत्यय करके "प्रहत" ऐसा रूप निष्पन्न

होता है। मणिमयभुवः—यहाँ "मणीनां विकारः" इस विग्रह से "मणि" शब्द से विकार अर्थ में "तस्य विकारः" इस सूत्र से "मयट्" प्रत्यय हुआ है एवं स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् करके बहुवचन में "मणिमय्यः" ऐसा रूप बनता है। मणिमय्यः भुवः येषु ते मणिमयभुवः (बहु०)। यहाँ पूर्व पद को पुंवद्भाव हो गया है। अभ्रंलिहः—"अभ्र" उपपदक "लिह्" धातु से "वहाभ्रेलिहः" इस सूत्र से "खश्" प्रत्यय हुआ है एवं "अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्" इस सूत्र से "अभ्र" को "मुम्" हुआ है। तुलयितुम्—णिजन्त "तुलि" धातु से तुमुन् प्रत्यय करके "तुलयितुम्" ऐसा रूप निष्पन्न होता है।

अलंकारः—यहाँ विद्युत्वन्तम् आदि उपमानों के क्रम से ललितवनिता आदि उपमेय कहे गये हैं अतः यथासंख्य एवं आर्थी उपमा अलङ्कार है और दोनों का अंगांगिभाव होने से "सङ्कर" अलंकार हो गया ॥ १ ॥

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः।
चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥ २ ॥

अन्वयः—यत्र, वधूनाम्, हस्ते, लीलाकमलम्, अलके, बालकुन्दाऽनुविद्धम्, आनने, लोध्रप्रसवरजसा, पाण्डुतां, नीता, श्रीः, चूडापाशे, नवकुरबकम्, कर्णे, चारु, शिरीषम्, सीमन्ते च, त्वदुपगमजम्, नीपम् ॥ २ ॥

व्याख्या—हे मेघ ! यत्र = अलकायाम्, वधूनाम् = वनितानाम्, हस्ते = करे, लीलाकमलम् = क्रीडापद्मम्, शरदर्तुभवमिति भावः। अलके = चूर्ण-कुन्तले, बालकुन्दानुविद्धम् = नूतनमाध्य-पुष्प-गुम्फनम्, हेमन्ततुं भवं पुष्पविशेषम्, आनने = मुखे, लोध्रप्रसवरजसा = शिशिरर्तुभवलोध्र-पुष्प-परागेण, पाण्डुताम् = श्वेतताम्, गौरवर्णतामिति भावः, नीता = प्रापिता, श्रीः = शोभा, चूडापाशे = केशजालके, नवकुरबकम् = नूतनकुरबकम् वसन्तर्तुभवं पुष्पविशेषम्, कर्णे = श्रोत्रे, चारु = मनोज्ञम्, शिरीषम् = ग्रीष्मर्तूत्पन्नपुष्पविशेषम्, सीमन्ते = केशवेशे च

त्वदुपगमजम् = मेघागमनजन्यम्, वर्षर्तुभवमिति भावः, नीपम् = कदम्बम् अस्तीति शेषः ॥ २ ॥

शब्दार्थः—हे मेघ ! यत्र=जिस अलका में, वधूनाम् = स्त्रियों के, करे= हाथ में, लीला-कमलम् = क्रीडाकमल (है), अलके=घुंघराले बालों में, बाल-कुन्दानुविद्धम् = नवीनकुन्द के फूलों का गुम्फन (है), आनने = मुँह में, लोध्र-प्रसवरजसा = लोध्रपुष्प के पराग से, पाण्डुतां = गौरवर्णता को, नीताः = प्राप्त, श्रीः = शोभा (है), चूडापाशे = वेणियों में, नव-कुरबकम् = कुरबक के फूल हैं, कर्णे = कान में, चारु=सुन्दर, शिरीषम् = शिरीष (मौलश्री) फूल हैं, सीमन्ते= माँग में, त्वदुपगमजम् = तुम्हारे आने पर अर्थात् वर्षाॠतु आने पर उत्पन्न, नीपम् = कदम्ब पुष्प है।

भावार्थः—हे मेघ ! यत्रालकायां स्त्रीणामङ्गेषु सर्वेषु ॠतुषु जायमानानि पुष्पाणि सर्वदेव विराजन्ते। यथा करे शरदर्तुभवं पद्मम्, चूर्णकुन्तले हेमन्त-र्तुभवं नवकुन्दानुविद्धम्, आनने शिशिर-सूचिका-लोध्रपुष्पपरागेण श्वेततां नीता शोभा, चूडापाशे वसन्तर्तुभवं नवकुरबकपुष्पम्, कर्णे सुन्दरं ग्रैष्मं शिरीष-पुष्पं, सीमन्ते च वर्षर्तुभवं कदम्बपुष्पं विराजते ॥ २ ॥

हिन्दी—हे मेघ ! जिस अलका में छहों ॠतुओं में होने वाले फूल सर्वदा स्त्रियों के अङ्गों में लगे रहते हैं। जैसे स्त्रियों के हाथ में शरदॠतु में होने वाला कमल है, घुंघराले बालों में हेमन्त ॠतु में होने वाले नवीन कुन्दों का गुम्फन है, मुँह पर शिशिरॠतु में होने वाले 'लोध्र' पुष्प के पराग से गौर-वर्णता को प्राप्त शोभा है, केश की गूँथी चोटी में वसन्तॠतु में होने वाले नये कुरबक के फल हैं, कान में ग्रीष्म ॠतु में होने वाले सुन्दर शिरीष के फूल हैं और माँग में वर्षा ॠतु में होने वाले कदम्ब के पुष्प हैं ॥ २ ॥

समासः—लीलायै कमलम्=लीलाकमलम् (चतु० तत्०), बालानि तानि कुन्दानि बालकुन्दानि (कर्म०) बालकुन्दानाम् अनुविद्धम्=बालकुन्दानु-विद्धम् (ष० तत्०) लोध्रस्य प्रसवाः=लोध्र-प्रसवाः (ष० तत्०) लोध्र-प्रसवानां रजः=लोध्रप्रसवरजः (ष० तत्०) तेन। नवञ्च तत् कुरबकम्

नवकुरबकम् (कर्म०)। चूडानां पाशः = चूडापाशः (ष० तत्०) तस्मिन्। सीम्नः अन्तः सीमन्त, (ष० तत्०) तस्मिन्। तव उपगमः = त्वदुपगमः (ष० तत्०)।

कोशः—वधूर्जायास्नुषास्त्री च, इत्यमरः। सीमान्तम-स्त्रियां मस्तकेशवीथ्यामुदाहृतम्, इति शब्दार्णवः। वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम् इत्यमरः। परागः सुमनोरजः, इत्यमरः।

टिप्पणी—अलकम् = यहाँ सप्तमी विभक्ति के नहीं होने से भग्नप्रक्रम दोष है। शीघ्रप्रसवरजसा पाण्डुता—जिस तरह आजकल की वधुएँ मुँह पर शोभा लाने के लिए "पाउडर" आदि का उपयोग करती हैं उसी तरह यक्ष के समय में भी स्त्रियाँ लोध्र-पुष्प के पराग का उपयोग करती थीं। लोध्र-पुष्प रक्त वर्ण का होता है और उसका पराग गौर वर्ण का होता है, अतः उसका उपयोग किया जाता रहा होगा। यहाँ "श्री" के प्रधान कर्म होने से कर्मवाच्य में "प्रधाने नीहृत्कृष्वहाम्" इस नियम के अनुसार प्रथमा विभक्ति हुई है एवं पाण्डुता के अप्रधान कर्म होने के कारण उससे द्वितीया विभक्ति हुई है। कुरबकम्—कुरबकस्य विकारम् कुरबकम्, उक्त विग्रह में पुष्पवाची "कुरबक" शब्द से "तस्य विकारः" इस सूत्र से अण् प्रत्यय हुआ तो परन्तु उसका "पुष्पमूलेषु बहुलम्" इस सूत्र से लुक् हो गया "कुरबक" अपने प्रकृतिरूप में ही रह गया। सीमन्तः—सीम्नः (केशस्य) अन्तः = सीमन्तः। यहाँ माँग के अर्थ में सीमन् + अन्तः ऐसी स्थिति "शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्" इस सूत्र से पररूप हुआ है, अन्य अर्थ में तु "सीमान्त" ऐसा प्रयोग होता है। त्वदुपगमजः = यहाँ युष्मद् के आगे "उपगम" यह उत्तर पद है अतः "प्रत्ययोत्तरपदयोश्च" इस सूत्र से युष्मद् के स्थान पर "त्वत्" आदेश हो गया है।

अलकापुरी भोगस्थल है अतः उसमें छहों ऋतुओं के उपभोग्य फूल सर्वदा उपलब्ध रहते हैं, इस बात को प्रदर्शित करते हुए कवि ने उसका वर्णन किया है जैसे—शरद् में कमल, कुन्द पुष्प हेमन्त में, कुरबक वसन्त में, लोध्र पुष्प शिशिर में, शिरीष पुष्प ग्रीष्म में एवं कदम्ब के फूल वर्षाऋतु में होते हैं, परन्तु ये सभी फूल अलका की स्त्रियों के अङ्गों में सर्वदा अलंकृत रहते हैं॥ २॥

(यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः पादपाः नित्यपुष्पाः
हंसश्रेणीरचितरशना नित्यपद्मा नलिन्यः ।
केकोत्कण्ठा भवन-शिखिनो नित्यभास्वत्कलापा
नित्यज्योत्स्नाः प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः प्रदोषाः ।१।)

अन्वयः—यत्र, पादपाः, नित्यपुष्पाः, उन्मत्त-भ्रमरमुखराः, नलिन्यः, नित्यपद्माः, हंसश्रेणीरचितरशनाः, भवनशिखिनः, नित्यभास्वत्कलापाः, केकोत्कण्ठाः प्रदोषाः, नित्यज्योत्स्नाः, प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः ॥ १ ॥

व्याख्या—यत्र = अलकायाम्, पादपः = वृक्षाः, नित्यपुष्पाः = सदाकुसुमशालिनः, अत एव उन्मत्तभ्रमरमुखराः = उत्कटषट्पदशब्दायमानाः, नलिन्यः = कमलिन्यः, नित्यपद्माः = अनवरतकमलाः, अत एव हंसश्रेणी-रचितरशनाः = हंसपङ्क्ति—विरचितमेखलाः, भवनशिखिनः = गृहमयूराः नित्यभास्वत्कलापाः निरन्तरप्रकाशमानबर्हाः, केकोत्कण्ठाः=स्ववाणीभिरुद्ग्रीवाः, प्रदोषाः = रात्रयः नित्य-ज्योत्स्नाः = अनवरत-चन्द्रिकाः, प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः = विनष्टान्धकारत्वान्मनोहराश्च सन्ति ॥ १ ॥

शब्दार्थः—यत्र = जिस अलका में, पादपाः = वृक्ष, नित्यपुष्पाः = सदा फूलों से सम्पन्न, उन्मत्तभ्रमरमुखराः = मस्त भँवरों से शब्दायमान, नलिन्यः = कमल लताएँ, नित्यपद्माः = नित्य कमलों से युक्त, हंसश्रेणी-रचितरशनाः = हंस-पंक्तियों की करधनी बनाए अर्थात् हंस से परिवेष्टित (है), भवन-शिखिनः घर के (पालतू) मोर, नित्यभास्वत्कलापाः = सदा चमकनेवाले पंखों से युक्त, केकोत्कण्ठाः = शब्द करते समय ऊपर की ओर गर्दन किये हुए हैं, प्रदोषाः = रात्रि, नित्यज्योत्स्नाः = अनवरत चाँदनी वाली, प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः = अन्धकार-समूह को नष्ट कर देने के कारण मनोहर रहती हैं ।

भावार्थः—हे मेघ ! यस्यामलकायां पादपाः सर्वदा कुसुमपूर्णाः अत एव उन्मत्तमधुकरैः शब्दायमानाः, पद्मिन्यः सततं कमलयुक्ताः, हंसश्रेणिभिः परि-

वेष्टिता गृहबर्हिण: सततोज्ज्वलबर्हा: स्ववाणीभिरुद्गतकण्ठ:, एवं रात्रयश्च निरवच्छिन्न चन्द्रिकोज्ज्वलाऽऽपसारितान्धकारप्रसरा रमणीयाश्च सन्ति ॥ १ ॥

हिन्दी—हे मेघ ! जिस अलका में वृक्ष नित्य फूलों से सम्पन्न, न कि केवल अपनी ही ऋतुओं में, अतएव मदमस्त भौंरों से गुञ्जायमान रहते हैं, सदा कमलों से युक्त कमल-लताएँ हंसपंक्ति से घिरी रहती हैं, घर के पालतू मयूर सदा चमकते हुए पूँछवाले अपनी वाणी बोलते समय गर्दन ऊँची करके रहते हैं, और रातें अनवरत ज्योत्स्नावाली अन्धकार के नष्ट हो जाने से, रमणीय रहती हैं ॥ १ ॥

समास:—उन्मत्ताश्च ते भ्रमरा:=उन्मत्तभ्रमरा: (क० धा०) उन्मत्त-भ्रमरै: मुखरा:=उन्मत्तभ्रमरमुखरा: (तृ० तत्०) नित्यानि पद्मानि यासां ता: नित्यपद्मा (बहु०) हंसानां श्रेणी=हंस-श्रेणी (ष० तत्०), रचिता रशना यासां ता: रचितरशना: (बहु०) हंसश्रेणिभि: रचितरशना:=हंसश्रेणी-रचित-रशना (तृ० तत्) भवनेषु शिखिन: भवनशिखिन: (स० तत्०), भास्वन्त: कलापा: येषां ते=भास्वत्कलापा: (बहु०) नित्यं भास्वत्-कलापा:=नित्य-भास्वत्कलापा: (सुप्सुपेति समास:) उन्नत: कण्ठ: येषां ते=उत्कण्ठा: (बहु०), केकाभि: उत्कण्ठा:=केकोत्कण्ठा:(तृ० तत्०)। प्रकृष्टा: दोषा: येषां ते प्रदोषा: (बहु०)। नित्या ज्योत्स्ना येषां ते नित्यज्योत्स्ना (बहु०)। तमस: वृत्ति:= तमोवृत्ति: (ष० तत्०) प्रतिहता: तमोवृत्तय: येषां ते प्रतिहततमो-वृत्तय: (बहु०) प्रतिहततमोवृत्तयश्च ते रम्या: प्रतिहततमोवृत्तिरम्या: (क० धा०)।

कोश:—वृक्षो महीरुह: शाखी विटपी पादपस्तरु:, इत्यमर:। केकावाणी-मयूरस्य, इत्यमर:। प्रदोषो रजनी-मुखम्, इत्यमर:

टिप्पणी—पादप:—पादै: पिबन्ति इस विग्रह में "पाद" उपपदपूर्वक "पा" पाने धातु से आतोऽनुपसर्गे क:" इस सूत्र से "क" प्रत्यय करके "पादप:" ऐसा शब्द निष्पन्न होता है। उन्मत्त:—"उद्" उपसर्गपूर्वक "मद्" धातु से "क्त" प्रत्यय करके "उन्मत्त:" शब्द निष्पन्न होता है। मुखरा:—

"मुखमस्त्येषामिति" इस विग्रह में "मुख" शब्द से "रप्रकरणे मुखकुञ्जेभ्यः उपसंख्यानम्" इस वार्तिक से रप्रत्यय करके "मुखर" ऐसा रूप निष्पन्न होता है। शिखिनः—शिखा अस्त्येषाम् इस विग्रह में "शिखा" शब्द से इनि प्रत्यय करके "शिखिन्" ऐसा शब्दरूप निष्पन्न होता है, उसी के प्रथमा विभक्ति के बहुवचन का उक्त रूप है। भास्वन्तः—भास धातु से मतुप् प्रत्यय करके उक्त रूप निष्पन्न किया जाता है। प्रदोषाः—यद्यपि "प्रदोष" गोधूलिवेला का नाम है क्योंकि कोश कहता है "प्रदोषो रजनी-मुखम्" परन्तु प्रकृति में यह लक्षणा से रात्रि का वाचक है। प्रतिहताः—"प्रति" उपसर्गपूर्वक हिंसार्थक "हन्" धातु से "क्त" प्रत्यय करके स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् करके "प्रतिहता" शब्द निष्पन्न होता है। वृत्तिः—यहाँ वर्तनार्थक "वृत्" धातु से क्तिन् प्रत्यय किया गया है।

अलङ्कारः—प्रस्तुत श्लोक में कमलिनी में नायिकाभाव गम्य है पर "हंसश्रेणीरचितरशना" यहाँ हंस-श्रेणी में रशनात्व का आरोप किया गया है अतः एकदेशविवर्ति रूपक अलंकार हुआ। एवञ्च अन्य पादपों से प्रस्तुत पद्य में वर्णित "पादप" वैशिष्ट्य का वर्णन है, अतः व्यतिरेक एवं आर्थी परिसंख्या अलङ्कार है एवं इन अलङ्कारों के परस्पर निरपेक्षभाव से रहने के कारण "संसृष्टि" अलङ्कार है।

आनन्दोत्थं नयनसलिलं यत्र नान्यैर्निमित्तै-
र्नान्यस्तापः कुसुमशरजादिष्ट-संयोगसाध्यात्।
नाप्यन्यस्मात् प्रणयकलहाद्विप्रयोगोपपत्ति-
र्वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति॥ २॥

अन्वयः—यत्र, वित्तेशानाम्, आनन्दोत्थम्, नयनसलिलम्, अन्यैः निमित्तैः न इष्टसंयोगसाध्यात्, कुसुमशरजात्, अन्यः, तापः न, प्रणयकलहात्, अन्यस्मात् विप्रयोगोपपत्तिः, अपि न यौवनात्, अन्यत्, वयः, अस्ति, खलु।

व्याख्या—हे मेघ ! यत्र=अलकायाम्, वित्तेशानाम्=वित्ताधिपानां यक्षाणामित्यर्थः, आनन्दोत्थम्=हर्षोद्भवम्, नयनसलिलम्=नेत्राम्बु, "अस्ति" इति तु सर्वत्र योज्यम्, अन्यैः=अपरैः, निमित्तैः=हेतुभिः, न=नहि वर्तते। इष्टसंयोगसाध्यात्=प्रियसमागम-निवर्तनीयात्, कुसुमशरजात्=कामोद्भवात्, अन्यः=अपरः, तापः=संतापः, न नहि वर्तते। प्रणयकलहात्=प्रेम-(केलि) विग्रहात्, अन्यस्मात्=अपरस्मात्, विप्रयोगोपपत्तिः=विश्लेषप्राप्तिः, अपि, न=वर्तते; यौवनात्=तारुण्यात्, अन्यत्=अपरम्, वयः=अवस्था न अस्ति= न वर्तते, खलु=निश्चयेन।

शब्दार्थः—यत्र=जिस अलका में, वित्तेशानाम्=यक्षों के, नयनसलिलम्= नेत्रजल, अश्रु, आनन्दोत्थम्=हर्ष से उत्पन्न हैं, अन्यैः=दूसरे, निमित्तैः= कारणों से, न=नहीं, इष्टसंयोगसाध्यात्=प्रियजनों के समागम से दूर हो सकनेवाले, कुसुमशरजात्=काम से उत्पन्न, अन्यः=भिन्न, तापः=संताप, न=नहीं, प्रणयकलहात्=प्रणयकालिक झगड़े से, अन्यस्मात्=भिन्न (किसी कारण से), विप्रयोगोपपत्तिः=विरह की प्राप्ति, न=नहीं है, यौवनात्= जवानी से, अन्यत्=भिन्न दूसरी, वयः=उम्र, न अस्ति=नहीं है, अर्थात् वृद्धावस्था नहीं है।

भावार्थः—हे मेघ ! यस्यामलकायां यक्षाणां हर्षजन्यमेव नेत्राम्बु नान्य-निमित्तोद्भवम्, कामोत्पन्न एव सन्तापः नान्योद्भवः, प्रणयकलहादेव विरह-प्राप्तिर्नतु अन्यस्मात् कारणात्, एवञ्च तारुण्यादपरं वयः न वर्तते नतु वृद्धत्वा-दिकमपि इति भावः।

हिन्दी—हे मेघ ! जिस अलका में यक्षों को हर्षजन्य ही नेत्रजल (अश्रु) निकलते हैं न किसी और कारणों से, प्रियजन-समागम से दूर होनेवाला काम से ही उत्पन्न संताप है न कि किसी और कारणों से, प्रणयकलह के कारण ही वियोग की प्राप्ति होती है न कि किसी और कारण से, और जवानी ही एक अवस्था है दूसरी कोई अवस्था (उम्र) नहीं।

समासः—वित्तानाम् ईशः=वित्तेशः (ष० तत्०) तेषाम्। नयनयोः सलिलम् नयनसलिलम् (ष० तत्०) इष्टैः संयोगः=इष्टसंयोगः (तृ० तत्०)

इष्टसंयोगेन साध्यः=इष्टसंयोगसाध्यः (तृ० तत्०) तस्मात्। कुसुमान्येव शराः=कुसुमशराः (रूपक क०) अथवा कुसुमान्येव शराः यस्य सः कुसुमशरः (बहु०) तस्माज्जातः कुसुमशरजः (ष० तत्०) तस्मात्। विप्रयोगस्य उपपत्तिः=विप्रयोगोपपत्तिः (ष० तत्०)।

कोशः—वित्ताधिपः कुबेरः स्यात् प्रभौ धनिकपक्षयोः, इति शब्दार्णवः। निमित्तं हेतुलक्ष्मयोः, इत्यमरः। कामं प्रकामं पर्याप्तं निकामेष्टं यथेप्सितम्, इत्यमरः। पुष्पधन्वा रतिपतिः मकरध्वजः आत्मभूः, इत्यमरः।

टिप्पणी—इष्टः—इच्छा अर्थ में विद्यमान "इष्" धातु से "क्त" प्रत्यय करके "इष्ट" शब्द निष्पन्न होता है। कुसुमशरजात्—यहाँ "अन्य" के योग होने से "अन्यारादितरर्ते दिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते" इस सूत्र से पञ्चमी विभक्ति हुई है। विप्रयोगः—"वि" एवं "प्र" उपसर्गपूर्वक योगार्थक "युज्" धातु से "घञ्" प्रत्यय करके विप्रयोग शब्द बनता है। उपपत्तिः—"उप" उपसर्गपूर्वक गत्यर्थक "पद" धातु से भाव में "क्विन्" प्रत्यय करके "उपपत्ति" शब्द निष्पन्न होता है। यौवनम्—यूनो भावः इस विग्रह में "युवन्" शब्द से "हायनान्तयुवादिभ्योऽण्" इस सूत्र से "अण" प्रत्यय करके आदिवृद्धि करके "यौवनम्" शब्द बनता है॥

अलङ्कारः—"परिसंख्या निषिध्यैकमन्यस्मिन्वस्तुयन्त्रणम्" चन्द्रालोक के इस नियम के अनुसार यहाँ 'परिसंख्या' अलङ्कार है, क्योंकि इस श्लोक में आँसू आदि का शोकादि में निषेध कर हर्षादि में नियन्त्रण किया गया है।

यस्यां यक्षाः सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि
ज्योतिश्छायाकुसुमरचितान्युत्तमस्त्रीसहायाः।
आसेवन्ते मधुरतिफलं कल्पवृक्षप्रसूतं
त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वाहतेषु॥ ३॥

अन्वयः—यस्याम्, यक्षाः, उत्तमस्त्रीसहायाः, सितमणिमयानि, ज्योतिश्छाया

कुसुमरचितानि हर्म्यस्थलानि एत्य, त्वद्गम्भीरध्वनिषु, पुष्करेषु, शनकैः, आहतेषु कल्पवृक्षप्रसूतम्, रतिफलम्, मधु, आसेवन्ते ॥ ३ ॥

व्याख्या—यस्माम् = यत्रालकायाम्, यक्षाः = देवयोनिविशेषधनाधिपाः, उत्तमस्त्रीसहायाः = मनोज्ञ-वनितासहचराः, (सन्तः), सितमणिमयानि = स्फटिकमणिनिर्मितानि, ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि = नक्षत्रप्रतिबिम्ब-रूपपुष्प-परिष्कृतानि, हर्म्यस्थलानि = सौध-शिखराणि, एत्य = गत्वा, त्वद्गम्भीरध्वनिषु = मेघगम्भीरस्तनितेषु, पुष्करेषु = वाद्यपात्रमुखेषु, शनकैः = मन्दम्, आहतेषु = सुताडितेषु, (सत्सु), कल्पवृक्षप्रसूतम् = सुरतरुजातम्, रतिफलम् = एतन्नामकं फलम्, मधु = मद्यम्, आसेवन्ते = पिबन्ति ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—यस्याम् = जिस अलका नगरी में, यक्षाः = यक्षगण, उत्तमस्त्रीसहायाः = रमणीय स्त्रियों के साथ, सितमणिमयानि = स्फटिक मणि से खचित, ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि = नक्षत्रों के प्रतिबिम्ब रूप फूलों से सजाये गये, हर्म्यस्थलानि = महलों की अटारियों पर, एत्य = जाकर, त्वद्गम्भीरध्वनिषु = तुम्हारे समान गम्भीर शब्द वाले, पुष्करेषु = नगाड़ों के, शनकैः = धीरे-धीरे, आहतेषु = बजाये जाने पर, कल्पवृक्षप्रसूतम् = कल्पवृक्ष से उत्पन्न, रतिफलम् = रतिफल नाम की, मधु = मदिरा का, सेवन्ते = सेवन करते हैं, अर्थात् पीते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! यस्यामलकायां यक्षाः स्फटिकमणिनिर्मितानि नक्षत्र-प्रतिबिम्ब-रूपैः पुष्पैः सज्जीकृतानि सौधशिखराण्येत्य त्वद्गम्भीरध्वनिषु वाद्य-भाण्डेषु शनैः शनैः प्रताडितेषु कल्पवृक्षोत्पन्नं रतिफलनामकं मद्यमासेवन्ते ॥३॥

हिन्दी—हे मेघ ! जिस अलका नगरी में यक्षगण रमणीय रमणियों के साथ स्फटिकमणि से खचित, तारों के प्रतिबिम्बरूपी फूलों से सजाये गये महलों की अटारियों पर जाकर तुम्हारी तरह गम्भीर शब्द वाले नगाड़ों के धीमे-धीमे बजाये जाने पर कल्पवृक्ष से निकले रतिफल नामक मदिरा का सेवन करते हैं ॥ ३ ॥

समासः—उत्तमाश्च ताः स्त्रियः=उत्तमस्त्रियः (कन्याः) उत्तमस्त्रियः सहायाः येषान्ते उत्तमस्त्रीसहायाः (बहु०) सिताश्च ते मणयः=सितमणयः (कर्म०) सितमणिभिः प्रकृतानि=सितमणिमयानि (तृ० तत्०) । ज्योतिषां छायाः=ज्योतिश्छायाः (ष० तत्०), ता एव कुसुमानि=ज्योतिश्छाया-कुसुमानि (क० धा० रूपक०) तैः रचितानि=ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि (तृ० तत्०) । हर्म्याणां स्थलानि=हर्म्यस्थलानि (ष० तत्०) । कल्पवृक्षात्प्र-सूतम् (ष० त०) ।

कोशः—कुबेरस्त्र्यम्बकसखो यक्षराड् गुह्यकेश्वरः, इत्यमरः । ज्योतिस्ता-राग्निभाज्वाला दृक्पुत्रार्थाच्विरात्मसु, इति वैजयन्ती । पुष्करं करिहस्ताग्रे वाद्य-भाण्डमुखे जले, इत्यमरः ।

टिप्पणी—उत्तमस्त्रीसहायाः—समासस्थल में इसका विग्रह उत्तमाश्च ताः स्त्रियः ऐसा विग्रह होता है वहाँ कर्मधारय समास होकर "पुंवत्कर्मधारय जातीयदेशीयेषु" इस सूत्र से उत्तमा को पुंवत्भाव "उत्तम" ऐसा हो गया और पुनः बहुव्रीहि समास कर उत्तम-स्त्रीसहायाः बनाया जाता है । सितमणिम-यानि—यहाँ सितमणि शब्द से नाभि प्रकृतानि इस विग्रह में "तत्प्रकृतवचने मयट्" इस सूत्र से मयट् प्रत्यय किया गया है । एत्य—गत्यर्थक इण् धातु से क्त्वा प्रत्यय करके उसके स्थान पर ल्यप् करके "एत्य" ऐसा रूप बनता है । आहतेषु—"आङ्" उपसर्गपूर्वक "हन्" धातु से "क्त" प्रत्यय करके आहत ऐसा बनता है, यह रूप इसी शब्द की स० वि० के बहुवचन का है । आसेवन्ते—'आङ्' उपसर्गपूर्वक "सेव" धातु के लट् लकार के प्रथम पुरुष के बहुवचन का यह रूप है, यह धातु आत्मनेपदी है ।

अलङ्कारः—यहाँ यक्षों का (महापुरुषों का) एवं अलौकिक ऐश्वर्य का भी वर्णन है, अतएव "उदात्त" अलङ्कार है । "ज्योतिश्छायाकुसुमरचितानि" यहाँ "रूपक" है । "त्वद्गम्भीरध्वनिषु" यहाँ "लुप्तोपमा" है । एवं तीनों अलङ्कारों की सत्ता निरपेक्षभाव से है अतः "संसृष्टि" अलङ्कार है ॥ ३ ॥

मन्दाकिन्याः सलिल-शिशिरैः सेव्यमानामरुद्भि-
र्मन्दाराणामनुतटरुहां छायया वारि-तोष्णाः ।
अन्वेष्टव्यैः कनकसिकता—मुष्टि – निक्षेपगूढैः
संक्रीडन्ते मणिभिरमर-प्रार्थिता यत्र कन्याः ॥४॥

अन्वयः—यत्र, अमर-प्रार्थिताः, कन्याः, मन्दाकिन्याः, सलिलशिशिरैः, मरुद्भिः, सेव्यमानाः, अनुतटरुहाम्, मन्दाराणाम् छायया, वारितोष्णाः, कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः, अन्वेष्टव्यैः, मणिभिः, संक्रीडन्ते ॥ ४ ॥

व्याख्या—यत्र = अलकायाम्, अमर-प्रार्थिताः=देवाभिलषिताः, कन्याः= यक्षकुमार्यः, मन्दाकिन्याः=स्वर्गङ्गायाः, सलिलशिशिरैः=तोयशीतलैः, मरुद्भिः =पवनैः, सेव्यमानाः=सेविताः, अनुतटरुहाम् =उपकूलोद्भवानाम्, मन्दाराणाम्=मन्दारवृक्षाणाम्, छायया=अनातपेन, वारितोष्णाः=दूरीकृताऽऽतपाः [सत्यः], कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः=स्वर्णवालुकामुष्टिप्रक्षेपगुप्तैः, अत एव अन्वेष्टव्यैः=गवेषणीयैः, मणिभिः= रत्नैः, संक्रीडन्ते=सम्यक्क्रीडन्ति ॥५॥

शब्दार्थः—यत्र = जिस अलका में, अमर-प्रार्थिताः=देवताओं की अभिलषित, कन्याः=यक्षकुमारियाँ, मन्दाकिन्याः=आकाशगङ्गा के, सलिल-शिशिरैः=जल से शीतल, मरुद्भिः =पवनों से, सेव्यमानाः=सेवित, अनुतट-रुहाम्=किनारों पर उत्पन्न, मन्दाराणाम्=मन्दारवृक्षों की, छायया=छाया से, वारितोष्णाः=जिनकी धूप दूर कर दी है (ऐसी वे यक्षकुमारियाँ) कनक-सिकता-मुष्टि-निक्षेप-गूढैः=स्वर्ण की बालू में मुट्ठी रखकर छुपाई गयी, अत एव, अन्वेष्टव्यैः=खोजने योग्य (जिन्हें खोजना पड़े) ऐसे, मणिभिः= मणियों से, संक्रीडन्ते=अच्छी तरह खेलती हैं ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! यत्रालकायां देवयाचिताः आकाशगङ्गायाः जलशीतलैः पवनैरासेव्यमानाः तीरोत्पन्नमन्दारवृक्षाणां छाययाऽऽपसारिताऽऽतपाः यक्षकुमार्यः सुवर्णबालुकामुष्टि-प्रक्षेपगुप्तैः अन्वेष्टव्यैः रत्नैः संक्रीडन्ते ।

हिन्दी—हे मेघ ! जिस अलका में, देवताओं से याचित, आकाशगङ्गा के

जल से शीतल पवनों से सेवित, तीर पर उत्पन्न मन्दार वृक्षों की छाया से जिनकी धूप दूर कर दी गयी है, ऐसी यक्षकुमारियाँ सोने के बालुओं में मुट्ठी बाँधकर छिपायी गयी एवं जिसे खोजना पड़ता है ऐसी मणियों से अच्छी तरह खेलती हैं।

समासः—अमरैः प्रार्थिताः=अमरप्रार्थिताः (तृ० तत्)। सलिलेन शिशिराः=सलिलशिशिराः (तृ० तत्)। तटे इति अनुतटम् (विभक्त्यर्थे अव्ययीभावः)। अनुतटं रोहन्तीति अनुतटरुहः (उपपद०) तेषाम् कनकस्य सिकताः=कनकसिकताः (ष० तत्०) मुष्टिभिर्निक्षेपः=मुष्टिनिक्षेपः (तृ० तत्०), कनकसिकतासु मुष्टिनिक्षेपः=कनकसिकता-मुष्टिनिक्षेपः (स० तत्०) कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपेण गूढाः=कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढाः (तृ० तत्०)। वारितो उष्णो यासां ताः वारितोष्णाः (बहु०)।

कोशः—कन्या कुमारिका नार्यः, इति विश्वः। रत्नादिभिर्बालुकादौ गुप्तैर्द्रष्टव्यकर्मभिः। कुमारिभिः कृता क्रीडा नाम्ना गुप्तमणिः स्मृता। इति दशार्णवः। मन्दाकिनी वियद्गङ्गा स्वर्णदी सुरदीर्घिका, इत्यमरः।

टिप्पणी—प्रार्थिताः—"प्र" उपसर्गपूर्वक णिजन्त "अर्थि" धातु से "क्त" प्रत्यय करके "प्रार्थित" शब्द बनता है, स्त्रीत्व विवक्षा में "टाप्" करके "प्रार्थिता" ऐसा बनता है। अनुतटरुहाम्—यहाँ 'अनुतट' उपपदपूर्वक "रुह्" धातु से क्विप् प्रत्यय किया गया है और उसका सर्वापहारीलोप हो गया है। इसका पाठान्तर "तटवनरुहाम्" ऐसा भी मिलता है। इन्द्र के नन्दनवन के पाँच वृक्षों में मन्दार भी एक वृक्ष है। पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः। सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम्॥ इत्यमरः। वारिताः—णिजन्त "वारि" धातु से "क्त" प्रत्यय करके स्त्रीत्वविवक्षा में "टाप्" करके बहुवचन में ऐसा रूप निष्पन्न होता है। गूढाः—"गुह्" धातु से "क्त" प्रत्यय करके ढत्वादिक करके "ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः" इस सूत्र से धातु के उकार को दीर्घ करके "स्त्रीत्वविवक्षा में "टाप्" करके बहुवचन में "गूढाः" ऐसा रूप बनाया जाता है। अन्वेष्टव्यैः—"अनु" उपसर्गक "इष्" धातु से "तव्यत्" प्रत्यय

करके "अन्वेष्टव्य" रूप बनता है, तृतीया विभक्ति का उक्त रूप है। संक्रीडन्ते-सम उपसर्गपूर्वक "क्रीड्" धातु के प्रथमपुरुष के बहुवचन का यह रूप है। यहाँ "क्रीडोऽनुसंपरिभ्यश्च" इस सूत्र से आत्मनेपद हुआ है।

अलङ्कार:-यहाँ अद्भुत ऐश्वर्य का वर्णन है अत: "उदात्त" अलङ्कार है॥

नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र बिम्बाधराणां
क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु।
अर्चिस्तुङ्गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान्
ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्ण-मुष्टिः॥ ५॥

अन्वय:—यत्र, अनिभृतकरेषु, प्रियेषु नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलम्, क्षौमम्, रागात् आक्षिपत्सु, ह्रीमूढानाम्, बिम्बाधराणाम्, चूर्णमुष्टि:, अर्चिस्तुङ्गान्, रत्नप्रदीपान्, अभिमुखम्, प्राप्य, अपि, विफलप्रेरणा, भवति।

व्याख्या—(हे मेघ!) यत्र=यस्मामलकायाम्, अनिभृतकरेषु=चपल-हस्तेषु, प्रियेषु=वल्लभेषु, नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलम्=वसनग्रन्थित्रुटित-शिथिलम्, क्षौमम्=दुकूलम्, रागात्=कामाऽऽधिक्यात्, आक्षिपत्सु (सत्सु) ह्रीमूढानाम्=लज्जाविधुराणाम्, बिम्बाधराणाम्=वनिता-विशेषाणाम्, चूर्ण-मुष्टि:=मुष्टिगृहीतकुंकुमादिधूलि:, अर्चिस्तुङ्गान्=मयूखोन्नतान्, रत्नप्रदीपान् मणिदीपान्, अभिमुखम्=सम्मुखम्, प्राप्य अपि, गत्वा अपि, विफलप्रेरणा=निष्फलवेगा, भवति=वर्तते।

शब्दार्थ:—(हे मेघ!) यत्र=जिस अलका में, अनिभृतकरेषु=चञ्चलहाथ वाले, प्रियेषु=प्रियतमों के (द्वारा) नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलम्=नीवीबन्ध के टूट जाने के कारण शिथिल, क्षौमम्=साड़ी को, रागात्=कामाऽऽवेश के कारण, आक्षिपत्सु=खींचने का, ह्रीमूढानाम्=लज्जा से विमूढ, बिम्बाधराणाम्=बिम्ब फल के समान होंठवाली स्त्री-विशेषों के, चूर्णमुष्टि:=कुंकुमादि-चूर्ण की मुट्ठी, अर्चिस्तुङ्गान्=ऊँची किरणोंवाले, रत्नप्रदीपान्=मणिदीपों के

पास, प्राप्य अपि=पहुँचकर भी, विफलप्रेरणा=निष्फल वेगवाली; भवति=हो जाती है। अर्थात् उनका फेंकना बेकार हो जाता है ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! यस्यामलकायां चञ्चलहस्तेषु वल्लभेषु नीवीबन्धत्रुटित शिथिलं दुकूलं कामाऽऽवेशात् आहरत्सु लज्जाविमूढानां बिम्बाधराणां कुंकुमादि-चूर्णमुष्टिः मयूखोन्नतान् रत्नदीपान् प्राप्य अपि निष्फलवेगा भवति ॥

हिन्दी—हे मेघ ! जिस अलका के चञ्चल हाथों वाले प्रियतमों के द्वारा नीवीबन्ध के टूट जाने के कारण शिथिल साड़ी को कामाऽऽवेश से खींचने पर लज्जा से ठगी बिम्बाधरियों की कुंकुमादि की मुट्ठी ऊँची किरणोंवाले मणिदीप के पास पहुँचकर भी बेकार चली जाती है ॥ ५ ॥

समासः=न निभृताः=अनिभृताः (नञ्०) अनिभृताः कराः येषान्ते अनिभृतकराः (बहु०) तेषु। ह्रिया मूढाः=ह्रीमूढाः (तृ० तत्०) बिम्बम् इव अधरो यासां ताः बिम्बाधराः (बहु०) तासाम्। चूर्णस्य मुष्टिः=चूर्णमुष्टिः (ष० तत्०) अर्चिभिः तुङ्गाः=अर्चिस्तुङ्गाः (तृ० तत्०) तान्। रत्नान्येव प्रदीपाः रत्नप्रदीपाः (रूपकः) तान्, विगतं फलं यस्याः सा=विफलाः (बहु०) विफला प्रेरणा यस्याः सा विफलप्रेरणा (बहु०)।

कोशः—नीवी परिपणे ग्रन्थौ स्त्रीणां जघनवाससि, इति विश्वः। बिम्बं फले बिम्बिकायाः प्रतिबिम्बे च मण्डले, इति विश्वः। विशेषाः कामिनी कान्ता भीरुर्बिम्बाधराङ्गनाः, इति शब्दार्णवः। अर्चिर्मयूर-वह्निशिखयोः, इति विश्वः। मन्दाक्षं स्त्रीस्त्रपा व्रीडा लज्जा सा, इत्यमरः ॥

टिप्पणी—**निभृतः**—"नि" उपसर्गपूर्वक "भृ" धातु से "क्त" प्रत्यय करके "निभृत" ऐसा रूप बनता है। **उच्छ्वसित**—"उद्" उपसर्गपूर्वक "श्वस्" भाव में क्त प्रत्यय करके उच्छ्वसित बनता है। **नीवीबन्धः**—"नीवी" शब्द का अर्थ ही स्त्रियों की साड़ी का "बन्ध" है, पुनः "बन्ध" शब्द का प्रयोग कवि ने किया है अतः महामहोपाध्याय मल्लिनाथजी ने नीव्याः बन्धः ऐसा ष० तत्० समास न करके रूपक समास किया है। **बिम्बाधरा**—यहाँ अधर शब्द स्वाङ्गवाची है अतः "स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात्" इस सूत्र से ङीष् होना चाहिए

था परन्तु अधर शब्द के बहुत अच्वाला होने के कारण "न क्रोडादिबह्वचः" इस सूत्र से निषेध हो गया—टाप् हो गया है। प्राप्य—"प्र" उपसर्गपूर्वक आप् (ख) धातु से क्त्वा प्रत्यय करके उसके स्थान पर ल्यप् करके "प्राप्य" ऐसा रूप बनता है। प्रस्तुत श्लोक में वर्णित बिम्बाधरियाँ "मुग्धा" जान पड़ती हैं क्योंकि पतिद्वारा साड़ी खींचे जाने पर नग्नता के कारण उत्पन्न लज्जा से किंकर्तव्यविमूढ होकर रत्नप्रदीप पर जिसकी किरणें बुझ नहीं सकतीं उस पर चूर्णमुष्टि का प्रेक्षप करती है, जो निष्फल है, क्योंकि उस दीप पर पड़कर भी वह धूलि नीचे गिर जाती हैं, प्रकाश पूर्ववत् रह जाता है, अतः वे मुग्धा हैं।

अलङ्कारः—प्रस्तुत पद्य में चूर्णमुष्टि-प्रक्षेप रूप कारण के रहने पर रत्न-प्रदीप के बुझने रूप (फल) कार्य के न होने से "विशेषोक्ति" अलङ्कार है। "बिम्बाधराणाम्" यहाँ सामान्यवाचक पद के न रहने के कारण "लुप्तोपमा" है। इस तरह दोनों के परस्पर अङ्गाङ्गिभावतया रहने के कारण "संकर" नामक अलंकार है ॥ ५ ॥

नेत्रा नीताः सततगतिना यद्विमानाग्रभूमि-
रालेख्यानां स्वजलकणिका-दोषमुत्पाद्य सद्यः ।
शङ्कास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशा जालमार्गै-
र्धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति ॥ ६ ॥

अन्वयः—(हे मेघ !) नेत्रा, सततगतिना, यद्विमानाग्रभूमीः, नीताः, त्वादृशाः, जलमुचः, आलेख्यानाम्, स्वजलकणिकादोषम्, उत्पाद्य, सद्यः, शङ्कास्पृष्टा, इव, धूमोद्गाराऽनुकृतिनिपुणाः, जर्जराः, जालमार्गैः, निष्पतन्ति ॥

व्याख्या—(हे मेघ !) नेत्रा = नायकेन, सततगतिना = अनवरतगतिना पवनेनेत्यर्थः, यद्विमानाग्रभूमीः=यत्र सप्तभूमिकभवनप्रासादोपरिभूमिका , नीताः =प्रापिता , त्वादृशाः =त्वत् समानाः, जललवमुचः =मेघाः, आलेख्यानाम् = चित्राणाम्, स्वजलकणिकादोषम् = निजतोयलवसंस्पर्शदोषम्, उत्पाद्य = सम्पाद्य, सद्यः = तत्क्षणे, शङ्कास्पृष्टा इव = भीतभीता इव, धूमोद्गाराऽनुकृतिनिपुणाः=

धूमनिगमानुकरणदक्षाः, जर्जराः=शीर्णाः, (सन्तः) जालमार्गैः=गवाक्षैः, निष्पतन्ति=निर्गच्छन्ति ॥

शब्दार्थः—(हे मेघ !) नेत्रा=प्रेरक, सततगतिना=निरन्तरगतिवाले (वायु) के द्वारा, यद्विमानाग्रभूमीः=सात मंजिलवाले भवनों की अटारियों पर, नीताः=ले जाये गये, त्वादृशाः=तुम्हारे समान, जललवमुचः=मेघगण, आलेख्यानाम्=चित्रों को, स्वजलकणिकादोषम्=अपने जलकणों के संसर्ग से दूषित, प्राप्य=करके, शंकास्पृष्टाः इव=भयभीत से (होकर), धूमोद्गाराऽनुकृतिनिपुणाः=धुआँ उगलने का अनुकरण करने में चतुर, जर्जराः=छिन्न-भिन्न (होकर), जालमार्गैः=खिड़कियों के मार्ग से, निष्पतन्ति=निकलते हैं।

भावार्थः—यत्र त्वादृशाः मेघाः प्रेरकेण वायुना सप्तभूमिकभवनप्रासादोपरि नीताः चित्रान् निजजललवसंस्पर्शैः दूषयित्वा सद्यः भयैर्भीता इव धूमोद्गीर्णानुकरणचतुराः जीर्णाः सन्तः गवाक्षमार्गैः निष्पतन्ति ।

हिन्दी—हे मेघ ! जिस अलका में अपने प्रेरक वायु के द्वारा सतमंजिले भवनों के ऊपरी भाग पर ले जाये गये तुम्हारे समान मेघ, अपने जलकणों से चित्रों को दूषित कर भयभीत से होकर धूएँ निकलने का अनुकरण करने में चतुर छिन्न-भिन्न होकर खिड़की के मार्ग से निकलते हैं।

समासः—सततं गतिर्यस्य सः सततगतिः (बहु०) तेन । यस्याः विमानानि =यद्विमानानि (ष० तत्०) अग्राश्च ताः भूमयः=अग्रभूमयः (कर्मधा०) यद्विमानानां अग्रभूमयः=यद्विमानाग्रभूमीः (ष० तत्०)। जलं मुञ्चन्तीति= जलमुक् (उपपद०) तस्य । स्वस्य जलम्=स्वजलम् (ष० तत्०)। स्वजलस्य कणिका=स्वजलकणिका (ष० तत्०) ताभिः दोषः=स्वजलकणिकादोषः (तृ० तत्०) तम् । शङ्कया स्पृष्टाः=शङ्कास्पृष्टाः (तृ० तत्०)। धूमस्य उद्गारः=धूमोद्गारः (ष० तत्०), तस्य अनुकृतिः=धूमोद्गाराऽनुकृतिः (ष० तत्०) तस्यां निपुणाः=धूमोद्गाराऽनुकृति-निपुणाः (स० तत्०)। जालानां मार्गाः=जालमार्गाः (ष० तत्०) तैः ।

कोश:—मातरिश्वा सदागतिः, इत्यमरः। चित्रं लिखितरूपाढ्यं स्यादालेख्यं तु यत्नतः, इति शब्दार्णवः। शङ्कावितर्कभययोः, इति शब्दार्णवः। सद्यः सपदि तत्क्षणे, इत्यमरः।

टिप्पणी—नेत्रा—नयतीति नेता प्रापणार्थक् 'नी' धातु से तृच् प्रत्यय करके "अप्तृन्तृच्" आदि सूत्र से अनङ् आदि करके उपधादीर्घ करके "नेत्रा" शब्द व्युत्पन्न होता है। उक्तरूप तृतीया विभक्ति के एकवचन का है।

नीताः—"नी" धातु से "क्त" प्रत्यय का विधान होने पर निष्पन्न होता है।

त्वादृशाः—त्वमिव पश्यन्ति इस विग्रह में "युष्मद्" शब्द से "त्यदादिषु" "दृशोऽनालोचने कञ्च" इस सूत्र से "कञ्" प्रत्यय हुआ "अ" बचा एवं "आसर्वनाम्नः" इस सूत्र से युष्मद् को आकारान्तादेश हुआ तब "त्वादृश" शब्द बना है, बहुवचन में त्वादृशाः ऐसा प्रयोग होता है। उत्पाद्य—"उद्" उपसर्ग-पूर्वक णिजन्त "पादि" धातु से क्त्वा प्रत्यय करके उसके स्थान पर ल्यप् करके "उत्पाद्य" ऐसा बनता है। उद्गारः—"उद्" उपसर्गपूर्वक निगरणार्थक "गॄ" धातु से भाव में "घञ्" प्रत्यय तथा वृद्ध्यादि करके "उद्गार" शब्द निष्पन्न होता है। धूमोद्गाराऽनुकृतिनिपुणः—अनुकृतौ निपुणः यहाँ "साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः" इस सूत्र से सप्तमी विभक्ति का विधान हुआ। पश्चात् "सप्तमी शौण्डैः" इस सूत्र से सप्तमी तत् पु० समास हुआ है।

जालमार्गैः—यहाँ "यन्त्रजालैः" ऐसा पाठ भी कहीं-कहीं मिलता है वहाँ यन्त्रनिर्मितानि जालानि ऐसा मध्यमपदलोपी समास समझना चाहिए। निष्पतन्ति—"निस्" उपसर्गपूर्वक "पत" धातु के लट्लकार के प्रथमपुरुष के बहुवचन का उक्त रूप है।

अलङ्कार—इस श्लोक में "शङ्कास्पृष्टा इव" इस स्थल में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। महामहोपाध्याय श्री मल्लिनाथजी ने इस श्लोक के द्वारा 'जिस तरह कोई जार पुरुष अन्तःपुर के दूत द्वारा चुराकर अन्तःपुर पहुँचा दिया जाता है और वह जार वहाँ स्त्रियों को दूषित कर पीछे पकड़े जाने के भय से किसी

चोर दरवाजे से निकल भागता है वैसे यहाँ भी मेघ धूआँ-सा रूप बनाकर खिड़की के रास्ते निकल भागते हैं" इस प्रकार की ध्वनि का प्रतिपादन किया है ॥ ६ ॥

अत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजालिङ्गनोच्छ्वासिताना-
मङ्गग्लानिं सुरतजनितां तन्तुजालावलम्बाः ।
त्वत्संरोधापगम — विशदैश्चन्द्रपादैर्निशीथे
व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः ॥ ७ ॥

अन्वयः—यत्र, निशीथे, त्वत्संरोधाऽपगमविशदैः, चन्द्रपादैः, स्फुटजललवस्यन्दिनः, तन्तुजालाऽवलम्बाः, चन्द्रकान्ताः, प्रियतमभुजालिङ्गनोच्छ्वासितानाम्, स्त्रीणाम्, सुरतजनिताम्, अङ्गग्लानिम्, व्यालुम्पन्ति ।

व्याख्या—यत्र = यस्यामलकायाम्, निशीथे = रात्रौ, त्वत्संरोधापगमविशदैः = मेघावरणापगमनिर्मलैः, चन्द्रपादैः = हिमांशु किरणैः, स्फुटजललवस्यन्दिनः = व्यक्ततोयकण स्राविणः, तन्तुजाला-वलम्बाः = सूत्रसमूहाधाराः; वितानाद्यो भागः इति शेषः । चन्द्रकान्ताः = चन्द्रकान्तमणयः, प्रियतमभुजाऽऽलिङ्गिनोच्छ्वासितानाम् = वल्लभबाह्वाश्लेषशिथिलीकृतानाम्, स्त्रीणाम् = वनितानाम्, सुरतजनिताम् = सम्भोगोत्पन्नाम्, अङ्गग्लानिम् = शरीरपीडाम्, व्यालुम्पन्ति = दूरीकुर्वन्ति ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—यत्र = जिस अकाल में, निशीथे=रात्रि में, त्वत्संरोधाऽपगमविशदैः = तुम्हारी रुकावट हट जाने के कारण स्वच्छ, चन्द्रपादैः = चन्द्रमा की किरणों के द्वारा, स्फुट-जललवस्यन्दिनः = स्पष्टजल-कणों को टपकाने वाली, तन्तुजालावलम्बाः = सूत्रसमूह की झालरों से लटकती हुई, चन्द्रकान्ताः = चन्द्रकान्तमणि, प्रियतमभुजालिङ्गिनोच्छ्वासितानाम्=प्रियतमों की भुजाओं के आलिंगन से शिथिल, स्त्रीणाम्=स्त्रियों को, सुरत-जनिताम्=संभोग से उत्पन्न, अंगग्लानिम् = अंगों की पीडा को, व्यालुम्पन्ति = दूर करती हैं ॥ ७ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! यस्यामलकायां रात्रौ त्वदावरण-विहरेण निर्मलैः

चन्द्रमयूखैः स्पष्टजललव-स्राविणः सूत्रसमूहनिर्मितजाला-धारिताश्चन्द्रकान्त-मणयः दयितबाह्वालिङ्गनशिथिलानां वनितानां संभोगोत्पन्नां शरीरपीडामपाकुर्वन्ति ॥ ७ ॥

हिन्दी—हे मेघ ! जिस अलका में रात्रि में तुम्हारी रुकावट के न रहने के कारण निर्मल चन्द्रमा की किरणों से (किरणों के सम्पर्क से) स्पष्टजल-कण को टपकानेवाली झालरियों में लटकी हुई चन्द्रकान्तमणियाँ, प्रियतम की भुजाओं के आलिगन से शिथिल स्त्रियों की, सम्भोग से उत्पन्न अंगों की, पीड़ा को दूर करती है ॥ ७ ॥

समासः—तव संरोधः=त्वत्संरोधः (ष० तत्०) तस्य अपगमः=त्वत्संरोधापगमः (ष० तत्०) तेन विशदः=त्वत्संरोधापगमविशदः (तृ० त०) तैः । चन्द्रस्य पादाः=चन्द्रपादाः (ष० तत्०) तैः । जलस्य लवाः=जललवाः (ष० तत्०) स्फुटाश्च ते जललवाः स्फुटजललवाः (कर्म०) तान् स्यन्दन्ते तच्छीलाः इति स्फुटजलवस्यन्दिनः (उपपद०), प्रियतमानां भुजा प्रियतमभुजाः (ष० तत्०) तैः आलिङ्गितानि=प्रियतमभुजाऽऽलिङ्गितानि (तृ० तत्०) उद्गताः श्वासाः यासां ताः=उच्छ्वासाः (बहु०) प्रियतमभुजाऽऽलिङ्गनेन उच्छ्वसिताः=प्रियतम-भुजाऽऽलिङ्गिनोच्छ्वासिता (तृ० तत्०) तासाम् । सुरतेन जनिताम्=सुरतजनिताम् (तृ० तत्०) ।

कोशः–अर्धरात्रं निशीथौ द्वौ, इत्यमरः, पादारश्म्यङ्घ्रितुर्यांशाः, इत्यमरः ।

टिप्पणी—**संरोधः**—"सम्" उपसर्गपूर्वक आवरणार्थक "रुध्" धातु से 'घञ्' प्रत्यय करके "संरोध" ऐसा निष्पन्न किया जाता है । **अपगमः**—"अप" उपसर्गपूर्वक गत्यर्थक् "गम्" धातु से 'अप्' प्रत्यय करके "अपगमः" ऐसा बनाया जाता है । **स्यन्दिनः**—"स्यन्द" धातु से ताच्छील्य अर्थ में णिनि प्रत्यय करके "स्यन्दिन्" ऐसा रूप निष्पन्न होता है । उक्त रूप षष्ठी विभक्ति के एकवचन का है । **प्रियाः**—प्रीणन्ति इति, इस विग्रह में "प्री" धातु से "क" प्रत्यय करके "प्रिय" शब्द निष्पन्न होता है । **प्रियतमाः**—अतिशयेन प्रियाः प्रियतमाः यहाँ "प्रिय" शब्द से "अतिशायने तमबिष्ठनौ" इस सूत्र से "तमप्"

प्रत्यय होता है। उच्छ्वासिताः—"उद्" उपसर्गपूर्वक णिजन्त "श्वासि" धातु से "तत्करोति तदाचष्टे" इस सूत्र से "क्त" प्रत्यय हुआ है एवं स्त्रीत्व-विवक्षा में टाप करके "उच्छ्वासिता" ऐसा रूप निष्पन्न किया जाता है। ग्लानिः—हर्षक्षयार्थक "ग्लै" धातु से भाव में "क्तिन्" प्रत्यय करके आत्वादि करके "ग्लानि" शब्द निष्पन्न किया जाता है।

अलङ्कारः—यहाँ ऐश्वर्यपूर्ण वस्तु चन्द्रकान्त आदि का वर्णन है अतः उदात्त अलङ्कार है ॥ ७ ॥

अक्षय्यान्तर्भवन-निधयः प्रत्यहं रक्त-कण्ठै-
रुद्गायद्भिर्धनपतियशः किन्नरैर्यत्र सार्धम् ।
वैभ्राजाख्यं विबुधवनितावारमुख्यासहाया
बद्धालापा बहिरुपवनं कामिनो निर्विशन्ति ॥८॥

अन्वयः—यत्र, अक्षय्यान्तर्भवननिधयः विबुधवनितावारमुख्यासहायाः, बद्धालापाः, कामिनः, प्रत्यहम्, रक्तकण्ठैः, धनपतियशः, उद्गायद्भिः, किन्नरैः, सार्धम्, वैभ्राजाख्यम्, बहिरुपवनम्, निर्विशन्ति ॥ ८ ॥

व्याख्या—यत्र=यस्यामलकायाम्, अक्षय्यान्तर्भवननिधयः=अपरिमित-गृहाभ्यन्तरसम्भूतसम्पत्तयः, विबुधवनिताः=देववनिताः, वारमुख्यासहायाः=अप्सरःसहचराः, बद्धालापाः=कृतसंभाषणाः, कामिनः=कामुकाः, प्रत्यहम्=प्रतिदिनम्, रक्तकण्ठैः=मधुरकण्ठस्वरैः, धनपतियशः=कुबेरकीर्तिम्, उद्गायद्भिः=तारस्वरेण गायद्भिः, किन्नरैः=किम्पुरुषैः देवयोनिविशेषैः, सार्धम्=साकम्, वैभ्राजाख्यम्=वैभ्राजाऽभिधेयम्, कुबेराऽऽराममित्यर्थः। बहिरुपवनम्=बाह्योद्यानम्, निर्विशन्ति=उपभोगं कुर्वन्ति ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—यत्र=जिस अलका में, अक्षय्यान्तर्भवननिधयः=जिनके घर के भीतर अपार सम्पत्ति पड़ी हैं, विबुध-वनिताः=देवाङ्गना (रूपी), वारमुख्या-सहायाः=वेश्याओं अर्थात् अप्सराओं के साथ, बद्धालापाः=वार्तालाप करते

हुए, कामिनः=कामुक लोग, प्रत्यहम्=प्रतिदिन, रक्तकण्ठैः=मधुर स्वर से, धनपतियशः=कुबेर की कीर्ति का, उद्गायद्भिः=ऊँचे स्वर में गान करते हुए, किन्नरैः=किन्नरों के, सार्धम्=साथ, वैभ्राजाख्यम्=वैभ्राजनामक, बहिरुपवनम्=बाहरी उद्यान का (कुबेर के उद्यान का), निर्विशन्ति=उपभोग करते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थः—यस्यामलकायां गृहाभ्यन्तरेऽपरिमित-संगृहीतसंपत्तयः कामिनः अप्सरोभिः सह वार्तालापं कुर्वन्तः, कुबेर-कीर्तिम् मधुर-तार-स्वरैरुद्गायद्भिः किम्पुरुषैः सह प्रत्यहं वैभ्राजनामकस्य बाह्योद्यानस्योपभोगं कुर्वन्ति ॥ ८ ॥

हिन्दी—जिस अलका में जिनके घरों में अपार सम्पत्ति भरी पड़ी है, ऐसे कामुक लोग देवाङ्गनारूपी वेश्याओं अर्थात् अप्सराओं के साथ वार्तालाप करते हुए, कुबेर के यश का मधुर एवं ऊँचे स्वर में गान करते हुए किन्नरों के साथ वैभ्राज नामक बाह्य उद्यान का आनन्द लेते हैं ।

समासः—न क्षय्याः अक्षय्याः (नञ्०) । भवनेषु इति=अन्तर्भवनम् (अव्ययीभाव विभक्त्यर्थ) अन्तर्भवने निधयः अन्तर्भवननिधयः (स० त०) अक्षय्याः अन्तर्भवननिधयः येषां ते=अक्षय्यान्तर्भवननिधयः (बहु०) विबुधानां वनिताः विबुधवनिता (ष० तत्०), वारे मुख्याः वारमुख्याः (स० तत्०) विबुध-वनिता एव वारमुख्याः विबुध-वनिता-वारमुख्या (रूपक०) ता एव सहाया येषां ते=विबुधवनिता-वारमुख्यासहायाः (बहु०) । बद्धः आलापो यैस्तैः=बद्धालापाः (बहु०) । अहनि अहनि इति प्रत्यहम् (वीप्सारूपयथाऽर्थे अव्ययीभाव) रक्तः कण्ठः येषान्ते रक्तकण्ठाः (बहु०) तैः । धनानां पतिः= धनपतिः (ष० तत्०) तस्य यशः धनपतियशः (ष० तत्०) तत् । वैभ्राज्यम् आख्या यस्य तत् वैभ्राजाख्यम् (बहु०) ।

कोशः—वारस्त्री गणिका वेश्या रूपाजीवाथ सा जनैः । सद्वृत्ता वारमुख्या स्यात्, इत्यमरः । स्यात्किन्नरः किम्पुरुषः तुरङ्गवदनो मयुः, इत्यमरः । पुमाना क्रीड उद्यानं राज्ञः साधारणं वनम्, इत्यमरः ।

टिप्पणी—क्षेतुं योग्यम् इस विग्रह में 'क्षि' धातु से "क्षय्यजय्यौ शक्यार्थे"

इस सूत्र से "यत्" प्रत्यय करके धातु को गुण, अयादेश आदि करके "भव्य" रूप निष्पन्न किया जाता है। अन्तर्भवनम्—यहाँ "अव्ययं विभक्ति समीप" इत्यादि सूत्र से विभक्त्यर्थ में नित्य अव्ययीभाव समास हुआ है। आलापाः—"आङ्" उपसर्गपूर्वक "लप्" धातु से भाव में "घञ्" प्रत्यय करके वृद्धयादि करके "आलाप" शब्द निष्पन्न होता है, उक्त रूप प्रथमा के बहुवचन का है। बद्धालापाः—इसके स्थान पर "बद्धापानम्" ऐसा भी पाठान्तर मिलता है। वहाँ बद्धम् आपानं यस्मिस्तद् बद्धापानम् ऐसा विग्रह करके और वह बहिरुपवनम् का विशेषण होगा। उद्गायद्भिः—उद् उपसर्गपूर्वक "गै" धातु से लट् लकार के स्थान पर शतृ प्रत्यय करके तृतीया विभक्ति के बहुवचन का यह रूप होगा। वैभ्राजम्–विभ्राजस्येदम् इस विग्रह में "विभ्राज" शब्द से "तस्येदम्" इस सूत्र से "अण्" प्रत्यय करके "वैभ्राजम्" ऐसा रूप निष्पन्न होता है ॥ ८ ॥

अलङ्कार—यहाँ पर भी "उदात्त" अलङ्कार है ॥ ८ ॥

गत्युत्कम्पादलक-पतितैर्यत्रमन्दार-पुष्पैः,
पत्रच्छेदैः कनककमलैः कर्णविभ्रंशिभिश्च ।
मुक्ताजालैः, स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै-
र्नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥९॥

अन्वयः—यत्र, कामिनीनाम्. नैशः, मार्गः, सवितुः, उदये, गत्युत्कम्पात्, अलक-पतितैः, मन्दारपुष्पैः, पत्रच्छेदैः, कर्णविभ्रंशिभिः, कनक-कमलैः, मुक्ता-जालैः, स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैः, हारैश्च, सूच्यते ॥ ९ ॥

व्याख्या—यत्र=अलकायाम्, कामिनीनाम्=अभिसारिकाणाम्, नैशः=निशासम्बन्धि, मार्गः=अध्वा, सवितुः=दिनकरस्य, उदये=उदिते, सति, गत्युत्कम्पात्=गमनसञ्चलनात्, अलक-पतितैः=चूर्णकुन्तलध्वस्तैः, मन्दार-पुष्पैः=मन्दारकुसुमैः. पत्रच्छेदैः=किसलयखण्डैः, कर्णविभ्रंशिभिः=श्रोत्रच्युतैः, कनक-कमलैः=स्वर्णपद्मैः, मुक्ताजालैः=मौक्तिक-सरैः, स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैः=कुच-प्रदेश-त्रुटित-तन्तुभिः, हारैश्च=स्रग्भिश्च, सूच्यते=ज्ञाप्यते ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—यत्र = जिस अलका में, कामिनीनाम् = अभिसारिकाओं का, नैशो मार्गः = रात्रि का मार्ग, सवितुः = सूर्य के, उदये = उदित होने पर, गत्युत्कम्पात् = चलने के समय हिलने के कारण, अलक-पतितैः = घुंघराले बालों से गिरे, मन्दार-पुष्पैः = मन्दार के फूलों के द्वारा, पत्रच्छेदैः = पत्तों के टुकड़ों से, कर्ण-विभ्रंशिभिः = कान से गिरे, कनक-कमलैः = स्वर्ण कमलों के द्वारा, मुक्ताजालैः = मोतियों की लरियों से, स्तनपरिसरच्छिन्न-सूत्रैः = और स्तन-प्रदेश से टूटे हुए सूत्र वाली, हारैश्च = मोती की मालाओं के द्वारा, सूच्यते = सूचित होता है ॥ ९ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! यस्यामलकायामभिसारिकाणां रात्रिपन्थाः सूर्योदये सति गमन-काले सञ्चलनेन पूर्ण-कुन्तलध्वस्तैः मन्दारकुसुमैः, मन्दार-किसलय-सकलैः, श्रोत्रच्युतैः स्वर्ण-पद्मैः मौक्तिकसरैः कुचप्रदेशेषु विच्छिन्नतन्तुभिः मौक्तिकस्रग्भिश्च सूच्यते ॥ ९ ॥

हिन्दी—हे मेघ ! जिस अलका में अभिसारिकाओं का रात्रि का मार्ग चलने के समय घुँघराले बालों से गिरे हुए मन्दार के फूलों से, मन्दार के पत्तों के टुकड़ों से, कान से गिरे स्वर्ण-कमलों से, (बालों में गुँथे) मोतियों के लड़ों से एवं स्तनप्रदेश पर टूटे हुए सूत्र वाली मोती की मालाओं से दिन में सूचित (अनुमानित) होता है ॥ ९ ॥

समासः—गत्या उत्कम्पः = गत्युत्कम्पः (तृ० तत्०) तस्मात् । अलकेभ्यः पतितानि = अलकपतितानि (प० तत्०) तैः । मन्दारस्य पुष्पाणि = मन्दार-पुष्पाणि (ष० तत्०) तैः । पत्राणां छेदाः = पत्रच्छेदाः (ष० तत्०) तैः । स्तनयोः परिसरः स्तनपरिसरः (ष० तत्०) । छिन्नानि सूत्राणि येषां ते = छिन्नसूत्राः (बहु०), स्तन-परिसरे छिन्नसूत्राः = स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्राः (स० तत्०) तैः ।

कोशः—मन्दारः पारिजातकः, इत्यमरः । अलकाश्चूर्ण-कुन्तलाः, इत्यमरः । पर्यन्तभूः परिसरः, इत्यमरः । स्वर्णं सुवर्णं कनकम्, इत्यमरः ।

टिप्पणी–कामिनीनाम्–प्रशस्तः कामोऽऽस्यासामिति कामिन्यः तासाम् । चाणक्य ने "आहारो द्विगुणः स्त्रीणां बुद्धिस्तासां चतुर्गुणाः । षड्गुणो व्यवहारश्च कामश्चाष्टगुणः स्मृतः ।" ऐसा स्त्रियों के सम्बन्ध में लिखा है। अतः स्त्री को कामिनी कहा जाता है, क्योंकि उनमें पुरुषों की अपेक्षा आठगुणा अधिक कामाऽऽवेश रहता है। यहाँ कामिनी का अर्थ सर्वसाधारण स्त्री नहीं अपितु "अभिसारिका" का ग्रहण होता है। नैशः–निशायां भवः नैशः यहाँ "निशा" शब्द से "तत्र भवः" इस सूत्र से अण् प्रत्यय और वृद्धि की गयी है। उत्कम्पः–"उत्" उपसर्गपूर्वक "कम्प" धातु से भाव में "घञ्" प्रत्यय करके "उत्कम्पः" ऐसा रूप निष्पन्न होता है। पतितः—"पत्" धातु से 'क्त' प्रत्यय करके "पतित" शब्द निष्पन्न होता है। कर्णविभ्रंशिभिः—कर्णेभ्यः विभ्रंश्यन्तीति तच्छीलानि इस विग्रह में कर्ण उपपदक एवं "वि" उपसर्गपूर्वक "भ्रंश्" धातु से "णिनि" प्रत्यय करके उपपद समास करके "कर्णविभ्रंशिन्" ऐसा शब्द निष्पन्न होता है। उक्त रूप तृतीया के बहुवचन का है। सूच्यते–'सूच्' धातु से "हेतुमति च" इस सूत्र से णिच् प्रत्यय लाकर पुनः धातु संज्ञा करके लट् लकार "णिचश्च" इस सूत्र से आतमनेपद हो जायेगा, प्रथमपुरुष के एकवचन में सूच्यते ऐसा रूप बन जायेगा।

अलङ्कारः—यहाँ रात्रिमार्ग सूचन रूपी एक कार्य के लिए अलक से गिरे हुए मन्दार-पुष्प आदि अनेक कारणों का कथन होने के कारण "समुच्चय" अलङ्कार एवं गिरे हुए मन्दार पुष्पों के द्वारा रात्रि मार्ग रूप साध्य का ज्ञान होने से "अनुमान" अलङ्कार है ॥ ९ ॥

मत्वा देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद्वसन्तं
प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथः षट्पदज्यम् ।
सभ्रूभङ्गप्रहित-नयनैः कामिलक्ष्येष्वमोघै-
स्तस्यारम्भश्चतुर-वनिता-विभ्रमैरेव सिद्धः ॥१०॥

अन्वयः—यत्र, मन्मथः, धनपतिसखम्, देवम्, साक्षात्, वसन्तम्, मत्वा,

भयात्, षट्पदज्यम्, चापम्, प्रायो, न, वहति। तस्य, आरम्भः, सभ्रूभङ्ग-प्रहितनयनैः, कामिलक्ष्येषु, अमोघैः, चतुर-वनिता-विभ्रमैः, एव सिद्धः ॥ १० ॥

व्याख्या—हे मेघ ! यत्र = यस्यामलकायाम्, मन्मथः = मदनः, धनपति-सखम् = कुबेर-मित्रम्, देवम् = शिवम्, साक्षात् = सद्यः, वसन्तम् = वर्तमानम्, मत्वा = ज्ञात्वा, भयात् = त्रासात्, षट्पदज्यम् = भ्रमरमौर्विकम्, चापम् = धनुः, प्रायः = अधिकांशतः, न वहति = न धारयति। यदि मन्मथः धनुर्न धारयति तस्य कार्यसिद्धिस्तर्हि कथं भवतीत्याकांक्षायामाह—तस्य = कामस्य, आरम्भः = व्यापारः, सभ्रूभङ्गप्रहितनयनैः = भ्रूभङ्गसहितप्रक्षिप्ता-वलोकनैः, कामि-लक्ष्येषु = कामुकशरव्येषु, अमोघैः = सफलैः, अनिष्फलैरिति यावत्। चतुर-वनिताविभ्रमैः = पटुविलासिनीविलासैः, एव, सिद्धः = साधितः ॥ १० ॥

शब्दार्थः—यत्र = जिस अलका में, मन्मथः = कामदेव, धनपतिसखम् = कुबेर के मित्र, देवम् = शङ्कर को, साक्षात् = शरीर रूप से, वसन्तम् = निवास करते हुए, मत्वा = जानकर (न कि देखकर) भयात् = डर से, षट्पदज्यम् = भ्रमरों की ज्या (डोरी) वाले, चापम् = धनुष को, प्रायः न वहति = प्रायः नहीं धारण करता है, तस्य = कामदेव का, आरम्भः = कार्य (तो) सभ्रू-भङ्गम् = भ्रूभङ्ग के साथ, प्रहितनयनैः = फेंकी गयी दृष्टि वाले (कटाक्ष), कामिलक्ष्येषु = कामुकपुरुष रूपी लक्ष्यों पर, अमोघैः = निष्फल नहीं होने वाले, चतुर-वनिता-विभ्रमैः = चतुर स्त्रियों के विलासों से ही, सिद्धः = पूरा हो जाता है ॥ १० ॥

भावार्थः—हे मेघ ! यस्यामलकायां कामदेवः स्वसुहृत्प्रेम्णा शङ्कर शरीरेण वसन्तं ज्ञात्वा भीत्या प्रायः भ्रमरमौर्विकं चापं न धारयति। तस्य व्यापारस्तु भ्रूभङ्गसहित-प्रक्षिप्तदृष्टिभिः कामिजनेष्वनिर्मोघैः पटुविलासिनी-विलासैः निष्पन्नो भवति ॥ १० ॥

हिन्दी—हे मेघ ! जिस अलका में कामदेव कुबेर के मित्र शङ्कर को शरीर धारण कर निवास करते हुए जानकर डर के कारण भ्रमरों की डोरी वाले धनुष को नहीं धारण करता है। उसका काम तो भ्रूभङ्ग के साथ फेंकी

गयी दृष्टि वाले कामी लोगों पर अमोघ चतुर स्त्रियों के विलास से ही पूरा हो जाता है ॥ १० ॥

समासः—मतो मथः=मन्मथः (ष० तत्०)। धनस्य पतिः=धनपतिः (ष० तत्०) धनपतेः सखा=धनपतिसखः (ष० तत्०) तम्। षट् पदानि येषान्ते षट्पदाः (बहु०) षट्पदा एव ज्या यस्य स षट्पदज्यः (बहु०) तम्। भ्रुवोर्भङ्गः (ष० तत्०) भ्रूभङ्गेन सहितम्=सभ्रूभङ्गम् (तुल्ययोग बहु०) सभ्रूभङ्गं प्रहितानि=सभ्रूभङ्गप्रहितानि (सुप्सुपेति समासः) सभ्रूभङ्गानि नयनानि येषु तैः, सभ्रूभङ्गप्रहितनयनैः (बहु०) कामिन एव लक्ष्याणि तेषु=कामिलक्ष्येषु (रूपक०) न मोघाः=अमोघाः (नञ्०) तैः। चतुराश्च ताः वनिताः=चतुर-वनिताः (कर्म०) तासां विभ्रमाः चतुर-वनिता विभ्रमाः (ष० तत्०) तैः।

कोशः—कुवेरस्त्र्यम्बकसखः, इत्यमरः। मदनो मन्मथो मारः, इत्यमरः। धनुश्चापौ धन्वशरासनकोदण्डकार्मुकम्, इत्यमरः। स्त्रीणां विलास-विव्वोक-विभ्रमाः, इत्यमरः।

टिप्पणी—देवः—दीव्यतीति देवः "दिव्" धातु से "पचाद्यच्" करके गुण करके देवः बनता है। वसन्तम्—निवासार्थक 'वस्' धातु से लट् लकार के स्थान पर "शतृ" आदेश करके नुमादि करके द्वि० विभक्ति में "वसन्तम्" ऐसा बनता है। षट्पदज्यम्—कवि-प्रसिद्धि है कि भ्रमरों की पंक्ति ही कामदेव के धनुष की प्रत्यञ्चा है। यह उचित भी है। यदि उसका धनुष "पुष्प" का है तो प्रत्यञ्चा भ्रमर की होगी ही। कामी—कामोऽस्त्यस्येति "कामी" यहाँ "अत इनिठनौ" इस सूत्र से इनि प्रत्यय हुआ है। सिद्धः—"सिध्" धातु से क्त प्रत्यय लाकर "सिद्धः" निष्पन्न होता है।

अलङ्कारः—इस श्लोक में कामियों में लक्ष्यत्व का आरोप होने से रूपक एवं भ्रमररूपी प्रत्यञ्चावाली धनुष यद्यपि धारणयोग्य है फिर भी उसका निषेध अर्थात् सम्बन्ध में असम्बन्ध की उक्ति होने के कारण अतिशयोक्ति अलङ्कार

है। एवं दोनों के अङ्गाङ्गिभावतया रहने के कारण "संकर" अलङ्कार है ॥ १० ॥

वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं
पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पान् ।
लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्या-
मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः ॥११॥

अन्वयः—यस्याम्, चित्रं, वासः, नयनयोः, विभ्रमाऽऽदेशदक्षम्, मधु, किसलयैः, सह, पुष्पोद्भेदम्, भूषणानाम्, विकल्पान्, चरणकमलन्यासयोग्यम्, लाक्षारागम्, च सकलम्, अबलामण्डनम्, एकः, कल्पवृक्षः, सूते ॥ ११ ॥

व्याख्या—यस्याम्=अलकायाम्, चित्रम्=विविध-वर्णम्, वासः=वस्त्रम्, नयनयोः=अक्ष्णोः, विभ्रमादेशदक्षम्=विलास-शिक्षण-चतुरम्, मधु=मद्यम्, किसलयैः=नूतनपल्लवैः, सह=साकम्, पुष्पोद्भेदम्=कुसुमोद्गमम्, भूषणानाम्=अलङ्काराणाम्, विकल्पान्=प्रकारान्, चरणकमलन्यासयोग्यम्=पादपद्मालङ्कृतियोग्यम्, लाक्षारागम्=अलक्त-रागम्, च=तथा, सकलम्=सम्पूर्णम्, चतुर्विधमपीत्यर्थः । अबलामण्डनम्=वनिता-प्रसाधननिचयम्, एकः=केवलः, एकाकीत्यर्थः । कल्पवृक्षः=कल्पतरुः, सूते=उत्पादयति ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—यस्याम्=जिस अलका में, चित्रं=रंग विरंगे, वासः=वस्त्र, नयनयोः—आँखों को, विभ्रमादेशदक्षम्=विलासों की शिक्षा देने में निपुणः, मधु=मद्य, किसलयैः=नवीन पल्लवों के, सह=साथ, पुष्पोद्भेदम्=फूलों का आविर्भाव, भूषणानाम्=गहनों का, विकल्पान्=भेद (प्रकार)। चरणकमलन्यासयोग्यम्=और चरण-कमल में लगाने योग्य, लाक्षारागं च=महावर (आलता) रंग, सकलम्=सभी, अबलामण्डनम्=स्त्रियों की प्रसाधन सामग्री, एकः=एक, कल्पवृक्षः=कल्पवृक्ष (ही), सूते=उत्पन्न करता है ॥ ११ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! यस्यामलकायामेकः कल्पवृक्ष एव विविध-वर्णं वस्त्रम्, नेत्रयोः विलास-शिक्षण-निपुणं मद्यम्, किसलयैः साकं कुसुमाविर्भावम् भूषणानामनेकभेदान्, पादपद्मालङ्कृतियोग्यमालक्तकरसमित्यर्थः सर्वमेव वनिताप्रसाधन-समूहमुत्पादयति ॥ ११ ॥

हिन्दी—हे मेघ ! जिस अलका में एक कल्पवृक्ष ही, अनेक रंग के वस्त्र, आँखों को विलास की शिक्षा देने में कुशल-मद्य, नवीन पत्तों के साथ फूलों का आविर्भाव, अनेक प्रकार के आभूषण और चरण-कमल में लगाये जाने योग्य महावर या मेंहदी, इस तरह स्त्रियों की सम्पूर्ण प्रसाधन-सामग्री को उत्पन्न करता है ॥ ११ ॥

समासः—विभ्रमाणाम् आदेशः = विभ्रमादेशः (ष० तत्०) तस्मिन् दक्षः= विभ्रमादेशदक्षः (स० तत्०)। पुष्पाणाम् उद्भेदः = पुष्पोद्भेदः (ष० तत्०) तम् । चरणौ कमले इव चरणकमलम्, (उपमितकर्म) तयोर्न्यासः चरणकमल-न्यासः (ष० तत्०) तस्मिन् योग्यम् चरणकमलन्यासयोग्यम् (स० तत्०) तम् । अविद्यमानं बलं यस्या सा अबला (न० बहु०), तासां अबलानां मण्डनं अबलामण्डनम् (ष० तत्०) ।

कोशः—वस्त्रमाच्छादनं वासश्चैलं वसनमंशुकम्, इत्यमरः । मधुमद्ये पुष्प-रसे क्षौद्रेऽपि, इत्यमरः । परिष्कारो विभूषणम् मण्डनञ्च, इत्यमरः । एकाकीत्वेव एककः, इत्यमरः ।

टिप्पणी—आदेशः–"आङ्" उपसर्गपूर्वक "दिश्" धातु से घञ् प्रत्यय करके "आदेशः" ऐसा निष्पन्न होता है । उद्भेदः–"उद्" उपसर्गपूर्वक "भिद्" धातु" से "घञ्" प्रत्यय करके "उद्भेदः" ऐसा रूप निष्पन्न होता है । भूषणम्— "भूष्" धातु से करण में "करणाधिकरणयोश्च" इस सूत्र से "ल्युट्" प्रत्यय करके "भूषण" शब्द निष्पन्न होता है । **रागः**—रज्यतेऽनेन इस विग्रह में रागार्थक "रञ्ज्" धातु से करण अर्थ में "घञ्" प्रत्यय से "रागः" रूप निष्पन्न

हुआ है। सूते—अभिषव "षूङ्" धातु के लट्लकार के प्रथम पुरुष के एक-वचन का यह रूप है।

अलङ्कार:—यहाँ अंग, वास, अलङ्कार, मद्य आदि बहुत-से कार्य एक कल्प-वृक्ष के हैं, अत: "तुल्ययोगिता" अलङ्कार है। तथा "चरणकमल" यहाँ लुप्तोपमा है, एवं अलङ्कारों का अङ्गाङ्गिभाव होने से "संकर" अलंकार है ॥ ११ ॥

तत्रागारं धनपतिगृहानुत्तरेणास्मदीयं
दूराल्लक्ष्य सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन ।
यस्योपान्ते कृतकतनयः कान्तया वर्धितो मे
हस्तप्राप्यस्तबकनमितो बालमन्दार-वृक्षः ॥१२॥

अन्वय:—तत्र, धनपतिगृहान्, उत्तरेण, अस्मदीयम्, आगारम्, सुरपति-धनुश्चारुणा, तोरणेन, दूरात्, लक्ष्यम्। यस्य, उपान्ते, मे, कान्तया, वर्द्धितः, कृतकतनयः, हस्तप्राप्यस्तबक नमितः, बालमन्दारवृक्षः, (वर्तते) ॥ १२ ॥

व्याख्या—इतः पूर्वं अलकावर्णनङ्कृतमतः स्वभवन-वर्णनङ्करोति यक्षः तत्र=अलकायाम्, धनपतिगृहान्=कुबेरहर्म्यात्, उत्तरेण=उदीच्या, अस्मदीयम्=मामकीनम्, आगारम्=गृहम्, सुरपतिधनुश्चारुणा=इन्द्रचाप-मनोहरेण, तोरणेन=बहिर्द्वारेण, दूराल्लक्ष्यम्=विप्रकृष्टादपि दृश्यम्, (अस्ति)। यस्य=भवनस्य, उपान्ते=समीपे, मे=मम, कान्तया=प्रियया, वर्द्धितः=एधितः, पोषित इत्यर्थः, कृतकतनयः=कृत्रिम-पुत्रः, हस्तप्राप्यस्तबक-नमितः=करावलम्बनयोग्यकदम्बकनम्रीभूतः, बालमन्दारवृक्षः=बालसुरतरुः (विद्यते)।

शब्दार्थ:—तत्र=उस अलका में, धनपतिगृहान्=कुबेर के घर से, उत्तरेण=उत्तर दिशा की ओर, अस्मदीयम्=मेरा, आगारम्=घर, सुरपति-धनुश्चारुणा=इन्द्रधनुष की तरह सुन्दर, तोरणेन=बाहर के दरवाजे के द्वारा, दूरात्=दूर से भी, लक्ष्यम्=देखने योग्य (जिसे देख सकते) हैं। यस्य=जिस, मेरे घर के, उपान्ते=समीप में, मे=मेरी, कान्तया=प्रिया के द्वारा

वर्द्धितः=पाला गया (बढ़ाया गया), कृत्रिमपुत्रः=दत्तकपुत्र, हस्तप्राप्य-स्तवकनमितः=हाथ से पाने योग्य गुच्छों से झुका हुआ, बालमन्दारवृक्षः=नया मन्दार का वृक्ष है।

भावार्थः—हे मेघ ! धनगृहादुत्तरस्यां दिशि इन्द्रचाप-सुन्दरेण बहिर्द्वारेण दृश्यं मे गेहमस्ति। यस्य समीपे मत्प्रिया-दत्तकपुत्र इव वर्धितो बालमन्दार-वृक्षोऽस्ति ॥ १२ ॥

हिन्दी—हे मेघ, कुबेर के घर से उत्तर दिशा की ओर, इन्द्रधनुष के समान बाहरी दरवाजे के द्वारा दूर से भी देखने (पहचानने) योग्य मेरा घर है। जिनके समीप मेरी प्रिया के द्वारा दत्तक पुत्र की तरह बढ़ाया गया, हाथ से पाने योग्य गुच्छों वाला नया मन्दार का वृक्ष है ॥ १२ ॥

समासः—धनानां पतिः धनपतिः (ष० तत्०) तस्य गृहाः धनपति-गृहाः (ष० तत्०) तान्। सुराणां पतिः सुरपतिः (ष० तत्०) तस्य धनुः= सुरपतिधनुः (ष० तत्०) तदिव चारु=सुरपतिधनुश्चारु (उपमितकर्म०) ते। कृतकश्चासौ तनयः कृतकतनयः (कर्म) हस्तेन प्राप्याः=हस्तप्राप्याः (तृ० तत्०) हस्तप्राप्याश्च ते स्तबकाः = हस्त-प्राप्यस्तबकाः (कर्म) तैः नमितः हस्तप्राप्यस्तबकनमितः (तृ० तत्०)। बालश्चासौ मन्दारवृक्षश्च बालमन्दारवृक्षः (कर्म०)।

कोशः—गृहाः पुंसि च भूम्न्येव, इत्यमरः। निशान्त-वस्त्यसदनं भवना-गारमन्दिरम्, इत्यमरः। स्याद्गुच्छकस्तु स्तबकः, इत्यमरः। विद्यादगारमागा-रम्, इति द्विरूप कोशः।

टिप्पणी—धनपतिगृहान्—यहाँ "एनपा द्वितीया" से द्वितीया विभक्ति हुई है, क्योंकि "उत्तरेण" इस एनप् प्रत्ययान्त का योग है। **अस्मदीयम्**= अस्माकमिदम् इस विग्रह में "अस्मद्" शब्द की "त्यदादीनि च" इस सूत्र से वृद्धि संज्ञा करके "वृद्धाच्छः" इस सूत्र से "छ" प्रत्यय हुआ और उसके स्थान

पर "आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्" इस सूत्र से "ईय आदेश करके "अस्मदीय" ऐसा रूप निष्पन्न होता है (अस्मद्+ईय)। लक्ष्यम्— णिजन्त लक्षि धातु से "ण्यत्" प्रत्यय करके "लक्ष्य" ऐसा रूप साधु होता है। वर्धितः—वर्धनार्थक "वृध्" धातु से "क्त" प्रत्यय करके गुणादि करके "वर्धित" ऐसा रूप बना है। कृतकः—कृत एव कृतकः "कृत" शब्द से स्वार्थ में कन् प्रत्यय हुआ है। नमितः—णिजन्त "नमि" धातु से "क्त" प्रत्यय करके "नमितः" ऐसा रूप बनता है।

अलङ्कारः—"सुरपति-धनुश्चारुणा" यहाँ "लुप्तोपमा" अलङ्कार है ॥१२॥

वापी चास्मिन् मरकत-शिलाबद्ध-सोपान-मार्गा
हैमैश्छन्ना विकचकमलैः स्निग्धवैदूर्य-नालैः।
यस्यास्तोये कृत-वसतयो मानसं सन्निकृष्टं
नाध्यासन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः ॥१३॥

अन्वयः—अस्मिन्, मरकत-शिला-बद्धसोपानमार्गा, स्निग्धवैदूर्यनालैः, हैमैः, विकच-कमलैः, छन्ना, वापी च। यस्याः, तोये, कृतवसतयः, हंसाः, त्वाम्, प्रेक्ष्य, अपि व्यपगतशुचः; सन्निकृष्टम्, मानसम्, न अध्यासन्ति।

व्याख्या—अस्मिन्=मद्भवने, मरकत-शिला-बद्ध-सोपानमार्गा=गारुत्मतमणिशिलानिर्मिताऽवतरणमार्गा, स्निग्धवैदूर्यनालैः=मसृणविदूरमणिनालैः, हैमैः=सौवर्णैः, विकचकमलैः=प्रफुल्लपद्मैः, छन्ना=अभिव्याप्ता, वापी च= दीर्घिका च (अस्ति)। यस्याः=दीर्घिकायाः, तोये=जले, कृतवसतयः= रचित-निवासाः, हंसाः=चक्राङ्गाः, त्वाम्=मेघम्, प्रेक्ष्य अपि=दृष्ट्वा अपि व्यपगतशुचः=नष्टशोकाः (सन्तः), संनिकृष्टम्=संनिहितम्, मानसम्=मानस-सरोवरम्, न अध्यासन्ति=न स्मरिष्यन्ति ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—अस्मिन्=इस मेरे घर में, मरकतशिला-बद्धसोपानमार्गा=मरकतमणि से निर्मित सीढ़ियों वाली, स्निग्धवैदूर्यनालैः=चिकने वैदूर्य रत्न के नाले वाले, हैमैः=स्वर्णनिर्मित (सुनहले), विकचकमलैः=प्रफुल्लितकमलों से, छन्ना=ढँकी हुई, वापी=बावली (है) यस्याः=जिस वापी के, तोये=जल में, कृतवसतयः=रहने वाले, हंसाः=हंसगण, त्वाम्=तुमको, प्रेक्ष्य अपि=देखकर भी, व्यपगतशुचः=शोकरहित होकर, संनिकृष्टम्=समीप में विद्यमान, मानसम्=मानसरोवर को, न अध्यामन्ति=स्मरण नहीं करेंगे ॥ १३ ॥

भावार्थः—मद्गृहे मरकतमणि-मयसोपानपन्था मसृणवैदूर्यमणिनालैः सौवर्णैः विकसितपद्मैः व्याप्ता वापी अस्ति । यस्याः जले निवसिता हंसा त्वामवेक्ष्याऽपि समीपस्थमपि मानसं सरः व्यपगतदुःखाः सन्तः न स्मरिष्यन्ति ॥१३॥

हिन्दी—(हे मेघ !) मेरे घर में मरकतमणि से बनी सीढ़ीवाली, चिकने वैदूर्यमणि के नाल वाले विकसित स्वर्ण कमलों से व्याप्त वापी है । जिस वापी के जल में निवास करने वाले हंस शोकरहित होकर, तुमको देखकर भी समीप में स्थित मानसरोवर का स्मरण नहीं करेंगे ॥ १३ ॥

समासः—मरकतान्येव शिलाः=मरकतशिलाः (रूपक) ताभिः बद्धः=मरकतशिलाबद्धः (तृ० तत्०), सोपानानां मार्गः=सोपानमार्गः (ष० तत्०), मरकतशिलाबद्धः सोपानमार्गो यस्याः सा मरकतशिला-बद्ध-सोपान-मार्गा (बहु०) । स्निग्धानि वैदूर्याणि नालानि येषां तानि=स्निग्धवैदूर्यनालानि (बहु०) तैः । विकचानि च तानि कमलानि विकचकमलानि (कर्म०) तैः । कृता वसतिर्यैः ते कृतवसतयः (बहु०) । व्यपगता शुक् येषां ते व्यपगतशुचः (कर्म०) ।

कोशः—आरोहणं स्यात्सोपानम्, इत्यमरः । गारुत्मतं मरकतमणिरश्मगर्भो हरिन्मणिः, इत्यमरः । वापी तु दीर्घिका, इत्यमरः । मन्युशोकौ तु शुक् स्त्रियाम्, इत्यमरः । समीपे निकटाऽऽसन्न सन्निकृष्ट सनीडवत्, इत्यमरः ।

टिप्पणी—वैदूर्या—"विदूरात्प्रभवन्ति" इस विग्रह में "विदूराञ्ञ्य:" इस सूत्र से "विदूर" शब्द से "ञ्य" प्रत्यय करके आदिवृद्धि करके "वैदूर्य" शब्द निष्पन्न होता है। "विदूर" एक पर्वत है। वहाँ पर होने वाले मणियों को वैदूर्यमणि कहते हैं। हैम:—हेम्नो विकार: इस विग्रह में "तस्य विकार:" इस सूत्र से "अण्" प्रत्यय करके "हैम:" शब्द निष्पन्न होता है। छन्ना—णिजन्त "छदि" धातु से "क्त" प्रत्यय करके "छन्न" रूप बनाया जाता है। प्रेक्ष्य:—"प्र" उपसर्गपूर्वक "क्षि" धातु से क्त्वा प्रत्यय करके उसके स्थान पर "ल्यप्" करके प्रेक्ष्य रूप निष्पन्न होता है। व्यपगत:—"वि" एवं "अप" उपसर्गपूर्वक "गम्" धातु से "क्त" प्रत्यय करके "व्यपगत" शब्द निष्पन्न होता है। संनिकृष्टम्–"कृष्" धातु से "क्त" प्रत्यय करके "सन्निकृष्ट" रूप निष्पन्न होता है। ऐसी कवि प्रसिद्धि है कि वर्षाऋतु में जल के गन्दा हो जाने के कारण हंस लोग "मानसरोवर" चले जाते हैं, परन्तु यहाँ के घर की वापी का जल ही इतना स्वच्छ है कि हंस लोग मेघ को देखकर अर्थात् वर्षाऋतु जानकर भी मानसरोवर जाने की कौन बात, उसका स्मरण भी नहीं करते हैं।

अलङ्कार:—यहाँ वर्षाऋतु रूप कारण के होने पर भी मानसरोवर स्मरण रूप कार्य के न होने से "विशेषोक्ति" अलङ्कार है। एवं लोकोत्तर सम्पत्ति का वर्णन होने से "उदात्त" अलङ्कार भी है। इस तरह दोनों के अंगांगि-भावतया स्थित होने से "संकर" अलङ्कार हुआ ॥ १३ ॥

तस्यास्तीरे रचितशिखर: पेशलैरिन्द्रनीलै:
क्रीडाशैल: कनककदलीवेष्टन-प्रेक्षणीय:।
मद्गेहिन्या: प्रिय इति सखे! चेतसा कातरेण
प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि ॥१४॥

अन्वय:—तस्या:, तीरे, पेशलै:, इन्द्रनीलै:, रचित-शिखर:, कनककदलीवेष्टन-

प्रेक्षणीयः, क्रीडाशैलः, (अस्ति) हे सखे ! उपान्तस्फुरिततडितम्, त्वाम्, प्रेक्ष्य, मद्गेहिन्याः, प्रिय इति, कातरेण, चेतसा, तमेव, स्मरामि ॥ १४ ॥

व्याख्या—तस्याः=दीर्घिकायाः, तीरे=तटे, पेशलैः=सुन्दरैः, इन्द्रनीलैः=इन्द्रनीलनामकरत्नैः, रचित-शिखरः=निर्मितशृङ्गः, कनककदलीवेष्टन-प्रेक्षणीयः=हैमरम्भापरिवेषावलोकनीयः, क्रीडाशैलः=केलिगिरिः अस्तीति भावः। हे सखे !=हे मित्र ! उपान्तस्फुरिततडितम्=समीपस्फुरितविद्युतम्, त्वाम्=मेघम्, प्रेक्ष्य=दृष्ट्वा, मद्गेहिन्याः=मत्प्रियायाः, प्रियः=अभिष्टः, इति=अतः कातरेण=कादर्ययुक्तेन, चेतसा=मनसा, तमेव=क्रीडापर्वतमेव, स्मरामि=स्मरणङ्करोमि ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—तस्याः=उस वापी के, तीरे=तीर पर, पेशलैः=सुन्दर, इन्द्रनीलैः=इन्द्रनीलमणियों से, रचितशिखरः=बने हुए शिखरों वाला, कनक-कदली-वेष्टन-प्रेक्षणीयः=स्वर्ण (सुनहले) केले के वृक्षों से परिवेष्टित होने से देखनेयोग्य, क्रीडाशैलः=केलिपर्वत (खलक पर्वत) है। हे सखे !=हे मित्र ! उपान्तस्फुरिततडितम्=जिसके समीप चमकती हुई बिजली है (ऐसे), त्वाम्=तुमको, प्रेक्ष्य=देखकर, मद्गेहिन्याः=मेरी-प्रिया का, प्रियः=वह पर्वत प्रिय है, इति=इस कारण, कातरेण=कातर, चेतसा=मनसे, तमेव=उसी क्रीडापर्वत का, स्मरामि=स्मरण कर रहा हूँ ॥ १४ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! मद्गेहवर्तिवाप्याः तटे इन्द्रनीलमणि-विरचितशृङ्गः स्वर्णरम्भापरिवेष्टन-दर्शनीयः क्रीडापर्वतो विद्यते। हे मित्र ! पार्श्वस्फुरित विद्युतम् (कान्तासहितमितिभावः) त्वां विलोक्य सः क्रीडापर्वतः मत्प्रियायाः प्रिय इति हेतुना तं क्रीडापर्वतमेव कातरेण मनसा स्मरामि ॥ १४ ॥

हिन्दी—(हे मेघ !) मेरे घर की वापी के तट पर इन्द्रनीलमणि से बने शिखरों वाला, स्वर्ण (सुनहले) केले के वृक्षों से घिरे होने के कारण दर्शनीय

क्रीड़ापर्वत है। हे मित्र ! जिसके पास में बिजली चमक रही है ऐसे तुम्हें देखकर यह क्रीड़ापर्वत मेरी प्रिया का प्रिय है, इसलिए उसी का स्मरण कर रहा हूँ ॥ १४ ॥

समास:—रचितानि शिखराणि यस्य स: रचितशिखर: (बहु०) कनकस्य कदल्य: = कनककदल्य: (ष० तत्०) तासां वेष्टनम्=कनककदलीवेष्टनम् (ष० तत्०) तेन प्रेक्षणीय: = कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीय: (तृ० तत्०)। क्रीडार्थ: शैल: = क्रीडाशैल: (मध्यमपदलोपी०)। स्फुरिता: तडित: यस्य स स्फुरित-तडित् (बहु०) उपान्तेषु स्फुरिततडित् = उपान्तस्फुरिततडित् (स० तत्०) तम्। मम गेहनी = मद्गेहनी (ष० तत्०) तस्या:।

कोश:—चारौ दक्षे च पेशल:, इत्यमर:। चित्तन्तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मन:, इत्यमर:। कदलीवारणबुसा रम्भामोचांशुमत्फला:, इत्यमर:।

टिप्पणी—प्रेक्षणीयम्—"प्र" उपसर्गपूर्वक "ईक्ष्" धातु से "तव्य-त्तव्यानीयर" इस सूत्र से "अनीयर्" प्रत्यय होकर प्रेक्षणीयम् ऐसा रूप निष्पन्न होता है। प्रेक्ष्य—यह शब्द भी "प्र" उपसर्गपूर्वक "ईक्ष्" धातु से क्त्वा प्रत्यय लाकर उसके स्थान में ल्यप् करके "प्रेक्ष्य" ऐसा रूप बनता है। गेहिनी—गेहमस्त्यस्या: इस विग्रह में "गेह" शब्द से इनि प्रत्यय करके स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् करके "गेहिनी" शब्द निष्पन्न होता है। एव—"एव" शब्द का (१) अयोगव्यवच्छेद (२) अन्ययोगव्यवच्छेद (३) अत्यन्ताऽयोगव्यव-च्छेद—इस प्रकार तीन व्यवच्छेद अर्थ समझे जाते हैं। प्रकृत में "तमेव स्मरामि" यहाँ अन्ययोगव्यवच्छेद है, अर्थात् उस क्रीड़ापर्वत से अन्य दूसरे पर्वतों का व्यवच्छेद हो रहा है, अभिप्राय यह है कि "उस क्रीड़ापर्वत का स्मरण कर रहा हूँ, किसी दूसरे पर्वत का नहीं।"

अलङ्कार:—इस श्लोक में "तमेव स्मरामि" इस जगह "स्मरण" अलङ्कार है एवं "इन्द्रनीलै: रचितशेखर:" इत्यादि स्थलों पर "उदात्त" अलङ्कार है। एवं दोनों का अङ्गाङ्गिभाव होने से "संकर" अलङ्कार है ॥१४॥

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केसरश्चात्र कान्तः
प्रत्यासन्नौ कुरबकवृतेर्माधवीमण्डपस्य ।
एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी
काङ्क्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनाऽस्याः ।।१५।।

अन्वयः—अत्र, कुरबकवृतेः, माधवीमण्डपस्य, प्रत्यासन्नौ, चलकिसलयः रक्ताशोकः, कान्तः, केसरश्च, एकः, मया, सह, तव, सख्याः, वामपादाभिलाषी, अन्यः, दोहदच्छद्मना, अस्याः, वदनमदिराम्, काङ्क्षति ।। १५ ।।

व्याख्या—अत्र=क्रीडाशैले, कुरबकवृतेः=कुरबकपरिवेष्टनस्य, माधवीमण्डपस्य=अतिमुक्तनिकुञ्जस्य, प्रत्यासन्नौ=समीपस्थौ, चलकिसलयः=चञ्चलनूतनपल्लवः, रक्ताशोकः=अशोकवृक्षविशेषः, कान्तः=सुन्दरः, केसरश्च=बकुलवृक्षश्च (स्तः) । एकः=तयोरन्यतरः, मया=यक्षेण, सह=साकम्, तव=मेघस्य, सख्याः=सखिप्रियायाः, मत्प्रियायाः इति भावः । वामपादाभिलाषी=सव्येतरचरण-प्रहारेच्छुकः, अन्यः=बकुलवृक्षः, दोहदच्छद्मना=वृक्षादिसंस्कारव्याजेन, अस्याः=त्वत्सख्याः, वदनमदिराम्=मुखमद्यम्, काङ्क्षति=अभिलषति ।।

शब्दार्थः—अत्र=उस क्रीडा-पर्वत पर, कुरबकवृतेः=कुरबक के घेरा वाले, माधवीमण्डपस्य=माधवी (अतिमुक्ता) के निकुञ्ज के, प्रत्यासन्नौ=समीप में, चलकिसलयः=चञ्चल किसलय वाला, रक्ताशोकः=लाल अशोक का वृक्ष, कान्तः=सुन्दर, केसरश्च=बकुलवृक्ष है । एकः=उन दोनों में पहला अशोकवृक्ष, मया सह=मेरे साथ, तव=तुम्हारी, सख्या=सखी के (मेरी प्रिया का), वामपादाभिलाषी=बायें चरण के प्रहार का इच्छुक (है), अन्यः=और दूसरा बकुलवृक्ष, दोहदछद्मना=दोहद-संस्कार के बहाने अस्याः=उस तुम्हारी सखी के, वदनमदिराम्=मुँह की मदिरा को, कांक्षति=चाहता है ।।

भावार्थः—हे मेघ ! तस्मिन् क्रीडापर्वते कुरबकवृक्षावेष्टितस्य मालती-निकुञ्जस्य चञ्चलकिसलयः रक्ताऽशोकः मनोहरः बकुलश्च समीपस्थौ वर्तते। तयोरेकः रक्ताशोकः मया साकं त्वत्सख्याः (मत्प्रियायाः) वामचरण-प्रहारम्, अपरो बकुलश्च मुखमद्यञ्चाकाङ्क्षति ॥ १५ ॥

हिन्दी—हे मेघ ! उस क्रीड़ापर्वत पर कुरबक के बाड़े (घेरे) से घिरे मालती-निकुञ्ज के समीप चञ्चल किसलय वाला रक्त अशोक और सुन्दर बकुल वृक्ष हैं। उनमें अशोक मेरे साथ तेरी सखी अर्थात् मेरी प्रिया के बायें पैर के प्रहार को, एवं बकुल उसकी मुँह की मदिरा को चाहता है।

समासः—कुरबका एव वृत्तिः यस्य सः—कुरबकवृत्तिः (बहु०) तस्य। माधवीनां मण्डपः=माधवीमण्डपः (ष० तत्०) तस्य। चलानि किसलयानि यस्य सः चलकिसलयः (बहु०) रक्तश्चासौ अशोकः रक्ताशोकः (कर्म०) वामश्चासौ पादः=वामपादः (कर्म०) वामपादमभिलषति तच्छीलः इति वामपादाभिलाषी (उपपद०)। दोहदस्य छद्म=दोहदछद्म (ष० तत्०) तेन।

कोशः—अतिमुक्तः पुण्ड्रकस्याद्वासन्ती माधवी लताः, इत्यमरः। अथ केसरे बकुलो वञ्जुलः, इत्यमरः। कपटोऽस्त्री व्याजदम्भोपधयश्छद्मकैतवे, इत्यमरः।

टिप्पणी—**कुरबक**—यह वसन्तऋतु में खिलनेवाला पुष्प-विशेष है। **प्रत्यासन्नौ**—'प्रति' एवं "अ" उपसर्गपूर्वक "सद्" धातु से 'क्त' प्रत्यय लाकर द्विवचन में प्रत्यासन्नौ ऐसा रूप बनता है। **माधवी**—मधौ भवा इस विग्रह में "मधु" शब्दसे "तत्र भवः" इस सूत्र से अण् प्रत्यय करके स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप् करके वृद्ध्यादि करके माधवी रूप निष्पन्न होता है। **चलानि**—चलन्तीति चलानि संचलन अर्थ में विद्यमान "चल" धातु से "नन्दिग्रहिपचादिभ्यः" इस सूत्र से पचादित्वात् अच् प्रत्यय करके नपुंसकत्व की विवक्षा में बहुवचन में "चलानि" रूप निष्पन्न होता है। **रक्ताशोकः**—अशोक दो प्रकार के होते हैं (१) श्वेत पुष्पवाला (२) रक्त पुष्पवाला। श्वेत पुष्पवाला अनुष्ठान

(सिद्धि) का उपयोगी है और रक्ताशोक कामवर्द्धक है। कान्तः—कान्त अर्थ में विद्यमान "कम्" धातु से "णिच्" प्रत्यय करके "कामि" धातु बनाकर तब "क्त" प्रत्यय करके "कान्त" रूप निष्पन्न होता है। दोहद—यह एक कवि-प्रसिद्ध क्रियाविशेष है। अर्थात् असमय में पेड़ों में फूल को विकसित करने के लिए जो क्रियाएँ स्त्रियों द्वारा की जाती हैं वह "दोहद" कही जाती हैं। वह भिन्न-भिन्न फूलों के लिए भिन्न-भिन्न तरीके से किया जाता है। अतः अशोक के लिए बाएँ चरण का प्रहार और बकुल के लिए मुखमदिरा का कथन किया गया है। किसी ने लिखा है—

स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियङ्गुर्विकसति बकुलः सीधुगण्डूषसेकात्।
पादाघातादशोकस्तिलककुरबकौ वीक्षणाऽऽलिङ्गनाभ्याम्।
मन्दारो नर्मवाक्यात् पटुमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवाता-
च्चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति च पुरो नर्तनात् कर्णिकारः॥

इसका अर्थ है—स्त्रियों के स्पर्श से प्रियङ्गु वृक्ष, गण्डूष-मद्य-सेचन से बकुल वृक्ष, पैर के प्रहार से अशोक वृक्ष, तिलक वृक्ष दृष्टि से; कुरबक आलिङ्गन से, मन्दार वृक्ष नर्मवाक्य से, सुन्दर मधुर हँसी से चम्पक वृक्ष, मुँह से गाये गीत के द्वारा नमेरु वृक्ष और समक्षनृत्य से कर्णिकार विकसित होता है।

यहाँ 'मया सह' इसलिए दिया गया है कि यक्ष भी रतिसमय में प्रिया-पादाघात से रोमाञ्चित हुआ करता था, इस बात को ध्वनित करना था महाकवि को।

अलङ्कारः—यहाँ "मया सह" इस कथन के अनुसार "विशेषोक्ति" अलङ्कार है॥ १५॥

तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टि-
र्मूले बद्धा मणिभिरनति-प्रौढ-वंश-प्रकाशैः।
तालैः शिञ्जावलयसुभगैर्नर्तितः कान्तया मे
यामाध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्वः॥१६॥

अन्वयः—च, तन्मध्ये, अनतिप्रौढवंश-प्रकाशैः, मणिभिः, मूले, बद्धा, स्फटिकफलका, काञ्चनी, वासयष्टिः । शिञ्जावलयसुभगैः, तालैः, मे, कान्तया, नर्तितः, वः, सुहृत्, नीलकण्ठः, दिवसविगमे, याम्, अध्यास्ते ।

व्याख्या—च=किंच, तन्मध्ये=रक्ताशोकबकुलमध्ये, अनतिप्रौढवंशप्रकाशैः= नातिक्लिष्टवेणुकान्तिभिः, मणिभिः=रत्नैः, मूले=पादे, बद्धा=संबद्धा, स्फटिक-फलका=स्फटिकमणिमय-पीठिका, काञ्चनी=हैमी, वासयष्टिः=निवासदण्डः, वर्तत इति शेषः । शिञ्जावलयसुभगैः=ध्वनिमत्कङ्कणश्रान्त्यैः, तालैः=करतल-ध्वनिभिः, मे=मम, कान्तया=प्रियया, नर्तितः=नृत्यङ्कारितः, वः=युष्मा-कम्, मेघानामित्यर्थः । सुहृत्=मित्रम्, नीलकण्ठः=मयूरः, दिवसविगमे=दिन-समाप्तौ, प्रदोष इति भावः । याम्=वासयष्टिम्, अध्यास्ते=अनुतिष्ठति ॥१६॥

शब्दार्थः—च=और भी, तन्मध्ये=उस अशोक और बकुल वृक्ष के बीच में, अनतिप्रौढवंशप्रकाशैः=कोमल बाँसों की कान्ति वाले, मणिभिः= मणियों से, मूले=जड़ में, बद्धा=बँधी, स्फटिक-फलका=स्फटिक मणि की वेदिका वाली, काञ्चनी=सोने का, वासयष्टिः=निवासदण्ड (है) । शिञ्जा-वलय-सुभगैः=कङ्कणों की ध्वनियों से, सुन्दरतालैः=हाथ की तालियों से, मे=मेरी, कान्तया=प्रिया द्वारा, नर्तितः=नचाया गया, वः=तुम लोगों का, सुहृत्=मित्र, नीलकण्ठः=मोर, दिवसविगमे=संध्याकाल में, याम्=जिस निवासदण्ड पर, अध्यास्ते=बैठता है ॥ १६ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! तयोः रक्ताशोकबकुल-वृक्षयोर्मध्ये मरकतमणिभिः बद्धामूलस्फटिकमणिमयपीठा हाटकमयी वासयष्टिर्विद्यते । सायंकाले मत्प्रियया शिञ्जितकङ्कणसुन्दरैः करतलवादनैः नर्तितो मयूरो यामधिष्ठति ॥ १६ ॥

हिन्दी—हे मेघ ! उन रक्त अशोक और बकुल वृक्ष के बीच में कोमल बाँस की प्रभा से युक्त मणियों की वेदिकावाली और स्फटिकमणिमय पीठ से युक्त सोने की वासयष्टि है । शब्दायमान कङ्कणों से कर्णप्रिय करताल बजाकर मेरी प्रिया के द्वारा नचाया गया तुम लोगों का मित्र मयूर सायङ्काल जिस पर आकर बैठता है ॥ १६ ॥

समासः—तयोर्मध्ये=तन्मध्ये (ष० तत्०) न अतिप्रौढाः=अनतिप्रौढाः (नञ्०) अनतिप्रौढाश्च ते वंशाः=अनतिप्रौढवंशाः (कर्म०) अनतिप्रौढ-वंशानामिव प्रकाशो येषान्ते=अनतिप्रौढवंश-प्रकाशाः (व्यधिकरण बहु०) तैः। स्फटिकं फलकं यस्याः सा स्फटिकफलका (बहु०)। वासस्य यष्टिः=वास-यष्टिः (ष० तत्०)। शिञ्जा प्रधानानि वलयानि शिञ्जावलयानि (मध्यम-पदलोपी०), शिञ्जावलयैः सुभगाः=शिञ्जावलयसुभगाः (तृ० तत्०) तैः। दिवसस्य विगमः दिवसविगमः (ष० तत्०) तस्मिन्।

कोशः—भूषणानान्तु शिञ्जितम्, इत्यमरः। मयूरो बर्हिणो बर्ही नीलकण्ठो भुजङ्ग-भुक्, इत्यमरः। अथ मित्रं सखा सुहृत्, इत्यमरः।

टिप्पणी—प्रौढाः—"प्र" उपसर्गपूर्वक "वह" धातु से "क्त" प्रत्यय करके "हो ढः" इस सूत्र से धातु के आकार को ढत्व करके "व" को सम्प्रसारण करके "सम्प्रसारणाच्च" इस सूत्र से पूर्वरूप करके प्र+ऊढ ऐसी स्थिति में "प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु" इस सूत्र से वृद्धि करके बहुवचन में "प्रौढाः" ऐसा रूप निष्पन्न होता है। अनतिप्रौढवंशप्रकाशैः—"पन्ना" नामक रत्नविशेष की कान्ति हरी होती है, उसकी हरियाली कच्चे बाँस के समान होती है, क्योंकि पके बाँस की हरियाली मलिन हो जाती है, अतः कवि ने "अनतिप्रौढ" ऐसा विशेषण लगाया वंश में। बद्धा—"बन्ध्" धातु से क्त प्रत्यय करके स्त्रीत्वविवक्षा में टाप् करके "बद्धा" ऐसा रूप निष्पन्न होता है। वासः—वसनं वासः= "वस" धातु से भाव में कन् प्रत्यय करके वृद्धि करके "वास" ऐसा रूप निष्पन्न होता है। शिञ्जा—अव्यक्त अर्थ में विद्यमान "शजि" धातु से इ की इत्संज्ञा होने के कारण "इदितो नुम्धातोः" इस सूत्र से नुम् करके परसवर्ण आदि करके "षिद्भिदादिभ्योऽङ्" इस सूत्र से अङ् प्रत्यय करके स्त्रीत्वविवक्षा में "टाप्" करके शिञ्जा ऐसा रूप निष्पन्न होता है। कहीं-कहीं "शिञ्जत्वलयसुभगैः" ऐसा पाठान्तर मिलता है, परन्तु वह पाठ अशुद्ध है। क्योंकि "लटः शतृ-शानचावप्रथमाऽसमानाधिकरणे" इस सूत्र से जो शतृ और शानच् प्रत्यय होता है वह क्रम से परस्मैपदी धातु से शतृ और आत्मनेपदी से "शानच्" प्रत्यय

होता है। प्रकृत धातु अनुदात्तेत होने के कारण "अनुदात्तङित आत्मनेपदम्" इस सूत्र से आत्मनेपदसंज्ञक ही है। अतः शानच् ही होगा शतृ नहीं। यामध्यास्ते—यहाँ "अधि" उपसर्गपूर्वक "आस्" धातु के योग में "अधिशीङ्स्थाऽसां कर्म" इस सूत्र से आधार रूप "यत्" शब्द को कर्मसंज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति हुई है।

अलङ्कार:—यहाँ लोकातिशय समृद्धि का वर्णन होने के करण "उदात्त" एवं " अनतिप्रौढवंशप्रकाशैः" यहाँ "लुप्तोपमा अलङ्कार" है ।। १६ ।।

एभिः साधो ! हृदयनिहितैर्लक्षणैर्लक्षयेथा
द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शङ्खपद्मौ च दृष्ट्वा ।
क्षामच्छायं भवनमधुना मद्वियोगेन नूनं
सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम् ।।१७।।

अन्वय:—हे साधो ! हृदयनिहितैः, एभिः, लक्षणैः, द्वारोपान्ते, लिखित-वपुषौ, शङ्खपद्मौ, च, दृष्ट्वा, नूनम्, अधुना, मद्वियोगेन, क्षामच्छायम्, भवनम्, लक्षयेथाः, सूर्यापाये, कमलम्, स्वाम्, अभिख्याम्, न, पुष्यति, खलु ।। १७ ।।

व्याख्या—हे साधो ! = हे भद्र !, हृदयनिहितैः = चित्तसञ्चितैः, एभिः=पूर्वोक्तैः, लक्षणैः=चिह्नैः, द्वारोपान्ते=कपाटपार्श्वयोः लिखित-वपुषौ=चित्रितशरीरौ, शङ्खपद्मौ=एतन्नामकनिधिविशेषौ, च दृष्ट्वा= अवलोक्य च, नूनम्=अवश्यम्, अधुना=इदानीम्, मद्वियोगेन=मम विरहेण, क्षामच्छायम्=कृशकान्ति, भवनम्=गृहम्, लक्षयेथाः=जानीहि । सूर्यापाये= दिनकरास्ते, कमलम्=पद्मम्, स्वकीयाम्, अभिख्याम्=कान्तिम्, न पुष्यति= न धारयति ।। १७ ।।

शब्दार्थ:—हे साधो=हे सज्जन !, हृदयनिहितैः=हृदय में रखे, एभिः= इन पहले कहे गये, लक्षणैः=चिह्नों से, द्वारोपान्ते=दरवाजे के दोनों ओर,

लिखितवपुषौ=चित्रित आकृति वाले, शङ्खपद्मौ=शङ्ख और पद्म, इन दो विधि-विशेषों को, च दृष्ट्वा=देखकर, नूनम्=अवश्य ही, अधुना=इस समय, मद्वियोगेन=मेरे प्रवास रूप वियोग से, क्षामच्छायम्=मलिन कान्तिवाले, भवनम्=(मेरे) घर को, लक्षयेथाः=जानोगे। सूर्यापाये=सूर्य के न रहने पर अर्थात् सूर्यास्त हो जाने पर, कमलम्=कमल, स्वाम्=अपनी स्वाभाविक, अभिख्याम्=शोभा को, न पुष्यति=धारण नहीं करता।

भावार्थः—हे भद्र! हृदयस्थैः पूर्वोक्तैस्तोरणादिभिश्चिह्नैः द्वार-पार्श्वयोरालिखितौ शङ्खपद्माभिधेयौ निधी चावलोक्याधुना मत्प्रवासरूप-विरहेण मलिन-शोभं मे गृहं निश्चिनु। सूर्यास्ते कमलं स्वकीयां स्वाभाविकीं शोभां न धारयति ॥ १७ ॥

हिन्दी—हे भद्र! हृदय में रखे पहले कहे गये तोरण आदि चिह्नों से तथा दरवाजे के दोनों ओर चित्रित शङ्ख और पद्म नामक विधिविशेष को देखकर इस समय मेरे प्रवास रूप विरह के कारण क्षीण कान्ति वाले मेरे घर को जानोगे। सूर्य के न रहने पर कमल भी अपनी शोभा को नहीं धारण करता ॥ १७ ॥

समासः—हृदये निहितानि=हृदय-निहितानि (स० तत्०) तैः द्वारयोः उपान्तः=द्वारोपान्तः (ष० तत्०) तस्मिन्। लिखिते वपुषी ययोस्तौ लिखित-वपुषौ (बहु०)। शङ्खश्च पद्मश्च = शङ्ख-पद्मौ (इतरेतरद्वन्द्वः) तौ। मम वियोगः मद्वियोगः (ष० तत्०) तेन। क्षामा छाया यस्य तत् क्षामच्छायम् (बहु०)। सूर्यस्य अपायः सूर्यापायः (ष० तत्०) तस्मिन्।

कोशः—साधुः समर्थो निपुणो वा, इति काशिकायाम्। निधिर्ना शेवधि-र्भेदाः पद्मशङ्खादयो निधेः, इत्यमरः। अभिख्या नाम शोभयोः, इत्यमरः।

टिप्पणी—निहितम्—नि उपसर्गपूर्वक धारण एवं पोषण अर्थ में विद्यमान "धा" धातु से "क्त" प्रत्यय करके "दधातेर्हि" इस सूत्र से धातु के स्थान में "हि" आदेश करके "निहितम्" ऐसा रूप निष्पन्न होता है। शङ्खपद्मौ—ये

कुबेर के नव निधियों में से दो निधियाँ हैं। कुबेर के नव निधियों के नाम इस प्रकार हैं—

"महापद्मश्च पद्मश्च शङ्खो मकरकच्छपौ।
मुकुन्द—कुन्द—नीलाश्च खर्वश्च निधयो नव ॥

दृष्ट्वा—दर्शनार्थक "दृश्" धातु से क्त्वा प्रत्यय करके "दृष्ट्वा" ऐसा निष्पन्न होता है। वियोगः—"वि" उपसर्गपूर्वक "योगार्थक "युज्" धातु से "भाव में घञ्" प्रत्यय करके वियोगशब्द निष्पन्न होता है। क्षामः—"क्षै" धातु से "क्त" प्रत्यय करके धातु को आत्व करके "क्षायो मः" इस सूत्र से प्रत्यय के तकार को "म" आदेश करके "क्षामः" ऐसा रूप निष्पन्न होता है। लक्षयेथाः—णिजन्त 'लक्षि' धातु के मध्यमपुरुष के एकवचन का यह रूप है।

अलङ्कार—यहाँ "बिम्ब-प्रतिबिम्ब भावमूलक वैधर्म्य "दृष्टान्त" अलङ्कार है। यहाँ सूर्य के न रहने से कमल की शोभा का ह्रास रूप व्यतिरेक दृष्टान्त को देकर यक्ष ने अपने विरह में अपने भवन की कान्ति की क्षीणता का प्रतिपादन किया है ॥ १७ ॥

गत्वा सद्यः कलभतनुतां शीघ्रसम्पातहेतोः
क्रीडाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ निषण्णः।
अर्हस्यन्तर्भवनपतितां कर्तुमल्पाल्पभासं
खद्योतालीविलसितनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम् ॥१८॥

अन्वयः—शीघ्र-सम्पातहेतोः, सद्यः, कलभतनुताम्, गत्वा, प्रथमकथिते, रम्यसानौ, क्रीडाशैले, निषण्णः अल्पाल्पभासम्, खद्योत-ताली-विलसितनिभाम्, विद्युदुन्मेषदृष्टिम्, अन्तर्भवनपतिताम्, कर्तुम्, अर्हसि ॥ १८ ॥

व्याख्या—हे मेघ ! शीघ्रसम्पात-हेतोः=त्वरितप्रवेशार्थम्, सद्यः=तत्क्षणम्, कलभतनुताम्=करिशावक-शरीरताम्, गत्वा=आसाद्य, प्रथमकथिते=पूर्वोक्ते,

रम्यसानौ = मनोहर-शिखरे, क्रीडाशैले = केलिपर्वते, निषण्णः=उपविष्टः (सन्) अल्पाल्पभासम्=मन्द-मन्द-प्रकाशम्, खद्योताली-विलसितनिभाम्=खद्योतपङ्क्ति-स्फुरित-समाम्, विद्युदुन्मेषदृष्टिम् = तडिज्ज्योति-दृशम्, अन्तर्भवनपतिताम्= गृहमध्य-प्रविष्टाम्, कर्तुम् = सम्पादयितुम्, अर्हसि = समर्थोऽसि ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—शीघ्रसम्पातहेतोः = शीघ्र प्रवेश के लिए, सद्यः=तत्काल, कलभतनुताम्=हाथी के बच्चे के शरीर के तरह शरीर को, गत्वा=बनाकर, प्रथमकथिते = पहले कहे गये, रम्यसानौ=सुन्दर शिखर वाले, क्रीडाशैले= क्रीडापर्वत पर, उपविष्टः (सन्)=बैठे हुए (स्थित होकर), अल्पाल्पभासाम्= मन्द-मन्द प्रकाश वाली, खद्योतालीविलसितनिभाम्=जुगनुओं की पङ्क्ति की चमक के समान, विद्युदुन्मेष-दृष्टिम्=बिजली की चमक रूपी दृष्टि को, अन्तर्भवनपतिताम्=बीच घर में डालने के लिए, (तुम) अर्हसि=योग्य हो (समर्थ हो) ॥ १८ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! शीघ्र-प्रवेशार्थं करिशिशु-शरीर सदृशं स्वशरीरं कृत्वा पूर्ववर्णिते रम्य-शिखरे क्रीडा-पर्वते स्थितः सन् ज्योतिरिङ्गणस्फुरितसमां तडित्प्रकाश-रूपां दृष्टिं गृहमध्ये पातयितुं त्वं समर्थोऽसि ॥ १८ ॥

हिन्दी—हे मेघ ! शीघ्रप्रवेश के लिये, तुरंत हाथी के बच्चे के समान अपने शरीर को बनाकर पहले कहे गये सुन्दर शिखर वाले क्रीडापर्वत पर स्थित होकर मन्द-मन्द प्रकाश वाली, जुगुनुओं की पंक्ति की टिमटिमाहट के समान बिजली की चमक रूपी दृष्टि को घर के भीतर डालने में तुम समर्थ हो ॥ १८ ॥

समासः—शीघ्रं सम्पातः=शीघ्रसम्पातः (सुप्सुपा०) शीघ्रसम्पात एव हेतुः=शीघ्रसम्पातहेतुः (रूपक) तस्य । कलभस्येव तनुर्यस्य स कलभतनुः (व्य० बहु०) तस्य भावः कलभतनुता ताम् । प्रथमं कथितः प्रथमकथितः (सुप्सुपा) । रम्यः सानुर्यस्य सः रम्यसानुः (बहु०) तस्मिन् । क्रीडार्थं शैलः क्रीडाशैलः (मध्यमपदलोपी०) तस्मिन् । अल्पाऽल्पा भाः यस्या सा अल्पाल्प-भासा (बहु०) ताम् । खे द्योतन्ते इति खद्योताः (स० तत्०) खद्योतानाम् आली

खद्योताली (ष० तत्०) तस्याः विलसितम्=खद्योतालीविलसितम् (ष०तत्०) तेन सदृशी खद्योताली-विलसितनिभा (तृ० तत्०) ताम् । विद्युत उन्मेषः विद्युदुन्मेषः (ष० यत्०) विद्युदुन्मेष एव दृष्टिः=विद्युदुन्मेषदृष्टिः (रूपक) ताम् । भवनस्य अन्तः अन्तर्भवनम् (ष० तत्०) अन्तर्भवनं पतिता=अन्तर्भवनपतिता (द्वि० तत्०) ताम् ।

कोशः—सम्पातः पतने वेगे प्रवेशे वेद संविदे, इति शब्दार्णवः । कलभः करिशावकः, इत्यमरः । भाश्छविद्युतिदीप्तयः, इत्यमरः । तडित्सौदामिनी विद्युच्चञ्चला चपला अपि, इत्यमरः । निभ-संकाशनीकाशप्रतीकाशोपमादयः, इत्यमरः ।

टिप्पणी—संपातः—संपतनं संपातः—"सम्" उपसर्गपूर्वक पतनार्थक "पत्" धातु से भाव में "घञ्" प्रत्यय करके "संपात" ऐसा रूप निष्पन्न होता है । "सम्पातहेतोः" यहाँ "षष्ठी हेतुप्रयोगे" इस सूत्र से षष्ठी विभक्ति हुई है । गत्वा—"गम्" धातु से क्त्वा प्रत्यय करके गत्वा रूप बनता है । कलभ—बत्तीस साल की उम्र के हाथी के बच्चे को "कलभ" कहते हैं । निषण्णः—नि उपसर्गपूर्वक "सद्" धातु से "क्त" प्रत्यय करके नत्व षत्व णत्व आदि करके "निषण्णः" ऐसा रूप निष्पन्न होता है । अल्पाऽल्पभासः—यहाँ "अतिशयेन अल्पा" इस विग्रह में "प्रकारे गुणवचनस्य" इस सूत्र से "अल्प" की द्विरुक्ति हुई है । अन्तर्भवनम्—यहाँ "राजदन्तादिषु परम्" इस सूत्र से "अन्तर" इसका पूर्व निपात हुआ है ।

अलङ्कारः—प्रस्तुत पद्य में "कलभतनुताम्" एवं "खद्योतालीविलसितनिभाम्" इन दोनों जगह उपमा एवं "विद्युदुन्मेषदृष्टिम्" यहाँ रूपक अलङ्कार है । तथा दोनों अलङ्कारों का अङ्गाङ्गिभाव होने के कारण "संकर" अलङ्कार है ॥ १८ ॥

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्येक्षामा चकितहरिणी-प्रेक्षणा निम्ननाभिः ।

श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः ॥१९॥

अन्वयः—तन्वी, श्यामा, शिखरिदशना, पक्वबिम्बाधरोष्ठी, मध्येक्षामा, चकित-हरिणी-प्रेक्षणा, निम्ननाभिः, श्रोणी-भारात्, अलसगमना, स्तनाभ्याम्, स्तोकनम्रा, युवतिविषये, धातुः, आद्या, सृष्टिः, इव, या, तत्र, स्यात् ॥ १९ ॥

व्याख्या—स्वभवन-वर्णनाऽनन्तरं प्रिया स्वरूपपरिचयं ददाति श्लोक-द्वयेन–(हे मेघ !) तन्वी=कृशाङ्गी, न तु स्थूला, श्यामा=तप्तकाञ्चनवर्णाभा, युवतिर्वा, शिखरिदशना = सुदती, पक्वबिम्बाधरोष्ठी = परिणतबिम्ब-फलोष्ठी, मध्येक्षामा=कृशोदरी, चकितहरिणीप्रेक्षणा=भयभीतकुरङ्गी-नयना अनेनाऽस्याः पद्मिनीत्वं व्यज्यते। निम्ननाभिः=गम्भीरनाभिः, श्रोणी-भारात्=नितम्बस्थौल्यात्, अलसगमना=मन्दगामिनी, स्तनाभ्याम्=कुचाभ्याम्, स्तोक-नम्रा=ईषदवनता। युवतिविषये=ललितासम्बन्धे, धातुः=स्रष्टुः, ब्रह्मणः इति भावः, आद्या=प्रथमा, सृष्टिरिव=रचनेव "वर्तमानेति शेषः" तादृशी या =पूर्वोक्तगुणसम्पन्ना स्त्री, तत्र=मद्गृहे, भवेत्=स्यात्—॥ १९ ॥

शब्दार्थः—तन्वी=दुबली, श्यामा=तपाये हुए सोने के रंग की, अथवा युवती, शिखरिदशना=तीखे दाँतों वाली, पक्वबिम्बाधरोष्ठी=पके हुए बिम्ब के समान अधरोष्ठवाली, मध्येक्षामा=पतली कमरवाली, चकितहरिणी-प्रेक्षणा=डरी हुई मृगी के समान (चञ्चल) आँखोंवाली, निम्ननाभिः=गहरी नाभि-वाली; श्रोणीभारात्=नितम्ब के भार से, अलसगमना=मन्द-मन्द चलने वाली, स्तनाभ्याम्=स्तनों से, स्तोकनम्रा=कुछ-कुछ झुकी हुई, युवतिविषये=स्त्रियों के विषय में, धातुः=स्रष्टा (ब्रह्मा) की, आद्या=पहली, सृष्टिरिव=रचना की तरह, या=जो स्त्री, तत्र=वहाँ मेरे घर में, स्यात्=हो।

भावार्थः—हे मेघ ! कृशाङ्गी, युवति, दाडिमबीजेवदन्तशालिनी, कृशोदरी, पक्वबिम्बाधरोष्ठी, भयभीतमृगीव चपलनयना, गम्भीरनाभिः, नितम्बभारान्मन्द-गामिनी, कुचभारेणेषदवनता, युवतिविषये ब्रह्मणः प्राथमिकी रचनेव या स्त्री मद्गेहे भवेत् (तां मत्पत्नीं जानीयाः) इत्यग्रतनेन श्लोकेन सम्बन्धो विद्यते।१९।

हिन्दी—हे मेघ ! दुबली युवती, तीखे दाँतों वाली, पके हुए बिम्ब (कुंदरू) के समान निचले होंठ वाली, पतली कमरवाली, भयभीत मृगी के समान चञ्चल आँखों वाली, गहरी नाभि वाली, नितम्बभार से धीरे-धीरे चलने वाली, स्तनभार से (आगे की ओर) कुछ झुकी हुई-सी, स्त्रियों के विषय में ब्रह्मा की पहली रचना की तरह जो स्त्री वहाँ मेरे घर में हो (उसे मेरी पत्नी समझना, यह आगे से सम्बद्ध है) ।

समासः—शिखरिणो दन्ताः यस्याः सा शिखरिदशना (बहु०) पक्वं च तद् बिम्बं पक्वबिम्बम् (क० धा०) । अधरश्चासौ ओष्ठश्च अधरोष्ठः (कर्म०) पक्वबिम्बमिव अधरोष्ठो यस्याः सा पक्वबिम्बाधरोष्ठी (बहु०) । मध्येक्षामः यस्याः सा मध्येक्षामा (व्य० बहु०) । चकिता चासौ हरिणी चकितहरिणी (क० धा०) चकितहरिण्या इव प्रेक्षणं यस्याः सा चकितहरिणीप्रेक्षणा (व्यधि० बहु०) । निम्ना नाभिर्यस्याः सा निम्ननाभिः (बहु०) । श्रोण्याः भारः = श्रोणीभारः (ष० तत्०) । अलसं गमनं यस्याः सा अलसगमना (बहु०) । स्तोकं नम्रा = स्तोकनम्रा (सुप्सुपा०) । युवतयः विषयः युवतिविषयः (रूपक०) तस्मिन् ।

कोशः—श्लक्ष्णं वभ्रं कृशं तनु, इत्यमरः । श्यामा यौवनमध्यस्था, इत्युत्पलमाला । "शीते सुखोष्णा सर्वाङ्गी ग्रीष्मे या सुखशीतला । तप्तकाञ्चनवर्णाभा सा स्त्री श्यामेति कथ्यते ॥" इत्याहुः भट्टिकाव्यस्य टीकाकृतः । शिखरं शैलवृक्षाग्रकक्षापुलककोटिषु, इति विश्वः ।

टिप्पणी—तन्वी "तनु" यह दौर्बल्यरूप गुण का वाचक शब्द है—अतः "वोतो गुणवचनात्" इस सूत्र से ङीष हुआ है । श्यामा—इस स्त्री की विशेषता होती है कि गर्मी के महीनों में इनके शरीर शीतल और ठंढे समय में उष्ण हो जाते हैं । जैसा कि कहा भी गया है—

कूपोदकं वटच्छाया श्यामा नारीष्टिकागृहम् ।
शीतकाले भवेदुष्णं उष्णकाले च शीतलम् ॥

अर्थात् कुएँ का जल, वट (बरगद) की छाया, श्यामा स्त्री और ईंटे का घर; ये सब ठंढे समय में गर्म और गर्म समय में ठंढे हो जाते हैं। **शिखरिदशनाः**– अभिधान-चिन्तामणिकार 'शिखर' शब्द का अर्थ पके हुए दाडिम का बीज करते हैं। वे कहते हैं—'पक्वदाडिमबीजाभं माणिक्यं शिखरं विदुः' **पक्व-बिम्बाधरोष्ठी**–यहाँ अधरोष्ठ में अधरश्चासौ ओष्ठश्च इस तरह कर्मधारय समास हो जाने पर प्राप्त वृद्धि को रोककर 'ओत्वोष्ठयोः समासे वा' इस सूत्र से (अधर+ओष्ठ) यहाँ विकल्प से पररूप हुआ है। एवं पक्व विम्ब के साथ पुनः समास होने के पश्चात् 'नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णश्रृङ्गाच्च' इस सूत्र से विकल्प से 'ङीप्' हुआ है तब 'पक्वबिम्बाधरोष्ठी' रूप बना है, 'बिम्ब' कुंदरू फल को कहते हैं। यह लाल रंग का होता है, अतः यहाँ उसे उपमानरूप में ग्रहण किया गया है। **मध्येक्षामा**—यहाँ 'मध्य' शब्द से आयी सप्तमी-विभक्ति का समास होने पर भी 'अमूर्धमस्तकात् स्वाङ्गादकामे' इस सूत्र से अलुक हो गया है। **आद्या**=आदौ भवा आद्या='आदि' शब्द से 'दिगादिभ्यो यत्' इस सूत्र से यत् प्रत्यय करके स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् हो गया है।

अलङ्कारः—यहाँ 'अधर' एवं 'ओष्ठ' इन दो पर्यायवाची शब्दों की आवृत्ति होने से 'पुनरुक्तवदाभास' 'पक्वबिम्बाधरोष्ठी' यहाँ लुप्तोपमा, 'चकित-हरिणी-प्रेक्षणा' यहाँ पर भी लुप्तोपमा और 'सृष्टिराद्येव' इस जगह 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार है। परन्च इन सब अलङ्कारों की परस्पर निरपेक्षता होने से संसृष्टि अलङ्कार है॥ १९॥

तां जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्।
गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम्॥२०॥

अन्वयः–सहचरे, मयि, दूरीभूते, चक्रवाकीम्, इव, परिमितकथाम्, एकाम्, ताम्, मे, द्वितीयम्, जीवितम्, जानीथाः। गाढोत्कण्ठाम्, बालाम्, गुरुषु, एषु, दिवसेषु, गच्छत्सु, शिशिरमथिताम्, पद्मिनीम्; वा, अन्यरूपाम्, जाताम्, मन्ये।

व्याख्या—(हे मेघ !) सहचरे=सहगामिनि, मयि=पत्यौ, यक्षे, दूरीभूते=दूरङ्गते सति, चक्रवाकीमिव=चक्रवाक प्रियामिव, परिमितकथाम्=अत्यल्पभाषिणीम्, एकाम्=एकाकिनीम्, ताम्=पूर्ववर्णितां मत्प्रियाम्, मे=यक्षस्य, द्वितीयम्=अन्यम्, अपरमित्यर्थः, जीवितम्=जीवनम्, जानीथाः=अवगच्छेः। एतेन तस्यां मृतौ मद्जीवननाशोऽवश्यम्भावीति व्यज्यते। गाढोत्कण्ठाम्=अत्युत्सुक्याम्, बालाम्=नवोढाम् अष्टदशहायनामित्यर्थः। गुरुषु=दीर्घेषु, एषु=वर्तमानेषु, दिवसेषु=शापदिनेषु, गच्छत्सु=यातेषु सत्सु, शिशिरमथिताम्=तुषारपीडिताम्, पद्मिनीम्=कमलिनीम्, वा=यथा, अन्यरूपाम्=अपराकृतिम्, जाताम्=भूताम्, मन्ये=संभावयामि, हिमविकृतरूपा सा विरहिणी अन्यरूपा भविष्यति इति तर्कयामि इति भावः ॥ २० ॥

शब्दार्थः—(हे मेघ !) सहचरे=साथी, मयि=मेरे, दूरीभूते=दूर होने पर, चक्रवाकीमिव=चकई के समान, परिमितकथाम्=बहुत कम बोलनेवाली, एकाम्=अकेली, ताम्=उस तन्वी आदि श्लोक से वर्णिता मेरी प्रिया को, मे=मेरा, द्वितीयम्=दूसरा, जीवितम्=जीवन (प्राण), जानीथाः=समझना। गाढोत्कण्ठाम्=(मेरे विषय में) अत्यधिक उत्सुक, बालाम्=(अट्ठारह वर्ष की) नवोढा को, गुरुषु=लम्बे दुर्वह, एषु=इन, दिवसेषु=शाप के दिनों में, गच्छत्सु=बीतने पर, शिशिरमथिताम्=हिम से पीडित, पद्मिनीम्=कमलिनी के, वा=समान, अन्यरूपाम्=किसी दूसरे ही रूप को, जाताम्=प्राप्त, अर्थात् कुछ की कुछ बन गयी होगी ऐसा, मन्ये=सोचता हूँ ॥ २० ॥

भावार्थः—हे मेघ ! सहगामिनि मयि दूरस्थिते सति सहवियुक्तां चक्रवाकीमिव अल्पवाचामेकाकिनीं तां पूर्वप्रकारेण वर्णितां मत्प्रियां मेऽपरं जीवनं जानीथाः। मद्विषये अत्युत्सुकां नवोढामष्टादशवर्षीयां (अहम्) एषु दुर्वहेषु शापदिवसेषु गच्छत्सु तुषारपीडितां कमलिनीमिवान्यरूपां तर्कयामि ॥ २० ॥

हिन्दी—(हे मेघ !) मुझ साथी के दूर हो जाने पर चकई के समान कम बोलने वाली अकेली उस पूर्ववर्णिता स्त्री को मेरा दूसरा जीवन (प्राण) समझना अर्थात् मेरी प्रिया समझना। शाप के इन दुर्वह दिनों के बीतने पर

(मैं तो) उस नवोढा को पाले की मारी कमलिनी की तरह कुछ की कुछ हो गयी होगी, ऐसा अनुमान (सोच रहा) कर रहा हूँ।

समासः—परिमिता कथा यस्याः सा परिमितकथा ताम् (बहु०) गाढा उत्कण्ठा यस्याः सा गाढोत्कण्ठा (बहु०) ताम्। शिशिरेण मथिता शिशिरमथिता (तृ० तत्०) ताम्। अन्यं रूपं यस्याः सा अन्यरूपा (बहु०) ताम्।

कोशः—इव बद् वा यथा शब्दाः, इति दण्डी। उपमायां विकल्पे वा, इत्यमरः। गाढ-वाढ-दृढानि च, इत्यमरः। हेमन्तः शिशिरोऽस्त्रियाम्, इत्यमरः। उत्कण्ठोत्कलिकेलिके समे, इत्यमरः।

टिप्पणी—सहचरे—सहचरतीति इस विग्रह में 'सह' उपपदपूर्वक चर् धातु से अच् प्रत्यय करके 'सहचर' ऐसा शब्द निष्पन्न होता है। उक्त रूप सप्तमी विभक्ति का है। दूरीभूते—अदूरं दूरं यथा सम्पाद्येत इस विग्रह में 'दूर' उपपदक 'भू' धातु से क्त प्रत्यय करके एवं 'दूर' शब्द से 'च्वि' प्रत्यय करके 'च्वौ च' इस सूत्र से दीर्घ होकर 'दूरीभूत' शब्द निष्पन्न होता है। उक्त रूप सप्तमी विभक्ति का है। चक्रवाकी—चक्रवाकत्वजातिविशिष्टा स्त्री इस विग्रह में 'चक्रवाक' शब्द से 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय होकर चक्रवाकी बनता है। कविप्रसिद्धि है कि चक्रवाक और चक्रवाकी रात में वियुक्त हो जाते हैं, यहाँ तक कि यदि इन्हें एक पिंजरे में भी बन्द कर दिया जाय तो ये आपस में दोनों दो तरफ मुँह करके रात व्यतीत करते हैं। इस उक्ति में सत्यता कहाँ तक है यह भगवान् ही जाने।

इस वियोग के सम्बन्ध में एक लोककथा भी सुनी जाती है कि 'सीताहरण' के पश्चात् रामचन्द्रजी ने सीताजी की खोज और उनका पता वन-लताओं से पूछते हुए एक चक्रवाक दम्पति से भी पूछा पर उन दोनों ने इनका उपहास करते हुए नकारात्मक उत्तर दिया, इस पर दुःखित होकर रामचन्द्रजी ने शाप दे दिया कि 'तुम चक्रवाक-दम्पतियों का प्रति-रात वियोग हुआ करे' और तभी से ये दोनों रात में नहीं मिलते हैं।

कथा—कथनं कथा वाक्य-प्रबन्ध अर्थ में विद्यमान 'कथ' धातु से भाव में 'चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च' इस सूत्र से अङ् प्रत्यय करके स्त्रीत्वविवक्षा में 'टाप्' करके 'कथा' शब्द निष्पन्न होता है। **द्वितीयम्**—'द्वि:' शब्द से पूरण अर्थ में 'द्वेस्तीय:' इस सूत्र से 'तीय' प्रत्यय करके 'द्वितीय:' ऐसा बनाया जाता है। यह नपुंसकलिङ्ग का रूप है। **जीवितम्**—प्राणधारण अर्थ में 'जीव' धातु से भाव में 'नपुंसके भावे क्त:' 'जीवितम्' रूप निष्पन्न होता है। **उत्कण्ठा**—यद्यपि 'उत्कण्ठा' का प्रसिद्ध अर्थ 'औत्सुक्य' है, परन्तु महामहो० मल्लिनाथजी ने "रागे त्वलब्धविषये वेदना महती तु या। संशोषणी तु गात्राणां तामुत्कण्ठां विदुर्बुधा: ॥' इस कोश का उद्धरण देकर उसका अर्थ 'विरहवेदना' किया है। **बालाम्**—यहाँ 'बाला' शब्द का अर्थ अविवाहित कुमारी नहीं समझना चाहिए प्रत्युय १८ वर्ष की 'किशोरी' ऐसा समझना चाहिए।

महाकवि का इस श्लोक का मूल आधार वाल्मीकिरामायण के अशोक-वाटिकास्थित सीता के वर्णन प्रसंग में कहा गया श्लोक ही जान पड़ता है—

हिम-हतनलनीव नष्टशोभा, व्यसनपरम्परया निपीड्यमाना।
सहचर-रहितेव चक्रवाकी, जनकसुता-कृपणां दशां ददर्श ॥

(सुन्दर०, १६।४०)

अलङ्कार:—प्रस्तुत: पद्य में यक्षपत्नी का एवं यक्ष (जीवित) का अभेद कथन भेद रहने पर भी किया गया है, अत: भेद में अभेद अध्यवसायमूलक 'अतिशयोक्ति', 'दूरीभूते······चक्रवाकीमिवैकाम्' यहाँ पूर्णोपमा एवं 'पद्मिनी-वाऽन्यरूपाम्' यहाँ भी उपमा है और तीनों निरपेक्ष भाव से हैं अत: 'संसृष्टि' अलङ्कार है ॥ २० ॥

नूनं तस्या: प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियाया
नि:श्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम् ।

हस्तन्यस्तं मुखमसकल-व्यक्ति लम्बालकत्वा-
दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति ॥ २१ ॥

अन्वयः—प्रबलरुदितोच्छूननेत्रम्, निःश्वासानाम्, अशिशिरतया, भिन्न-वर्णाधरोष्ठम्, हस्तन्यस्तम्, लम्बाऽलकत्वात्, असकलव्यक्ति, तस्याः, मुखम्, त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेः, इन्दोः, दैन्यम्, बिभर्ति, नूनम् ॥ २१ ॥

व्याख्या—प्रबलरुदितोच्छूननेत्रम्=अत्यधिकरुदितोच्छ्वसितनयनम्, निः-श्वासानाम्=वदनश्वासप्रश्वासानाम्, अशिशिरतया=उष्णतया, भिन्नवर्णा-धरोष्ठम्=विच्छायमधरोष्ठम्, हस्तन्यस्तम्=हस्तस्थापितम्, लम्बालकत्वात्=दीर्घस्रस्तचूर्णकुन्तलत्वात्, असकलव्यक्ति=असम्पूर्णाभिव्यक्ति, तस्याः=मत्प्रियायाः, मुखम्=वदनम्, त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेः=मेघानुगमनक्षीणद्युतेः, इन्दोः=चन्द्रमसः, दैन्यम्=दीनताम्, बिभर्ति=धारयति; नूनम्=निश्चयेनेति भावः ॥ २१ ॥

शब्दार्थः—प्रबलरुदितोच्छूननेत्रम्=बहुत रोने से सूजे हुए नेत्रों वाला, निःश्वासानाम्=निश्वासों के, अशिशिरतया=गरम होने के कारण, भिन्नवर्णा-धरोष्ठम्=जिसके निचले होंठ का रंग फीका पड़ गया है (ऐसा), हस्तन्यस्तम्=हथेली पर रखा हुआ, लम्बालकत्वात्=लटकते हुए बालों के कारण, असकल-व्यक्ति=असम्पूर्ण रूप से दिखाई देने वाला, तस्याः=उस मेरी प्रिया का, मुखम्=मुख, त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेः=तेरा अनुगमन करने के कारण फीकी पड़ी कान्तिवाले, इन्दोः=चन्द्रमा के, दैन्यम्=दैन्यभाव को, बिभर्ति=धारण करता है, नूनम्=निश्चय ही, ॥ २१ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! अधुना मद्वियोगेन अत्यधिक-रोदनादुच्छ्वसितनेत्रमु-ष्णनिःश्वासैर्विवर्णाधरोष्ठं करतलस्थापितं लम्बायमानैरलकैरसम्पूर्णाभिव्यक्तं मत्प्रियामुखं त्वदनुसरणात्कान्तिहीनस्य हिमांशोः दीनभावं धारयति नूनम् ॥ २१ ॥

हिन्दी—हे मेघ ! अत्यधिक रोने के कारण सूजी हुई आँखों वाला, निःश्वासों के गरम-गरम होने के कारण विवर्ण ओष्ठ वाला, हथेली पर रखे हुए लटकते हुए लटों के कारण सम्पूर्ण रूप से दिखाई नहीं देने वाला उस मेरी प्रिया का मुख तुम्हारे आवरण के कारण मलिनकान्ति वाले चन्द्रमा के दीनभाव को निश्चय ही धारण करता होगा ॥ २१ ॥

समासः—प्रकृष्टं बलं यस्मिस्तत् प्रबलम् (बहु०)। प्रबलं च तद् रुदितम् = प्रबलरुदितम् (कर्म०)। उच्छूने नेत्रे यस्य तत् = उच्छूननेत्रम्, प्रबलरुदितेन उच्छूननेत्रम् = प्रबलरुदितोच्छूननेत्रम् (तृ० तत्०)। न शिशिरता = अशिशिरता (नञ्०) तया। भिन्नो वर्णो यस्य सः भिन्नवर्णः (बहु०) अधरश्चासौ ओष्ठः = अधरोष्ठः (कर्म०) भिन्नवर्णः अधरोष्ठो यस्य तत् = भिन्नवर्णाधरोष्ठम् (बहु०), न सकला = असकला (नञ्०) असकला व्यक्तिः यस्य तत् असकलव्यक्ति (बहु०)। तव अनुसरणं = त्वदनुसरणं (ष० तत्०)। क्लिष्टा कान्तिर्यस्य सः क्लिष्टकान्तिः (बहु०) त्वदनुसरणेन क्लिष्टकान्तिः = त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तिः (तृ० तत्०) तस्य।

कोशः—नूनं तर्केऽथ निश्चये, इत्यमरः।

टिप्पणी—**रुदितम्**—रोदनमेव रुदितम् = रुद् धातु से भाव में क्त प्रत्यय करके 'रुदितम्' ऐसा रूप निष्पन्न होता है। **उच्छून**—'उच्छून' शब्द की निष्पत्ति के विषय में महामहोपाध्याय मल्लिनाथजी ने 'उद्' उपसर्गपूर्वक 'टुओश्वि' धातु से 'क्त' प्रत्यय करके 'च्छ्वोः शूडनुनासिके च' से 'ऊठ्' आगम करके 'उच्छून' शब्द निष्पन्न किया है, परन्तु यह प्रक्रिया प्रामादिकी है; क्योंकि 'श्वि' धातु के अन्त में 'इ'कार है न कि वकार है अतः इस प्रक्रिया को छोड़कर यदि 'उद् + श्वि + क्त' ऐसी स्थिति में धातु के यजादि-गणपठित होने के कारण 'वचिस्वपियजादीनां किति' इस सूत्र से 'व' को 'उ'कार सम्प्रसारण करके 'सम्प्रसारणाच्च' इस सूत्र से पूर्वरूप करके 'श्वीदितो निष्ठायाम्' इस सूत्र से इडागम का निषेध करके 'हलः' इस सूत्र से सम्प्रसारणरूप से आये हुए 'उ'कार को दीर्घ करके 'ओदितश्च'

इस सूत्र से निष्ठा के 'त'कार को 'न'कार आदेश करके, छत्वादि करके 'उच्छून' ऐसा रूप निष्पन्न किया जाय तो प्रक्रिया शुद्ध होगी। अशिशिरता—शिशिरस्य भाव: इस विग्रह में 'तस्य भावस्त्वतलौ' इस सूत्र से तल् प्रत्यय करके स्त्रीत्वविवक्षा में टाप् करके 'शिशिरता' रूप निष्पन्न होता है, न शिशिरता अशिशिरता यहाँ हेतु में तृतीया विभक्ति है। नञ् का अर्थ यहाँ विरोध में विवक्षित है। असकलव्यक्ति—यक्ष-पत्नी के मुँह पर सदा लटें लटकती रहती थीं अत: उसके मुँह की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं होती थी। इससे यह अनुमानित होता है कि वह केशों को नहीं सँवारती थी। केश का न सँवारना उसके लिए उचित भी था, क्योंकि वह प्रोषितभर्तृका थी। जिसका पति परदेश में हो उसे प्रोषितभर्तृका कहते हैं। एवं धर्मशास्त्र में प्रोषितभर्तृका के लिए शरीर को सँवारने का निषेध किया गया है। जैसा कि महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी स्मृति में लिखते हैं—

क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम्।
हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका॥

इसका अभिप्राय यह है कि सती-साध्वी प्रोषितभर्तृका क्रीड़ा, शरीर-संस्कार (शरीर को सँवारना), समूह में जाना, उत्सव देखना, हास्य (मजाक) करना, दूसरे के घर में जाना—इन सबों का परित्याग कर दे।

अलङ्कार:—प्रस्तुत पद्य के 'भिन्न-वर्णाऽधरोष्ठम्' इस पद में पौनरुक्त्य प्रतीति होने के कारण 'पुनरुक्तवदाभास' अलङ्कार है। एवं प्रिया का मुँह चन्द्रमा के दीन भाव को धारण कैसे कर सकता है? इस शङ्का का समाधान 'बिम्बप्रतिबिम्बभाव' की कल्पना के द्वारा करने से 'निदर्शना' अलङ्कार है।

इन दोनों अलङ्कारों के परस्पर निरपेक्ष भाव से रहने के कारण 'संसृष्टि' अलङ्कार है॥ २१॥

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती।

पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके ! त्वं हि तस्य प्रियेति ॥

अन्वयः—सा, बलिव्याकुला, वा, विरहतनु, भावगम्यं, मत्सादृश्यम्, लिखन्ती, वा, मधुरवचनाम्, पञ्जरस्थाम्, सारिकाम्, 'हे रसिके ! भर्तुः, स्मरसि, कच्चित् ? हि, त्वं, तस्य, प्रिया,' इति, पृच्छन्ती, वा, ते, आलोके, पुरा, निपतति ॥ २२ ॥

व्याख्या—सा=मत्प्रिया, बलिव्याकुला=नित्यनैमित्तिक-देवपूजन-तत्परा, वा=अथवा, विरहतनु=वियोगक्षीणम्, भावगम्यम्=सम्भावनानुमेयम्, मत्सादृश्यम्=मदाकृत्यनुरूपम्, लिखन्ती=चित्रयन्ती, वा=अथवा, मधुरवचनाम्=मधुरभाषिणीम्, पञ्जरस्थाम्=पिञ्जरबद्धाम्, सारिकाम्=शुकप्रियाम्, 'हे रसिके !=हे विदग्धे ! भर्तुः=स्वामिनः, स्मरसि=चिन्तयसि, कच्चित्=किम् ? हि=यतः, त्वम्=सारिका, तस्य=स्वामिनः, प्रिया=अभीष्टा,' इति=इत्थम्, पृच्छन्ती=जिज्ञासन्ती, प्रश्नं कुर्वतीत्यर्थं, वा=अथवा, ते=मेघस्य, आलोके=दृष्टिमार्गे, पुरा=सद्यः, निपतति=आगमिष्यति; इति भावः ॥ २२ ॥

शब्दार्थः—सा=वह मेरी प्रिया, बलिव्याकुला=नित्यनैमित्तिक देवपूजा में संलग्न, वा=अथवा, विरहतनु=वियोग के कारण कृश, भावगम्यम्=अनुमान से जानी जाने वाली, मत्सादृश्यम्=मेरी आकृति (चित्र) को, लिखन्ती=लिखती हुई, वा=या, 'रसिके !=हे रसीली ! भर्तुः=स्वामी को, स्मरसि=स्मरण करती हो, कच्चित्=क्या ? हि=क्योंकि, त्वम्=तुम, तस्य=उनकी, प्रिया=प्यारी थी,' इति=इस प्रकार, मधुरवचनाम्=मधुर बोलने वाली, पञ्जरस्थाम्=पिंजरे में रहने वाली, सारिकाम्=मैंना को, पृच्छन्ती=पूछती हुई, वा=अथवा, ते=तुम्हारे, आलोके=दृष्टि-पथ पर, पुरा=सद्यः, निपतति=आयेगी ॥ २२ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! सा मत्प्रिया नित्यनैमित्तिक-देवपूजायां संलग्ना वा विश्लेषकृशामनुमेयां मत्प्रतिकृतिं चित्रयन्ती वा, 'हे रसिके ! स्वामिनं स्मरसि,

किम् ? यतो हि त्वं तस्य प्रिया' इति पञ्जरस्थां मधुरभाषिणीं सारिकां पृच्छन्ती वा सद्यस्तव दृष्टिपथे आगमिष्यति ॥ २२ ॥

हिन्दी—हे मेघ ! वह मेरी प्रिया नित्य-नैमित्तिक देवपूजा में संलग्न या वियोग से दुर्बल तथा अनुमान से जानने योग्य मेरे चित्र को लिखती हुई अथवा मधुरभाषिणी पिंजड़े में बँधी हुई मैना को 'हे रसीली ! स्वामी का स्मरण करती हो क्या ? क्योंकि तुम उनकी प्यारी हो' इस प्रकार से पूछती हुई सद्यः तुम्हारे दृष्टि-पथ पर आयेगी ॥ २२ ॥

समासः—बलिषु व्याकुला=बलिव्याकुला (स० तत्०) । विरहेण तनु तत् विरहतनु (तृ० तत्०) । भावेन गम्यं भावगम्यं तत् (तृ० तत्०) । मधुरं वचनं यस्याः सा मधुरवचना (बहु०) ताम् ।

कोशः—कच्चित् काम-प्रवेदने, इत्यमरः । उपमायां विकल्पे वा, इत्यमरः। स्यात्प्रबन्धे पुरातीते निकटागामिके पुरा, इत्यमरः । आलोको दर्शनद्योतौ, इत्यमरः ॥ २२ ॥

टिप्पणी—गम्यम्—गन्तुं योग्यं गम्यम् = 'गम्' धातु से यत् प्रत्यय करके 'गम्यम्' ऐसा रूप सिद्ध होता है । लिखन्ती—'लिख' धातु से वर्तमान काल में लट् के स्थान पर शतृ आदेश करके नुम् करके स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् करके 'लिखन्ती' रूप निष्पन्न होता है । यहाँ 'लिखन्ती' इस शब्द के प्रयोग से यह ध्वनित होता है कि वह यक्षप्रिया बारंबार यक्ष का चित्र बनाती थी परन्तु अश्रुपात आदि से वह चित्र मिट-मिट जाता था, वह पुनः उसे चित्रित करती थी । पञ्जरस्थाम्—उपपद समास करके 'पञ्जर' उपपदक 'स्था' धातु से 'सुपि स्थः' से 'क' प्रत्यय करके ह्रस्व करके स्त्रीत्वविवक्षा से टाप् करके द्वितीया विभक्ति में 'पञ्जरस्थाम्' ऐसा रूप निष्पन्न होता है । रसिके—रसोऽस्ति यस्याः इस विग्रह में 'रस' शब्द से 'अत इनि ठनौ' इस सूत्र से 'ठन्' प्रत्यय करके उसके स्थान पर 'ठस्येकः' इस सूत्र से 'इक' आदेश करके स्त्रीत्वविवक्षा में टाप् करके 'रसिका' ऐसा रूप निष्पन्न होता है । इसी शब्द के सम्बोधन में 'रसिके ! ऐसा रूप निष्पन्न होता है । कहीं-कहीं रसिके ! के

स्थान पर 'सुमने' ऐसा पाठ मिलता है। भर्तुः—बिभर्ति इति 'भर्ता'। 'भृ' धातु से कर्ता में 'तृच्' प्रत्यय करके 'भर्ता' ऐसा रूप निष्पन्न होता है। उक्त रूप षष्ठी विभक्ति का है। यह षष्ठी 'अधीगर्थ-दयेशां कर्मणि' इस सूत्र से 'स्मृ' धातु के योग रहने के कारण कर्म में हुई। प्रिया—प्रीणाति इति इस विग्रह में प्री धातु से 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' इस सूत्र से 'क' प्रत्यय करके इय आदेश करके स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् करके 'प्रिया' ऐसा रूप निष्पन्न होता है। आलोके—'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'लोक्' धातु से भाव में 'घञ्' प्रत्यय करके सप्तमी विभक्ति में 'आलोके' ऐसा रूप निष्पन्न होता है।

अलङ्कारः—इस श्लोक में तुल्य बल वाले पदार्थों का विरोध चातुर्यपूर्ण ढंग से प्रदर्शित होने के कारण 'विकल्प' अलङ्कार है ॥ २२ ॥

उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य ! निक्षिप्य वीणां
मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा ।
तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचिद्
भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती ॥२३॥

अन्वयः—हे सौम्य ! मलिनवसने, उत्सङ्गे, वीणाम्, निक्षिप्य, मद्गोत्राङ्कम्, विरचितपदम्, गेयम्, उद्गातुकामा, नयनसलिलैः, आर्द्राम्, तन्त्रीम्, कथञ्चित्, सारयित्वा, भूयो भूयः, स्वयम्, कृताम्, अपि, मूर्च्छनाम्, विस्मरन्ती, वा, (सा ते आलोके, पुरा निपतति)।

व्याख्या—हे सौम्य ! हे भद्र ! मलिनवसने = मलीमसाम्बरे, उत्सङ्गे = क्रोडे, वीणाम् = वल्लकीम्, निक्षिप्य = स्थापयित्वा, मद्गोत्राङ्कम् = मदभिधेयान्वितम्, यथास्यात्तथा, विरचितपदम् = रचितगीतम्, गेयम् = गातुं योग्यम्; उद्गातुकामा = उच्चैर्गातुमभिलषन्ती, नयनसलिलैः = नेत्राम्बुभिः, अश्रुभिरित्यर्थः। आर्द्राम् = क्लिन्नाम्, तन्त्रीम् = वीणागुणम्, कथञ्चित् = येन केनापि प्रकारेण कष्टेनेत्यर्थः, सारयित्वा = करेण सम्मेल्य, भूयो भूयः = पुनः पुनः;

स्वयम्=आत्मना, कृतामपि=विहितामपि, मूर्च्छनाम्=स्वराऽऽरोहाऽवरोह-क्रमम्, विस्मरन्ती=विस्मरणं कुर्वन्ती, 'ते आलोके पुरा निपतिष्यति' इति पूर्वश्लोकेनान्वयः।

शब्दार्थः—हे सौम्य! =सज्जन! मलिनवसने=मैले वस्त्रोंवाली, उत्सङ्गे=गोद में, वीणाम्=वीणा को, निक्षिप्य=रखकर, मद्गोत्राङ्कम्=मेरे नाम से युक्त, विरचितपदम्=बनाये गये पदोंवाले, गेयम्=गीत को, उद्गातुकामा=गाने की इच्छावाली, नयनसलिलैः=आँसुओं से, आर्द्राम्=भींगी हुई, तन्त्रीम्=तारों को, कथंचित्=किसी तरह, सारयित्वा=मिला करके, भूयो भूयः=बार-बार, स्वयम्=अपने आप, कृतामपि, बनाये गये भी, मूर्च्छनाम्=स्वरों के आरोह-अवरोह क्रम को, विस्मरन्ती=भूलती हुई (तुम्हारे दृष्टिपथ पर आयेगी)।

भावार्थः—हे भद्र! एवं च सा मे प्रिया मलिनवस्त्रे स्वाङ्के वीणां संस्थाप्य मन्नामान्वितं गानं गान्धारस्वरेण गातुमिच्छन्ती अश्रुभिः क्लिन्नं वीणा-गुणं कथञ्चित् सम्मेल्य वारंवारं स्वेन विरचितमपि स्वराऽऽरोहावरोह-क्रम विस्मरन्ती त्वद्दृष्टिपथे आगमिष्यति ॥ २३ ॥

हिन्दी—हे सज्जन! और वह मेरी प्रिया मैले वस्त्रों वाली गोद में वीणा को रखकर मेरे नाम से युक्त पदों वाले गीत को गान्धार स्वर में गाने की इच्छा वाली आँसुओं से भींगी हुई तारों को किसी तरह मिलाकर अपने ही द्वारा बनाये गये स्वरों के आरोह-अवरोह क्रम को पुनः-पुनः भूलती हुई (तुम्हारे दृष्टि-पथ पर आयेगी) ॥ २३ ॥

समासः—मलिनं वसनं यस्मिन् सः मलिनवसनः (बहु०) तस्मिन्। मम गोत्रं=मद्गोत्रम् (ष० तत्०) मद्गोत्रं अङ्कं यस्मिन् तत् मद्गोत्राङ्कम् (बहु०)। विरचितानि पदानि यस्य तत् विरचितपदम् (बहु०)। उद्गातुं कामो यस्याः सा उद्गातुकामा (बहु०)। नयनयोः सलिलानि=नयनसलिलानि (ष० तत्०) तैः।

कोश:—गोत्रं नाम्नि कुलेऽपि च, इत्यमरः । स्वराणां स्थापनाः सान्ताः मूर्च्छना: सप्तसप्त हि, इति संगीतरत्नाकरः । आलोको दर्शनोद्योतौ, इत्यमरः ।

टिप्पणी—**मलिनवसने**—पतिव्रता प्रोषितभर्तृका को मैला-कुचैला वस्त्र पहनना चाहिए । उसे तो पति के पीड़ित रहने पर पीड़ित, पति के प्रसन्न रहने पर प्रसन्न, पति के प्रवासी होने पर मलिनवस्त्रा एवं कृशाङ्गी और पति के मर जाने पर प्राणत्याग कर देना चाहिए । वही स्त्री पतिव्रता कहलाती है—

'आर्ताऽर्ते मुदिते हृष्टाः प्रोषिते मलिना कृशा ।
मृता म्रियेत या पत्यौ सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता ॥

महाकवि की उत्कृष्ट रचना अभिज्ञान-शाकुन्तल की नायिका शकुन्तला की स्थिति देखिये, दुष्यन्त से परित्यक्ता होने पर—

'वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः ।
अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति ॥

निक्षिप्य—'नि' उपसर्गपूर्वक 'क्षिप्' धातु से क्त्वा प्रत्यय करके ल्यप् आदेश करके 'निक्षिप्य' रूप निष्पन्न होता है। **गेयम्**—गातुं योग्यम् इस विग्रह में 'गै' धातु से यत् प्रत्यय करके धातु के ऐकार को आकारादेश करके 'ईद्यति' इस सूत्र से ईत्व करके गुण करके 'गेयम्' ऐसा रूप निष्पन्न होता है । **उद्गातुकामा**—यहाँ (गै) 'गा' धातु से विहित तुमुन् प्रत्यय के मकार का 'तुं काममनसोरपि' इससे लोप हो गया है 'काम' पद आगे होने के कारण । **कथञ्चित् सम्मेल्य**—अपने प्रियतम के नाम से युक्त गीत को गाने की इच्छा यद्यपि यक्षपत्नी करती थी, परन्तु प्रियतम के स्मरण से आँखों में आँसुओं के आ जाने से वीणा की तारें भींग जाती थीं, जिसे वह किसी तरह मिलाती थी। परन्तु प्रियतम की याद में इतना निमग्न हो जाती थी कि वह स्वरचित मूर्च्छना को भी अन्यमनस्कता के कारण भूल जाती थी ।

स्वर के आरोह-अवरोह क्रम को मूर्च्छना कहते हैं 'क्रमयुक्ताः स्वराः सप्त मूर्च्छना परिकीर्तिता' इति भरतः ।

अलङ्कार:—यहाँ भी पूर्वश्लोक के समान 'विकल्प' अलङ्कार है ॥२३॥

शेषान्मासान्विरहदिवसस्थापितस्यावधेर्वा
विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीदत्त-पुष्पैः ।
मत्सङ्गं वा हृदयनिहितारम्भमास्वादयन्ती
प्रायेणैते रमणविरहेष्वङ्गनानां विनोदाः ॥२४॥

अन्वयः—वा, विरहदिवसस्थापितस्य, अवधेः, शेषान्, मासान्, देहलीदत्त-पुष्पैः, गणनया, भुवि, विन्यस्यन्ती, वा, हृदयनिहितारम्भं, मत्सङ्गम्, आस्वादयन्ती, (ते आलोके पुरा निपतति) । प्रायेण, अङ्गनानां, रमणविरहेषु, एते, विनोदाः ।

व्याख्या—वा = अथवा, विरहदिवसस्थापितस्य = वियोगदिनादारभ्य-निश्चितस्य, अवधेः = समयसीमायाः, शेषान् = अवशिष्टान्, मासान् = त्रिशद्-दिनात्मकान् कालविशेषान्, देहलीदत्तपुष्पैः = सदनाऽवग्रहणीस्थापितकुसुमैः, गणनया = एकः द्वावितिक्रमेण संख्यानेन, भुवि = पृथिव्याम्, विन्यस्यन्ती = स्थापयन्ती, वा = अथवा, हृदयनिहिताऽऽरम्भम् = चित्तसङ्कल्पितोपक्रमम्, मत्सङ्गम् = मत्सम्भोगम्, आस्वादयन्ती = अनुभवन्ती, वा (ते आलोके पुरा निपतति) प्रायेण = बहुशः, अङ्गनानाम् = कामिनीनाम्, रमणविरहेषु = प्रियतमवियोगेषु, एते = पूर्वोक्ता, विनोदाः=कालात्ययोपायाः भवन्तीति शेषः ।

शब्दार्थः—वा = अथवा, विरहदिवसस्थापितस्य = वियोग के दिन से निश्चित, अवधेः = समय की सीमा के, शेषान् = बचे हुए, मासान् = महीनों को, देहलीदत्तपुष्पैः = देहली पर रखे हुए फूलों के द्वारा, गणनया = एक, दो इस प्रकार गणना करके, भुवि = पृथ्वी पर, विन्यस्यन्ती = रखती हुई, वा = अथवा, हृदयनिहिताऽऽरम्भम् = मन में कल्पना के द्वारा आरम्भ किए हुए, मत्सङ्गम् = मेरे सहवास का, आस्वादयन्ती = अनुभव करती हुई (तेरे दृष्टिपथ पर सहसा आयेगी) । प्रायेण = अधिकतर, अङ्गनानाम् = कामिनियों के, रमणविरहेषु = प्रियतम के वियोग के दिनों में, एते=पहले कहे गये, विनोदाः= मन को बहलाने वाले साधन हुआ करते हैं ।

भावार्थः—हे मेघ ! अथवा विरहदिनादारभ्य निश्चितावधेरवशिष्टान् मासान् गृहदेहल्यां स्थापितकुसुमैर्गणयन्ती, अथवा मनःसंकल्पितोपक्रमं मत्संभोग-सुखमनुभवन्ती (सा मत्प्रिया तव दृष्टिपथे आगमिष्यति)। बाहुल्येन वधूनां दयितविरहेषु पूर्वोक्तोपायाः कालक्षेपोपायाः भवन्ति ।

हिन्दी—हे मेघ ! अथवा वियोग के दिन से प्रारम्भ समय की सीमा के बचे हुए महीनों को घर की देहली पर रखे हुए फूलों के द्वारा गिन-गिन कर पृथ्वी पर रखती हुई, अथवा मन में कल्पना के द्वारा आरम्भ किए हुए मेरे सहवाससुख का अनुभव करती हुई (वह मेरी प्रिया तुम्हारे दृष्टि-पथ पर आयेगी)। प्रायः स्त्रियों का प्रियतम के वियोग के दिनों में ये मनोविनोद हुआ करते हैं।

समासः—विरहस्य दिवसः=विरहदिवसः (ष० तत्०), तस्मात् स्थापितः =विरहदिवसस्थापितः (ष० तत्०) तस्य। देहल्यां दत्तानि = देहलीदत्तानि (स० तत्०), देहलीदत्तानि च पुष्पाणि = देहलीदत्तपुष्पाणि (कर्म०) तैः। हृदये निहिताः आरम्भाः यस्य सः=हृदयनिहितारम्भः (बहु०) तम्। रमणस्य विरहः = रमणविरहः (ष० तत्०) तेषु।

कोशः–गृहावग्रहणी देहली, इत्यमरः। परिच्छेदे बिलेऽवधिः, इत्यमरः। स्त्रियः सुमनसः पुष्पं प्रसूनं कुसुमं सुमम्, इत्यमरः। स्वान्तं हृन्मानसं मनः, इत्यमरः।

टिप्पणी—स्थापितस्य—णिजन्त 'स्थापि' धातु से कर्म में 'क्त' प्रत्यय करके 'स्थापितः' ऐसा रूप निष्पन्न होता है। देहलीदत्तपुष्पैः—यहाँ हेतु में 'हेतौ' इस सूत्र से तृतीया हुई है। विन्यस्यन्ती—'वि' एवं 'नि' उपसर्गपूर्वक 'अस्' धातु से शतृ प्रत्यय करके स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् करके 'विन्यस्यन्ती' ऐसा रूप निष्पन्न होता है। यक्षपत्नी अँगुली पर भी महीनों को गिन सकती थी, परन्तु 'देहली पर रखे हुए फूलों को गिनकर पृथ्वी पर रखती हुई' ऐसा लिखना मुग्धता के आधिक्य को द्योतन करने के लिए ही है।

मत्सङ्गम् —मम सङ्गः मत्सङ्गः, तम्। आस्वादयन्ती—'आङ्' उपसर्गपूर्वक णिजन्त 'स्वादि' धातु से लट् के स्थान में शतृ प्रत्यय करके स्त्रीत्वविवक्षा में ङीप् करके आस्वादयन्ती ऐसा रूप निष्पन्न होता है। रमणविरहेषु—कहीं-कहीं 'रमणविरहे ह्यङ्गनानाम्' ऐसा पाठ मिलता है। उनका कहना है 'विरह' एक है, अतः एकवचनान्त पाठ होना चाहिए। परन्तु बहुवचनान्त पाठ ही यहाँ युक्तियुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि विरह के एकत्व रहने पर भी उसकी दुःसहता के कारण अतिशय दीर्घता का द्योतन बहुवचनान्त पाठ से होता है।

काम की दशा के दश भेद हैं—

> चक्षूरागस्तदनु मनसः सङ्गतिर्भावना च
> व्यावृत्तिः स्यात्तदनु विषयग्रामतश्चेतसोऽपि।
> निद्राच्छेदस्तदनु तनुता निस्त्रपत्वं ततोऽनू-
> न्मादो मूर्च्छा तदनुमरणं शिरसा प्रक्रमेण॥

साहित्यदर्पण के निम्नलिखित नियम के अनुसार यहाँ २२वें श्लोक से २४वें श्लोक तक कुल तीन श्लोकों का 'आलोके ते निपतति पुरा' इस अंश के माध्यम से परस्पर सम्बन्ध होने के कारण यहाँ 'सन्दानितक' है। जैसा कि—

> छन्दोबद्धपदं पद्यं तेनैकेन च मुक्तकम्।
> द्वाभ्यां तु युग्मकं सन्दानितकं त्रिभिरिष्यते।
> कलापकं चतुर्भिश्च पञ्चभिः (तदूर्ध्वं वा) कुलकं मतम्॥

अलङ्कारः—पूर्व श्लोकों के समान यहाँ भी 'विकल्प' एवं सामान्य से विशेष का समर्थन होने से 'अर्थान्तरन्यास' अलङ्कार है। परस्पर दोनों अलङ्कारों का अङ्गाङ्गिभाव होने से 'संकर' अलङ्कार है॥ २४॥

सव्यापारामहनि न तथा पीडयेन्मद्वियोगः
शङ्के रात्रौ गुरुतरशुचं निर्विनोदां सखीं ते।
मत्सन्देशैः सुखयितुमलं पश्य साध्वीं निशीथे
तामुन्निद्रामवनिशयनां सौधवातायनस्थः॥२५॥

अन्वयः—(हे सखे !) अहनि, सव्यापाराम्, ते, सखीम्, मद्वियोगः, तथा न पीडयेत्, रात्रौ, निर्विनोदाम्, गुरुतरशुचम्, शङ्के, निशीथे, उन्निद्राम, अवनिशयनाम्, साध्वीम्, ताम्, मत्सन्देशैः, अलम्, सुखयितुम्, सौधवातायनस्थः पश्य ॥ २५ ॥

व्याख्या—(हे सखे !) अहनि=दिवसे, सव्यापाराम्=पूर्वोक्तचित्रलेखनादिव्यापारसहिताम्, ते=मेघस्य, सखीम्=सखिप्रियाम्, मद्भार्यामित्यर्थः । मद्वियोगः=मदीयविरहः, तथा=तेन प्रकारेण, न पीडयेत्=न संतापयेत् (किन्तु) रात्रौ=निशायाम्, निर्विनोदाम्=विनोदव्यापाररहिताम्, गुरुतरशुचम् =अतिदुःसहशोकाम्, शङ्के=तर्कयामि । (अतः) निशीथे=मध्यरात्रौ, उन्निद्राम्=भग्ननिद्रां, जागरितामिति भावः । अवनिशयनाम्=भूमि शायिनीम्, साध्वीम्=पतिव्रताम्, ताम्=मत्प्रियाम्, मत्सन्देशैः=मदीयवार्ताभिः, अलम् =पर्याप्तम्, सुखयितुम्=आनन्दयितुम्, सौधवातायनस्थः (सन्) पश्य= अवलोकय ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—(हे सखे !) अहनि=दिन में, सव्यापाराम्=काम में लगी हुई, ते=तुम्हारी, सखीम्=सखी को, अर्थात् मेरी प्रिया को, मद्वियोगः=मेरा विरह, तथा=उस प्रकार, न पीडयेत्=नहीं पीड़ित करता होगा, (किन्तु) रात्रौ=रात में, निर्विनोदाम्=समय-यापन के साधनों से रहित (प्रिया को) गुरुतरशुचम्=बहुत बड़े शोक से युक्त होगी (ऐसा) शङ्के=अनुमान कर रहा हूँ । निशीथे=मध्यरात्रि में, उन्निद्राम्=भग्ननिद्रावाली (जागती हुई) अवनिशयनाम्=पृथ्वी पर सोयी हुई, साध्वीम्=पतिव्रता, ताम्=उस मेरी प्रिया को, मत्सन्देशैः=मेरे सन्देशों से, अलम्=पर्याप्तरूप से, सुखयितुम्= खुशी करने के लिए, सौधवातायनस्थः=अटारी की खिड़की पर स्थिर होकर, पश्य=देखना ॥ २५ ॥

भावार्थः—हे मित्र ! दिवसे बलिचित्रलेखनादिव्यापारसंलग्ना मद्भार्या मद्विरहेण तेन प्रकारेण न पीड्यते यथा विनोदरहितरात्रौ सा पीड्यते । मध्यरात्रौ भग्ननिद्रां भूमिशायिनीं पतिव्रतां तां मत्प्रियां मत्सन्देशैः हर्म्यवातायनस्थः सन् पर्याप्तमानन्दय ॥ २५ ॥

हिन्दी—हे मित्र ! दिन में चित्र लेखन आदि कामों में लगी मेरी प्रिया को मेरा विरह वैसा पीड़ित नहीं करेगा, जैसा कि मनोविनोद के साधनों से रहित रात्रि में, अतः वह और भी दुःखी होगी, ऐसा मैं अनुमान करता हूँ। इसलिए मध्यरात्रि में जागती हुई, पृथ्वी पर सोयी हुई, पतिव्रता उस मेरी प्रिया को, महल की खिड़की पर स्थित होकर (तुम) मेरे सन्देशों से पर्याप्त सुख पहुँचाने के लिए देखना ॥ २५ ॥

समासः—व्यापारैः सहिता=सव्यापारा (तुल्ययोग बहु०) ताम् । मम वियोगः=मद्वियोगः (ष० तत्०) । निर्गतो विनोदो यस्याः सा निर्विनोदा (बहु०) ताम् । गुरुतरा शुक् यस्याः सा गुरुतरशुक् (बहु०) तां गुरुतरशुचम् । उत्सृष्टा निद्रा यया सा उन्निद्रा (बहु०) ताम् । अवनिरेव शयनं यस्याः सा अवनीशयना (बहु०) ताम् । मम सन्देशाः=मत्सन्देशाः (ष० तत्०) तैः । वातस्य आयनं वातायनम् (ष० तत्०) । सौधवातायने तिष्ठतीति सौधवातायनस्थः (उपपदः) ।

कोशः—शङ्का वितर्कभययोः, इति शब्दार्णवः । साध्वी पतिव्रता, इत्यमरः । अर्धरात्रं निशीथौ द्वौ, इत्यमरः । क्षमावनिमेदिनी मही, इत्यमरः । अलं भूषणं पर्याप्ति शक्तिवारण वाचकम्, इत्यमरः ।

टिप्पणी—व्यापाराम्—वि एवं आङ् उपसर्गपूर्वक 'पृ' धातु से भाव में घञ् प्रत्यय करके स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् करके 'व्यापारा' ऐसा रूप निष्पन्न होता है। वियोग—'वि' उपसर्गपूर्वक 'युज्' धातु से भाव में घञ् प्रत्यय करके 'वियोग' ऐसा रूप निष्पन्न होता है। कहीं-कहीं 'विप्रयोगः' ऐसा पाठ भी मिलता है। अर्थ में कोई भेद नहीं, व्युत्पत्ति में केवल धातु के पहले 'प्र' उपसर्ग और अधिक लगाना पड़ेगा। तथा—तेन प्रकारेण इस विग्रह में तत् शब्द से 'प्रकारवचने थाल्' इस सूत्र से थाल् प्रत्यय किया गया है। निर्विनोदाम्—'निर्' एवं 'वि' उपसर्गपूर्वक 'नुद्' धातु से घञ् प्रत्यय करके निर्विनोदाम् रूप निष्पन्न होता है। उक्तरूप द्वि० विभक्ति का है। गुरुतरशुचम्—अतिशयेन गुर्वी इति गुरुतरा=गुरु शब्द से तरप् प्रत्यय एवं स्त्रीत्वविवक्षा में टाप् होता है।

शोचनं=शुक्, 'शुच्' धातु से क्विप् प्रत्यय करके उसका सर्वापहारी लोप होकर चर्त्व होकर 'शुक्' ऐसा रूप निष्पन्न होता है। **अवनिशयनाम्**—पतिव्रता प्रोषितभर्तृका के लिए पर्यङ्कादि पर सोना निषिद्ध है, अतः यक्षप्रिया पृथ्वी पर सोती थी। **साध्वी**—'साधु' शब्द से स्त्रीत्व विवक्षा में गुणवाचक होने के कारण 'वोतो गुणवचनात्' इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय किया गया है। **सन्देश**—'सम्' उपसर्गपूर्वक 'दिश' धातु से घञ् प्रत्यय करके 'सन्देश' रूप निष्पन्न होता है। **सौधवातायनस्थः**—'सौध' शब्द का अर्थ अमरकोष के अनुसार चूने की लेप वाला महल होता है। यहाँ उक्तपद का प्रयोग 'कुबेर के राजभवन के समान ही यक्ष का भवन भी था' इस बात को अभिव्यक्त करने के लिए किया गया है।

यहाँ काम की दश अवस्थाओं में 'जागरण' अवस्था का वर्णन है ॥ २५ ॥

आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वां
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः ।
नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या
तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम् ॥ २६ ॥

अन्वयः—आधिक्षामाम्, विरहशयने, सन्निषण्णैकपार्श्वाम, प्राचीमूले, कलामात्रशेषाम्, हिमांशोः, तनुम्, इव, या रात्रिः, मया, सार्धम्, इच्छारतैः क्षण इव नीता, विरहमहतीम्, ताम्, एव, उष्णैः, अश्रुभिः, यापयन्तीम् (तां पश्य) ॥२६॥

व्याख्या—आधिक्षामाम्=मानसिकव्यथाक्षीणाम्, विरहशयने=वियोगतल्पे, सन्निषण्णैकपार्श्वाम्=सम्यङ्निलीनैकपार्श्वाम्, प्राचीमूले=पूर्वदिङ्मूले, कलामात्रशेषाम्=कलामात्रावशिष्टाम्, हिमांशोः=इन्दोः, तनुम्=शरीरम्, इव=यथा, स्थितामिति शेषः। या=पूर्वोपभुक्ता, रात्रिः=रजनी, मया=यक्षेण, सार्धम्=साकम्, इच्छारतैः=अभिलषितसुरतैः, क्षण इव=स्वल्पकाल इव, नीता=व्यतीता, विरहमहतीम्=वियोगविशालाम्, तामेव=तज्जातीयामेव रात्रिमिति भावः, उष्णैः=तप्तैः, अश्रुभिः=नेत्राम्बुभिः, यापयन्तीम्=गमयन्तीम् (तां पश्य) ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—आधिक्षामाम् = मनोव्यथा से दुबली, विरहशयने=वियोग की शय्या पर, सन्निषण्णैकपार्श्वाम् = एक ही करवट से सोयी हुई, प्राचीमूले = पूर्व दिशा के मूल में, कलामात्रशेषाम् = कला मात्र (सोलहवाँ अंश) अवशिष्ट, हिमांशोः = चन्द्रमा के, तनुम् = शरीर के, इव = तरह, या=जो, रात्रिः=रात, मया = मेरे, सार्धम् = साथ, इच्छारतैः=अभिलषित संभोगों के द्वारा, क्षण इव = एक क्षण के समान, नीता = व्यतीत की गयी थी, विरहमहती = वियोग के कारण लम्बी, तामेव = उसी रात को, उष्णैः = गरम, अश्रुभिः = आँसुओं से, यापयन्तीम् = बिताती हुई (उस मेरी प्रिया को देखना) ॥ २६ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! मानसिकव्यथाकृशां विरहतल्पैकपार्श्वेन शयानाम्, पूर्वदिग्मूले कलामात्राऽवशिष्टामिन्दुमूर्तिमिव स्थिताम्, मया सह या रात्रिः सुरतक्रीडादिभिः क्षण इव नीता वियोगगुर्वी तामेव रात्रिमुष्णैः नेत्राम्बुभिर्गमयन्तीं तां मत्प्रियां पश्य ॥ २६ ॥

हिन्दी—हे मेघ ! मनोव्यथा से दुबली, विरहशय्या पर एक ही करवट से सोयी हुई, पूर्व दिशा के मूल में कलामात्र बची हुई चन्द्रमा की मूर्ति के समान जिन रातों को मेरे साथ संभोगों के द्वारा एक मिनट के समान बिताया था, विरह के कारण लम्बी उन्हीं रातों को गरम-गरम आँसुओं से बिताती हुई (उस मेरी प्रिया को देखना) ॥ २६ ॥

समासः—आधिना क्षामा = आधिक्षामा (तृ० तत्०) ताम् । विरहस्य शयनम् = विरहशयनम् (ष० तत्०) तस्मिन् । सम्यक् निषण्णं = सन्निषण्णम् (कुगतिप्रादय इति समासः), सन्निषण्णमेकपार्श्वं यस्याः सा = सन्निषण्णैकपार्श्वा (बहु०) ताम् । प्राच्या मूलं = प्राचीमूलम् (ष० तत्०) तस्मिन् । कला एव कलामात्रम् (मयूर व्यं०) कलामात्रं शेषो यस्याः सा कलामात्रशेषा (बहु०) । हिमा अंशवो यस्य स हिमांशुः (बहु०), इच्छया रतानि = इच्छारतानि (तृ० त०) तैः । विरहेण महती = विरहमहती (तृ० तत्०) ताम् ।

कोशः—पुंस्याधिर्मानसी व्यथा, इत्यमरः । हिमांशुश्चन्द्रमाश्चन्द्रः, इत्यमरः ।

निर्व्यापारस्थितौ कालविशेषोत्सवयोः क्षणः, इत्यमरः । स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः इत्यमरः ।

टिप्पणी—आधि—आङ् उपसर्गपूर्वक 'धा' धातु से भाव में 'कि' प्रत्यय करके 'आधि' रूप निष्पन्न होता है । निषण्ण—'नि' उपसर्गपूर्वक 'सद्' धातु से क्त प्रत्यय नत्व णत्वादि करके 'निषण्ण' ऐसा रूप बनता है । प्राची—'प्र' उपसर्गपूर्वक 'अञ्च्' धातु से कर्ता में क्विन् प्रत्यय करके उसका सर्वापहार लोप करके नलोप करके स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप् करके 'प्राची' ऐसा रूप निष्पन्न होता है । यापयन्तीम्—'या' धातु से णिच् करके पुगागम करके वर्तमान काल में लट् लकार लाकर उसके स्थान पर 'शतृ' आदेश करके स्त्रीत्व विवक्षा में ङीप् करके नुमादि करके 'यापयन्ती' ऐसा रूप बनता है । यह रूप द्वि० विभक्ति का है । यहाँ क्षीणावस्था का कथन है ।

अलङ्कारः—यहाँ चन्द्रमूर्ति के समान यक्षपत्नी के होने के कारण 'उपमा' अलङ्कार है ॥ २६ ॥

पादानिन्दोरमृतशिशिराञ्जालमार्गप्रविष्टान्
पूर्वप्रीत्या गतमभिमुखं संनिवृत्तं तथैव ।
चक्षुः खेदात् सलिलगुरुभिः पक्ष्मभिश्छादयन्तीं
साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम् ॥२७॥

अन्वयः—जालमार्गप्रविष्टान्, अमृतशिशिरान्, इन्दोः, पादान्, पूर्वप्रीत्या, अभिमुखम्, गतम्, तथैव, संनिवृत्तम्, चक्षुः, खेदात्, सलिलगुरुभिः, पक्ष्मभिः, छादयन्तीम्, साऽभ्रे, अह्नि, न प्रबुद्धाम्, न सुप्ताम्, स्थलकमलिनीम्, इव (तां पश्य) ॥ २७ ॥

व्याख्या—जालमार्गप्रविष्टान्=गवाक्षपथाऽन्तर्गतान्, अमृतशिशिरान्=सुधाशीतलान्, इन्दोः=हिमांशोः, पादान्=मयूखान्, पूर्वप्रीत्या=प्राचीनस्नेहेन, अभिमुखम्=सम्मुखं यथा स्यात् तथा, गतम्=प्राप्तम्, तथैव=तेनैव प्रकारेण

संनिवृत्तम्=प्रत्यागतम्, चक्षुः=नेत्रम्, खेदात्=दुःखात्, सलिलगुरुभिः= अश्रुदुर्भरैः, पक्ष्मभिः=निमेषैः, नयनरोमभिरित्यर्थः, छादयन्तीम्=पिहितं कुर्वन्तीम्, साऽभ्रे=जलधराऽऽच्छन्ने, अह्नि=दिवसे, न प्रबुद्धाम्=न विकसिताम्, न सुप्ताम्=न मुकुलिताम्, स्थलकमलिनीम्=भूमिपद्मिनीम्, इव= यथा, स्थितामिति शेषः (तां पश्य) ॥ २७ ॥

शब्दार्थः—जालमार्गप्रविष्टान्=खिड़की के मार्ग से भीतर प्रविष्ट, अमृत-शिशिरान्=अमृत के समान शीतल, इन्दोः=चन्द्रमा की, पादान्=किरणों को, पूर्व-प्रीत्या=पहले के स्नेह के कारण, अभिमुखम्=सम्मुख, गतम्=गयी, तथैव=(तत्क्षण) उसी तरह, संनिवृत्तम्=लौटी हुई, चक्षुः=आँख को, खेदात्=दुःख के कारण, सलिलगुरुभिः=आँसुओं से भारी, पक्ष्मभिः=पलकों के द्वारा, छादयन्तीम्=बन्द करती हुई, साऽभ्रे=मेघ से युक्त, अह्नि=दिन में, प्रबुद्धाम्=न तो प्रफुल्लित, न सुप्ताम्=और न ही मुकुलित, स्थलकमलिनीम्=स्थलकमलिनी के समान (उस मेरी प्रिया को देखना) ॥ २७ ॥

भावार्थः—हे मित्र ! गवाक्षमार्गान्तर्गतान् पीयूषवच्छीतलांश्चन्द्रमयूखान् प्रति प्राचीनस्नेहेन अभिगतमपि विरहदुःखेन तत्क्षणमेव प्रतिनिवृत्तं नेत्रं अश्रुदुर्भरैः पक्ष्मभिराच्छादयन्तीं मेघाऽऽच्छन्ने दिवसेऽविकसितामामुकुलिताञ्च स्थल-पद्मिनीमिव (तां मत्प्रियां पश्य) ॥ २७ ॥

हिन्दी—हे मित्र ! खिड़की के मार्ग से भीतर प्रविष्ट अमृत के समान शीतल चन्द्रमा की किरणों के सम्मुख प्राचीन स्नेह के कारण जाकर भी विरह-वश तत्क्षण प्रतिनिवृत्त आँख को आँसुओं से बोझिल पलकों के द्वारा बंद करती हुई, मेघ से युक्त दिन में न तो विकसित और न ही मुकुलित स्थलकमलिनी के समान स्थित (उस मेरी प्रिया को देखना) ॥ २७ ॥

समासः—जालस्य मार्गः जालमार्गः (ष० तत्०), तेन प्रविष्टाः जाल-मार्गप्रविष्टाः (तृ० तत्०) तान् । अमृतानीव शिशिराः अमृतशिशिराः (उपमान कर्मधारय) तान् । पूर्वा चासौ प्रीतिः पूर्वप्रीतिः (कर्मधारय) तया ।

सलिलेन गुरूणि=सलिलगुरूणि (तृ० तत्०) तैः । अभ्रेण सहितं साऽभ्रम् (तुल्ययोग बहु०) तस्मिन् ।

कोश:—पादा रश्म्यङ्घ्रितुर्यांशाः, इत्यमरः । पक्ष्माऽक्षिलोम्नि किञ्जल्के तन्त्वाद्यंशेऽप्यणीयसि, इत्यमरः ।

टिप्पणी—प्रीत्या—प्रीणनं प्रीतिः=प्री धातु से क्तिन् प्रत्यय करके 'प्रीति' ऐसा रूप बनता है । यहाँ तृ० विभक्ति का रूप है । जो चन्द्रमा की किरणें पतिसहवास के समय अत्यन्त सुख देती थीं, वही किरणें आज प्रिय-विरह के समय दुःखद हो गयी हैं, अतः यक्षप्रिया की आँखें उसकी ओर जाकर भी तत्क्षण लौट आती हैं । **छादयन्ती**—'छद्' से णिच् करके लट् के स्थान में शतृ आदेश करके नुम् करके ङीप् करके 'छादयन्ती' ऐसा रूप बनता है । **प्रबुद्धाम्**—'प्र' उपसर्गपूर्वक 'बुध्' धातु से 'क्त' प्रत्यय करके टाप् करके 'प्रबुद्धा' ऐसा रूप बनता है । यह रूप द्वि० विभक्ति का है । यहाँ 'विषयद्वेष' नामक कामदशा का कथन है ।

अलङ्कारः—'अमृतशिशिराम्' यहाँ सामान्य वचन का लोप होने से लुप्तोपमा एवं 'स्थलकमलिनीमिव' यहाँ श्रौती उपमा है । एवं दोनों निरपेक्ष भाव से हैं अतः यहाँ संसृष्टि अलङ्कार है ॥ २७ ॥

निःश्वासेनाधरकिसलयक्लेशिना विक्षिपन्तीं
शुद्धस्नानात्परुषमलकं नूनमागण्डलम्बम् ।
मत्संभोगः कथमुपनयेत्स्वप्नजोऽपीति निद्रा-
माकाङ्क्षन्तीं नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम् ॥

अन्वयः—शुद्धस्नानात्, पुरुषम्, आगण्डलम्बम्, अलकम्, अधरकिसलय-क्लेशिना, निःश्वासेन, विक्षिपन्तीम्, स्वप्नजोऽपि, मत्संभोगः, कथम्, उपनयेत्, इति, नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशम्, निद्राम्, आकाङ्क्षन्तीम् (तां पश्य) ॥२८॥

व्याख्या—शुद्धस्नानात्=तैलादिरहितमज्जनात्, परुषम्=रूक्षम्, आगण्ड-लम्बम्=आकपोलावलम्बि, अलकम्=चूर्णकुन्तलम्, अधरकिसलयक्लेशिना=अधरपल्लवदुःखदायिना, निःश्वासेन=उच्छ्वासेन, विक्षिपन्तीम्=चालयन्तीम्, कम्पयन्तीमिति भावः। (तथा) स्वप्नजोऽपि=स्वप्नावस्थोद्भवोऽपि, मत्संभोगः=मत्समागमः, दूरस्थत्वेन साक्षात्संभोगाऽसम्भवात्, कथम्=केन प्रकारेण, उपनयेत्=आगच्छेत्, इति=इतीच्छया, नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम्=अश्रुप्रवाहनिरुद्धस्थानाम्, निद्राम्=संवेशम्, आकाङ्क्षन्तीम्=अभिलषन्तीम्, (तां मत्प्रियां पश्य)॥ २८॥

शब्दार्थः—शुद्धस्नानात्=तैलादि के बिना स्नान के कारण, परुषम्=रूक्ष, आगण्डलम्बम्=गालों तक लटकते हुए, अकलम्=घुँघराले बालों को, अधरकिसलयक्लेशिना=नूतन पल्लव के समान कोमल एवं रक्त निचले होंठों को कष्ट देने वाली, निःश्वासेन=साँसों से, विक्षिपन्तीम्=इतस्ततः बिखेरती हुई, (और) स्वप्नजोऽपि=स्वप्न में ही होने वाले, मत्संभोगः=मेरा सहवास, कथम्=किस तरह, उपनयेत्=प्राप्त हो, इति=इसलिए, नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम्=आसुओं के प्रवाह से रुद्धस्थान वाली, निद्राम्=नींद को, आकाङ्क्षन्तीम् चाहती हुई (उस मेरी प्रिया को देखना)॥ २८॥

भावार्थः—हे मेघ! आकपोलावलम्बि रूक्षांश्चूर्णकुन्तलान् अधरपल्लवदुःखदेनोष्णोच्छ्वासेन परिचालयन्तीम्, तथा स्वप्नावस्थायामपि मत्सहवाससुखं कथं प्राप्नुयादिति हेतोः नेत्रजलप्रवाहावरुद्धावसरां निद्रामभिलषन्तीम् (मत्प्रियां पश्य)॥ २८॥

हिन्दी—बिना तैलादि के स्नान करने के कारण रूखे एवं गालों तक लटकते हुए घुँघराले बालों को, नीचे के होंठों को झुलसाने वाले निःश्वासों से इधर-उधर हिलाती हुई तथा स्वप्नावस्था में भी मेरा सहवास-सुख कैसे प्राप्त हो जाए, इसलिए अश्रुप्रवाह से रुकी निद्रा को चाहती हुई (उस प्रिया को देखना)॥ २८॥

समासः—शुद्धं च तत् स्नानं=शुद्धस्नानम् (कर्म०) तस्मात्। आगण्डा-

स्यामिति=आगण्डम् (अव्ययीभाव)। आगण्डं लम्ब:=आगण्डलम्ब: (सुप्सुपा) तम्। अधर: किसलयमिव=अधरकिसलयम् (उपमित कर्म), अधरकिसलयं क्लिश्नाति इति अधरकिसलयक्लेशी (उपपद स०)। मम संभोग: =मत्संभोग: (ष० त०)। नयनो: सलिलानि=नयनसलिलानि (ष० त०) तेषामुत्पीड:=नयनसलिलोत्पीड: (ष० स०)। रुद्ध: अवकाशो यस्या: सा रुद्धावकाशा (बहु०), नयनसलिलोत्पीडेन रुद्धावकाशा=नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशा (तृ० तत्०) ताम्।

कोश:—ओष्ठाधरौ तु रदनच्छदौ दशनवाससी, इत्यमर:। पल्लवोऽस्त्री किसलयम्, इत्यमर:।

टिप्पणी—शुद्धस्नानात्—पतिव्रता प्रोषितभर्तृका के लिये शरीरसंस्कार का निषेध किया गया है, अत: यक्षपत्नी तैल आदि का उपयोग नहीं करती है। इस बात को ध्वनित करने के लिए 'शुद्धस्नानात्' ऐसा पढा गया। यहाँ हेतु में पञ्चमी है। लम्ब:—लम्बत इति, इस विग्रह में अवस्रंसनार्थक 'लबि' धातु से 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो'—इत्यादि सूत्र से अच् प्रत्यय हुआ है एवं धातु के इदित् होने के कारण 'इदितो नुम्धातो:' इस सूत्र से नुमादि करके 'लम्ब:' ऐसा बनाया जाता है। अलकम्—यहाँ केशों के आधिक्य होने के कारण बहुवचन का प्रयोग होना चाहिए, परन्तु जातिवाचक होने के कारण एकवचन का प्रयोग किया गया है। क्योंकि—

'जात्याख्यायामेकस्मिन् बहुवचनमन्यतरस्याम्।'

इस सूत्र से विकल्प से बहुवचन का विधान किया गया है। कथम्—'किम्' शब्द से 'केन प्रकारेण' इस विग्रह में 'किमश्च' इस सूत्र से थम् (थमु) प्रत्यय करके एवं 'किम: क:' इस सूत्र से किम् के स्थान पर 'क' आदेश करके 'कथम्' ऐसा रूप बनता है। यह अव्यय पद है अत: सुप् का लुक् हो जाता है। उपनयेत्—'उप' उपसर्गपूर्वक 'नी' धातु के लिङ् लकार का यह रूप है। यद्यपि 'नी' धातु का अर्थ ले जाना है परन्तु 'उप' उपसर्ग के

लग जाने से उसका अर्थ दूसरा हो गया है। धातोरर्थान्तरे……इत्यादि पहले ही निर्देश किया जा चुका है।

यहाँ अश्रुत्याग के द्वारा त्रपा (लज्जा) नाश नामक कामदशा का कथन है।

अलङ्कारः—'अधरकिसलय' यहाँ लुप्तोपमा है॥ २८॥

आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखादाम हित्वा
शापस्यान्ते विगलितशुचा तां मयोद्वेष्टनीयाम्।
स्पर्शक्लिष्टामयमितनखेनासकृत् सारयन्तीं
गण्डाभोगात्कठिनविषमामेकवेणीं करेण॥२९॥

अन्वयः—आद्ये, विरहदिवसे, दाम, हित्वा, या, शिखा, बद्धा, शापस्य, अन्ते, विगलितशुचा, मया, उद्वेष्टनीयाम्, स्पर्शक्लिष्टाम्, कठिनविषमाम्, एकवेणीम्, ताम्, अयमितनखेन, करेण, गण्डाभोगात्, असकृत्, सारयन्तीम्, (तां पश्य)॥ २९॥

व्याख्या—आद्ये = प्रथमे, विरहदिवसे = वियोगदिने, दाम = पुष्पमालाम्, हित्वा = त्यक्त्वा, या शिखा = या केशपाशी, बद्धा = निबद्धा ग्रथितेत्यर्थः, शापस्य = अभिशापस्य, अन्ते अवसाने, विगलितशुचा = विनष्टशोकेन, मया = प्रियेण, यक्षेणेत्यर्थः, उद्वेष्टनीयाम् = मोचनीयाम्, स्पर्शक्लिष्टाम् = संस्पर्शेण दुःखदायिनीम्, कठिनबिषमाम् = परुषोच्चावचाम्, एकवेणीम् = एकबन्धनवर्ती वेणीम्, ताम् = केशपाशीम्, अयमितनखेन = अकृत्तानखेन, करेण = हस्तेन, गण्डाभोगात् = कपोल-प्रदेशात्, असकृत् = भूयोभूयः, सारयन्तीम् = अपसारयन्तीम् (तां पश्य)॥ २९॥

शब्दार्थः—आद्ये = पहले, विरहदिवसे=वियोग के दिन, दाम=पुष्पमाला को, हित्वा = छोड़कर, या शिखा = जो चोटी, बद्धः=गूँथी थी, शापस्यान्ते = शाप के बीत जाने पर, विगलितशुचा = अपगत शोक वाले, मया = मेरे द्वारा, उद्वेष्टनीयाम् = खोली जाने वाली, स्पर्शक्लिष्टाम्=छूने से व्यथा पहुँचाने वाली

(दुःखने वाली), कठिनविषमाम् = रूक्ष एवं ऊँची-नीची, एकवेणीम् = एक ही लड़ वाली, ताम् = उस केश की चोटी को, अयमितनखेन = विना काटे हुए नखों वाले, करेण = हाथ से, गण्डाभोगात् = बड़े गालों पर से, असकृत् = वार-बार, सारयन्तीम् = हटाती हुई (उस मेरी प्रिया को देखना) ॥ २९ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! प्रथमे विरहदिने पुष्पमालारहिता या केशपाशी गुम्फिता, शापावसाने विगतशोकेन मयोद्वेष्टनीयां रूक्षां निम्नोन्नतां तामेव केशपाशीं, अकर्तितनखेन हस्तेन कपोलविस्तारात् पुनः पुनः अपसारयन्तीम् (तां मत्प्रियां पश्य) ॥ २९ ॥

हिन्दी—हे मेघ ! पहले वियोग के दिन पुष्पमाला को त्यागकर जो बालों की चोटी गूँथी थी, शाप के बीत जाने पर शोकरहित होकर मेरे द्वारा खोली जाने वाली, छूने से क्लेश देने वाली, रूक्ष और ऊँची-नीची एक लड़ वाली उस चोटी को बिना कटे नाखूनों वाले हाथ के द्वारा अपने विस्तृत गालों पर से बराबर हटाती हुई (उस मेरी प्रिया को देखना)।

समासः—विरहस्य दिवसः विरहदिवसः (ष० तत्०)। विगलिता शुक् यस्य स विगलितशुक् (बहु०) तेन। उद्गतं वेष्टनं यस्याः सा उद्वेष्टनीया (बहु०) ताम्। स्पर्शे क्लिष्टा = स्पर्शक्लिष्टा (स० स०) ताम्। कठिना चासौ विषमा = कठिनविषमा (कर्म०) ताम्। एका चासौ वेणी = एकवेणी (कर्म०) ताम्। अयमिताः नखाः यस्य स अयमितनखः (बहु०) तेन। गण्डस्य आभोगः = गण्डाभोगः (ष० तत्०) तस्मात्।

कोशः—वेणी नदीभेदे कचोच्चये, इत्यमरः। गण्डौ कपोलौ, इत्यमरः। पुनर्भवः कररुहः नखः, इत्यमरः।

टिप्पणी—दाम—यह 'दामन्' शब्द के द्वि० विभक्ति के एकवचन का रूप है, यह शब्द नपुंसकलिंगी है। हित्वा—त्यागने के अर्थ में विद्यमान ओहाक् धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय करके 'जहातेर्हिः' इस सूत्र से 'हो' को 'हि' आदेश करके 'हित्वा' रूप निष्पन्न होता है। बद्धाः—'बन्ध' धातु से

'क्त' प्रत्यय करके नलोपादि करके स्त्रीत्व विवक्षा में 'टाप्' करके 'बद्धा' ऐसा रूप बनता है। उद्वेष्टनीयाम्—'उद्वेष्टनं करोति' इस विग्रह में 'उद्वेष्टना' शब्द से 'तत्करोति तदाचष्टे' इस सूत्र से णिच् प्रत्यय होता है। पुनः उसका 'आख्यानात् कृतस्तदाचष्टे कृल्लुक् प्रकृतिप्रत्ययापत्तिः प्रकृतिवच्च कारकम्' इस वार्तिक से कृत् प्रत्यय का लोप हो जाता है, तब 'उद्वेष्ट' इस नाम धातु से 'तव्यत्तव्याऽनीयरः' इस सूत्र से 'अनीयर्' प्रत्यय करके स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् करके 'उद्वेष्टनीया' ऐसा रूप निष्पन्न होता है। यह द्वि० विभक्ति का रूप है। कठिनविषमा—यहाँ दोनों पद विशेषणवाचक हैं परन्तु पूर्वपद को विशेषण एवं उत्तरपद को विशेष्य मानकर "विशेषणं विशेष्येण बहुलम्" इससे समास हुआ। एकवेणीम्—एका चासौ वेणी ऐसा विग्रह जहाँ किया जाता है वहाँ 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः' इत्यादि सूत्र से समास होता है एवं 'पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु' इससे 'एका' को पुंवद्भाव किया जाता है।

यहाँ "चित्तविभ्रम" नामक कामदशा ध्वनित होती है।

अलङ्कारः—यहाँ 'स्वभावोक्ति' नामक अलङ्कार है ।। २९ ।।

सा संन्यस्ताभरणमबला पेशलं धारयन्ती

शय्योत्सङ्गे निहितमसकृद् दुःखदुःखेन गात्रम् ।

त्वामप्यस्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं

प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ।। ३० ।।

अन्वयः—अबला, संन्यस्ताभरणम्, असकृत्, दुःखदुःखेन, शय्योत्सङ्गे, निहितम्, पेशलम्, गात्रम्, धारयन्ती, सा, त्वामपि, नवजलमयम्, अस्रम्, अवश्यम्, मोचयिष्यति, प्रायः, आर्द्रान्तरात्मा, सर्वः, करुणावृत्तिः, भवति ।। ३० ।।

व्याख्या—अबला=दुर्बला, संन्यस्ताभरणम्=परित्यक्ताऽलङ्कारम्, असकृत् =पुनः पुनः, दुःखदुःखेन=अतिशयक्लेशेन, शय्योत्सङ्गे=शय्यामध्ये, निहितम्

=स्थापितम्, पेशलम्=कोमलम्, गात्रम्=शरीरम्, धारयन्ती=बिभ्रती, सा =मत्प्रिया, त्वामपि=मेघमपि, नवजलमयम्=नूतननीरमयम्, अस्रम्= वाष्पम्, अवश्यम्=नूनम, मोचयिष्यति=त्याजयिष्यति। अर्थान्तरेण द्रढयति स्वकथनं प्राय इति। प्रायः=बहुशः, आर्द्रान्तरात्मा=नर्महृदयः, सर्वः= निखिलः, करुणावृत्तिः=दयामयचित्तवृत्तिः, भवति=वर्तते ॥ ३० ॥

शब्दार्थः—अबला=दुर्बल, संन्यस्ताभरणम्=गहनों से रहित, असकृत्= बार बार, दुःखदुःखेन=घोर कष्ट से, शय्योत्सङ्गे=शय्या पर, निहितम्=रखे हुए, पेशलम्=कोमल, गात्रम्=शरीर को, धारयन्ती=धारण करती हुई, सा=वह मेरी प्रिया, त्वामपि=तेरे द्वारा भी, नवजलमयम्=नवीन जलमय, अस्रम्=आँसुओं को, अवश्यम्=निश्चित ही, मोचयिष्यति=गिरवायेगी। प्रायः=प्रायशः, आर्द्राऽन्तरात्मा=कोमलहृदयवाले, सर्वः=सभी, करुणावृत्तिः करुण स्वभाव के, भवति=होते हैं ॥ ३० ॥

भावार्थः—हे मेघ! दुर्बला, परित्यक्ताऽलङ्कारं बहुशः महत्कष्टेन तल्प-मध्यस्थापितं कोमलं शरीरं धारयन्ती सा मत्प्रिया त्वामपि नवतोयरूपेणाऽश्रुणा रोदयिष्यति, यतो हि प्रायः सर्व एव आर्द्रहृदयः दयालुस्वभावो भवति ॥ ३० ॥

हिन्दी—हे मेघ! दुर्बल, आभूषणों से रहित, बार-बार अत्यन्त कष्ट से शय्या पर रखे अपने कोमल शरीर को धारण करती हुई वह मेरी प्रिया तुम्हें भी नवीन जलरूपी आँसुओं से रुलायेगी, क्योंकि आर्द्रहृदय वाले प्रायः सभी करुण स्वभाव के होते हैं ॥ ३० ॥

समासः—अविद्यमानं बलं यस्याः सा अबला (न० बहु०) संन्यस्ता-न्याभरणानि यस्य तत्=संन्यस्ताऽभरणम् (बहु०)। न सकृत्=असकृत् (नञ्०), शय्यायाः उत्सङ्गः=शय्योत्सङ्गः (ष० तत्०) तस्मिन्। नवञ्च तज्जलम्= नवजलम् (कर्मधा०) तदेव नवजलमयम्। आर्द्रः अन्तरात्मा यस्य सः आर्द्रा-ऽन्तरात्मा (बहु०)। करुणायां वृत्तिर्यस्य सः करुणावृत्तिः (बहु०)।

कोशः—गात्रं वपुः संहननम्, इत्यमरः। स्त्री योषिदबला, इत्यमरः। उत्सङ्गचिह्नयोरङ्कः, इत्यमरः।

टिप्पणी—'अबला' यहाँ का नञ् अल्पार्थक है, इसका अर्थ दुर्बला होगा। दुःखदुःखेन—यहाँ दुःखप्रकारमिति='दुःखदुःखम्' ऐसा होता है क्योंकि 'प्रकारे गुणवचनस्य' इस सूत्र से दुःख को द्वित्व एवं कर्मधारयवद्भाव हुआ है। नवजलमयम्—यहाँ 'नवजल' शब्द से प्रचुर अर्थ में 'तत्प्रकृतवचने मयट्' इस सूत्र से मयट् प्रत्यय हुआ है। मोचयिष्यति—णिजन्त 'मोचि' धातु के लट् लकार के प्र० पुरुष के एकवचन का यह रूप है। यहाँ इस क्रिया के कर्ता 'त्वम्' इस पद से द्वितीया विभक्ति हुई है। इसकी उपपत्ति महामहोपाध्याय मल्लिनाथजी ने 'मुच्' धातु को पचादि गणपठित मानकर, अतएव द्विकर्मक होने के कारण 'द्विकर्मसु पचादीनामुपसंख्यानम्' इससे द्वितीया हुई है, ऐसा बताया है। परन्तु शारदारञ्जन राय ने उक्त वार्तिक के सिद्धान्तकौमुदी या काशिका आदि प्रामाणिक ग्रन्थों में न होने के कारण इसकी उपपत्ति दूसरे प्रकार से बताई है। उनके मतानुसार 'मुच्' धातु के अण्यन्तावस्था का कर्ता जो 'त्वम्' यह पद है उसकी ण्यन्तावस्था में 'गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्मकाणामणि कर्ता सणौ' इस सूत्र से कर्म संज्ञा हो जाती है, तब द्वितीया विभक्ति होगी। यहाँ यह जान लेना चाहिए कि राय जी ने 'मुच्' धातु को भी गत्यर्थक ही माना है।

इस श्लोक में 'दुःखदुःखेन शरीरं धारयन्ती' इस कथन से 'मूर्च्छा' नामक कामदशा अभिव्यक्त होती है जो नवीं दशा है। महाकवि ने यहाँ आठ ही कामदशाओं का वर्णन किया है, जबकि 'साहित्य-शास्त्र' के अनुसार काम की १० दशायें होती हैं। प्रथम 'चक्षूरागः' और अन्तिम 'मृत्यु', इन दो दशाओं का वर्णन नहीं किया है। प्रथम का तो इसलिए नहीं किया कि नयनप्रीति अर्थात् समागमन जिनका पहले होगा उन्हीं का वियोग होगा और यह काव्य वियोगावस्था से ही प्रारम्भ होता है और अन्तिम दशा का कथन रसभङ्ग के भय से नहीं किया।

अलङ्कारः—इस श्लोक में 'अस्रमवश्यं मोचयिष्यति सा' इस कथन को 'प्रायः सर्वः' इत्यादि वाक्य के द्वारा समर्थित किया गया है। अतः यहाँ 'अर्थान्तरन्यास' नामक अलङ्कार है ॥ ३० ॥

जाने सख्यास्तव मनः मयि सम्भृतस्नेहमस्मा-
दित्थंभूतां प्रथमविरहे तामहं तर्कयामि ।
वाचालं मां न खलु सुभगंमन्यभावः करोति
प्रत्यक्षं ते निखिलमचिराद्भ्रातरुक्तं मया यत् ॥३१॥

अन्वयः—तव सख्याः, मनः, मयि, संभृतस्नेहम्, जाने। अस्मात्, अहम्, प्रथमविरहे, ताम्, इत्थंभूताम्, तर्कयामि। सुभगंमन्यभावः, माम्, वाचालम्, न करोति, खलु। हे! भ्रातः, मया, यत्, उक्तम्, निखिलम्, अचिरात्, ते, प्रत्यक्षम् ॥ ३१ ॥

व्याख्या—तव = मेघस्य, सख्याः = मद्भार्यायाः, मनः = चेतः, मयि = मद्विषये, संभृतस्नेहम् = संवलितानुरागम्, जाने = जानामि। अस्मात् = अतएव, अहम् = यक्षः, प्रथमविरहे = आद्यवियोगे, ताम् = स्वप्रियाम्, इत्थंभूताम् = पूर्वकथितदशाप्राप्ताम्, तर्कयामि = अनुमिनोमि। सुभगम्मन्यभावः = सुभगमानित्वम्, माम् = यक्षम्, वाचालम् = वाचाटम्, न करोति = न सम्पादयति, खलु = निश्चयेन। हे भ्रातः ! = हे बन्धो ! मया = यक्षेण, यत् = तद्दीनदशादिकम्, उक्तम् = कथितम्, (तत्) निखिलम् = सम्पूर्णम्, अचिरात् = त्वरितम्, ते = मेघस्य, प्रत्यक्षम् = नेत्रसम्मुखम् (भविष्यति, इति शेषः) ॥ ३१ ॥

शब्दार्थः—तव = तेरी, सख्याः = सखी (मेरी प्रिया) का, मनः = चित्त, मयि = मेरे प्रति, संभृतस्नेहम् = अनुरागपूर्ण (है, ऐसा), जाने = जानता हूँ। अस्मात् = इसलिए, प्रथमविरहे = प्रथमवियोग में, ताम् = उसे, इत्थम्भूताम् = पहले कही गयी दीनदशा को प्राप्त हुई होगी (ऐसा) अहम् = मैं, तर्कयामि = अनुमान कर रहा हूँ। सुभगंमन्यभावः = अपने को सौभाग्यशाली समझने का

अहंकार, माम् = मुझे, वाचालम् = अधिक बोलने वाला, न करोति=नहीं बना रहा है, (किन्तु) हे भ्रातः=हे बन्धु, यत् = जो कुछ भी, मया = मैंने, उक्तम् = कहा है। तत् = वह, निखिलम् = सभी, अचिरात् = शीघ्र ही, ते = तुम्हारी, प्रत्यक्षम् = आँखों के सामने आएगा ॥ ३१ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! मत्प्रियायाश्चित्तं मद्विषयेऽत्यन्तानुरागपूर्णमस्तीत्यहं जानामि। अस्मादहं तां स्वप्रियामस्मिन्नभूतपूर्ववियोगे तादृगवस्थाप्राप्तां संभावयामि। आत्मानं सौभाग्यशालिनं मत्वा नाऽहं बहु भाषयामि, (अपितु) हे भ्रातः ! यन्मयोक्त तन्निखिलं त्वद्दृग्गोचरीभविष्यति ॥ ३१ ॥

हिन्दी—हे मेघ ! मेरी प्रिया का मन मेरे प्रति बहुत ही अनुरागपूर्ण है, (इस बात को) मैं जानता हूँ। इसलिए इस अभूतपूर्व वियोग में वह मेरी प्रिया 'ऐसी हो गयी होगी' ऐसा अनुमान करता हूँ। हे भाई ! मुझे 'अपने को सौभाग्यशाली समझने का अभिमान' अधिक बोलने वाला नहीं बना रहा है, (अपितु) जो कुछ भी मैंने उसकी दीन-दशादि का वर्णन किया है वह शीघ्र ही तुम्हारी आँखों के सामने आ जायेगा ॥ ३१ ॥

समासः—संभृतः स्नेहो यस्य तत् = संभृतस्नेहम् (बहु०)। प्रथमश्चासौ विरहः प्रथमविरहः (कर्मधा०)। इत्थं भूतामिति (सुप्सुपा)। सुभगम्मन्यस्य भावः = सुभगम्मन्यभावः (ष० तत्०)। अक्षं प्रति इति = प्रत्यक्षम् (अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीययेति समासः)।

कोशः—स्याज्जल्पाकस्तु वाचालो वाचाटो बहुगर्ह्यवाक्, इत्यमरः।

टिप्पणी—संभृतः='सम्' उपसर्गपूर्वक 'भृ' धातु से 'क्त' प्रत्यय करके 'सभृतः' ऐसा रूप उपपन्न होता है। स्नेह—प्रीत्यर्थक 'स्निह' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करके स्नेह ऐसा रूप उपपन्न होता है। अस्मात्—यहाँ 'हेतौ' इस सूत्र से पञ्चमी हुई है। सुभगम्मन्य—आत्मानं सुभगं मन्यत इति 'सुभगम्मन्यः' यहाँ 'सुभग' उपपदक 'मन्' धातु से 'आत्ममाने खश्च' इस सूत्र से 'खश्' प्रत्यय करके 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' इस सूत्र से मुमागम

करके 'सुभगम्मन्य' ऐसा रूप उपपन्न होता है। वाचालम्—बहुगर्ह्या वाक् यस्य इस विग्रह में 'कुत्सायामिति वक्तव्यम्' इस वार्तिक से कुत्सा अर्थ में 'वाक्' शब्द से 'आलजाटचौ बहुभाषिणि' इस सूत्र से 'आलच्' प्रत्यय हुआ है।

अलङ्कारः—यहाँ तृतीय चरणोक्त अर्थ का चतुर्थ चरण कथित वाक्यार्थ हेतु है अतः यहाँ 'काव्यलिङ्ग' अलङ्कार है ॥ ३१ ॥

रुद्धापाङ्गप्रसरमलकैरञ्जनस्नेहशून्यं
प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम् ।
त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्या
मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति ॥३२॥

अन्वयः—अलकैः, रुद्धापाङ्गप्रसरम् अञ्जनस्नेहशून्यम्, अपि च, मधुनः, प्रत्यादेशात्, विस्मृतभ्रूविलासम्, त्वयि, आसन्ने, उपरिस्पन्दि, मृगाक्ष्या, नयनम् मीनक्षोभात्, चलकुवलयश्रीतुलाम्, एष्यति, इति शङ्के ॥ ३२ ॥

व्याख्या—अलकैः = चूर्णकुन्तलैः, रुद्धापाङ्गप्रसरम्=अवरुद्धकटाक्षप्रक्षेपम्, अञ्जनस्नेहशून्यम् = कज्जलस्निग्धरहितम्, अपि च=तथा च, मधुनः = मद्यस्य, प्रत्यादेशात् = त्यागात्, विस्मृतभ्रूविलासम् = प्रस्मृतभ्रूभङ्गम्, त्वयि = मेघे, आसन्ने = समीपस्थे (सति) उपरिस्पन्दि = ऊर्ध्वभागे स्फुरशीलम्, मृगाक्ष्याः= हरिणनेत्रायाः, नयनम् = लोचनम्, मीनक्षोभात्=मत्स्यसञ्चरणात्, चलकुवलय-श्रीतुलाम् = चञ्चलनीलपद्मशोभोपमाम्, एष्यति = गमिष्यति, इति शङ्के = इति संभावयामि ॥ ३२ ॥

शब्दार्थः—अलकैः = घुंघराले बालों से, रुद्धापाङ्गप्रसरम्=जिसके कटाक्ष-विशेष अवरुद्ध हो गये हैं, अञ्जनस्नेहशून्यम्=काजल की चिकनाहट से विहीन, अपि च=और भी, मधुनः=मदिरा (शराब) के, प्रत्यादेशात्=त्याग से, विस्मृत-भ्रूविलासम्=जो भौंहों की भङ्गिमा को भूल गया है, त्वयि=तुम्हारे, आसन्ने=

समीप आने पर, उपरिस्पन्दि=ऊपरी भाग में स्पन्दनयुक्त, मृगाक्ष्याः=मृगनयनी का, (वह) नेत्रम्=नेत्र, मीनक्षोभात्=मछली के चलने के कारण, चलकुवलयश्रीतुलाम्=हिलते हुए नीलकमल की शोभा की उपमा को, एष्यति=प्राप्त करेगा, इति शङ्के=ऐसा मैं अनुमान कर रहा हूँ ॥ ३२ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! कटाक्षशून्यं कज्जलस्नेहरहितं विरहे मद्यपरित्यागात् परित्यक्तभ्रूविलासं मृगनेत्रायाः मत्प्रियायाः वामनेत्रं त्वयि समीपस्थे सति ऊर्ध्वभागे स्फुरणयुक्तं सत्, मत्स्यसञ्चरणेन सञ्चलन्नीलपद्मशोभोपमां प्राप्स्यतीति संभावयामि ॥ ३२ ॥

हिन्दी—हे मेघ ! कटाक्ष एवं काजल से रहित, विरह में मद्यपान के परित्याग से जो भौहों की क्रीड़ा को भूल गया है वह मेरी मृगनयनी प्रिया का नेत्र तुम्हारे समीप आने पर ऊपर के भाग में फड़कता हुआ, मछली के चलने से हिलते हुए नीलकमल की शोभा की उपमा को प्राप्त करेगा ॥ ३२ ॥

समासः—अपाङ्गयोः प्रसराः=अपाङ्गप्रसराः (ष० तत्०) रुद्धा अपाङ्गप्रसरा यस्य तत्=रुद्धापाङ्गप्रसरम् (बहु०)। अञ्जनेन स्नेहः=अञ्जनस्नेहः (तृ० तत्०) तेन शून्यम्=अञ्जनस्नेहशून्यम् (तृ० त०)। भ्रुवोर्विलासः भ्रूविलासः (ष० तत्०) विस्मृतो भ्रूविलासो येन तत्=विस्मृतभ्रूविलासम् (बहु०)। मृगस्य इव अक्षिणी यस्याः सा मृगाक्षी (व्यधिकरण बहु०) तस्याः। मीनैः क्षोभः=मीनक्षोभः (तृ० तत्०), तस्मात्। चलञ्च तत् कुवलयम् (कर्म०) तस्य श्रीः=चलकुवलयश्रीः (ष० तत्०) तस्याः तुलाम्=चलकुवलयश्रीतुलाम् (ष० तत्०)।

कोशः—अपाङ्गौ नेत्रयोरन्तौ, इत्यमरः। प्रत्यादेशो निराकृतिः, इत्यमरः।

टिप्पणी—रुद्धापाङ्ग०—विरह-व्रत में शरीर संस्कार मात्र का निषेध होने के कारण यक्षपत्नी के बाल बिखरे हुए हैं अतः कटाक्ष प्रक्षेप अवरुद्ध है, यह इस वाक्य का भाव है। अञ्जनस्नेहः—यहाँ भी उक्त कारण से ही यक्षप्रिया की आँखें कज्जल-विहीन हैं। विस्मृतभ्रूविलासम्—मद्यपान केवल

ब्राह्मण के लिए निषिद्ध है, भोग-योनि यक्ष इत्यादि के लिए उसका निषेध नहीं है, यक्षप्रिया पी सकती है, परन्तु प्रोषितभर्तृका के लिए 'मदिरा' त्याज्य होने के कारण वह मदिरा नहीं पीती, इसलिए छोड़े हुए भ्रूविलास को मानो वह भूल ही गयी है। **उपरिस्पन्दि**—इस वाक्य से इष्टप्राप्ति अर्थात् प्रियासमागम का लाभ ध्वनित होता है; क्योंकि नेत्र के ऊपरी भाग के फड़कने से इष्टप्राप्ति होती है। जैसा कि निमित्तनिदान में लिखा है—

'इष्टप्राप्तिं दृशोरूर्ध्वमपाङ्गे हानिमादिशेत् ॥' इति ।

मृगाक्षी—बहुव्रीहि समास से बने 'मृगाक्षि' शब्द से 'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्' इस सूत्र से समासान्त 'षच्' प्रत्यय होकर 'मृगाक्ष' ऐसा रूप बनता है। पश्चात् 'षिद्गौरादिभ्यश्च' इस सूत्र से स्त्रीत्व विवक्षा मे 'ङीप्' होकर 'मृगाक्षी' ऐसा रूप निष्पन्न होता है।

अलङ्कारः—यहाँ उपमा अलङ्कार है एवं अन्यच्छायायोनि भी है, क्योंकि इसी अर्थ का श्लोक वाल्मीकि रामायण के सुन्दरकाण्ड में आता है।

तस्याः शुभं वाममरालपक्ष्मराजीवृतं कृष्णविशालशुक्लम् ।
प्रास्पन्दतैकं नयनं सुकेश्या मीनाहतं पद्ममिवाऽभिताम्रम् ॥ ३२ ॥
(वा० रा० सु०, २९।२)

वामश्चास्याः कररुहपदैर्मुच्यमानो मदीयै-
र्मुक्ताजालं चिरपरिचितं त्याजितो दैवगत्या ।
सम्भोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानां
यास्यत्यूरुः सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम् ॥३३॥

अन्वयः—मदीयैः, कररुहपदैः, मुच्यमानः, चिरपरिचितम्, मुक्ताजालम्, दैवगत्या, त्याजितः, संभोगान्ते, मम, हस्तसंवाहनानाम्, समुचितः, सरसकदलीस्तम्भगौरः, अस्याः, वामः, ऊरुः चलत्वम्, यास्यति ॥ ३३ ॥

व्याख्या—मदीयैः = मामकीनैः, कररुहपदैः = नखचिह्नैः, मुच्यमानः = परिहीयमाणः, चिरपरिचितम् = चिराऽभ्यस्तम्, मुक्ताजालम् = मौक्तिकसरमयम्, दैवगत्या = भाग्यवशेन, त्याजितः = मोचितः, संभोगान्ते = सुरतसमाप्तौ, मम = यक्षस्य, हस्तसंवाहनानाम् = करमर्दनानाम्, समुचितः = योग्यः, सरसकदलीस्तम्भगौरः = रसार्द्रकदलीस्तम्भपाण्डुरः, अस्याः = मत्प्रियायाः, वामः = दक्षिणान्यः, ऊरुः = सक्थि, चलत्वम् = स्पन्दनं, यास्यति = प्राप्स्यति ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—मदीयैः = मेरे, कररुहपदैः = नखों के चिह्नों से, मुच्यमानः = मुक्त, चिरपरिचितम् = प्राचीन समय से अभ्यस्त, मुक्ताजालम् = मोतियों की लड़ी वाली (करधनी) से, दैवगत्या = भाग्यवश, त्याजितः = विमुक्त, संभोगान्ते = रति (सुरत) क्रीडा के पश्चात्, मम = मेरे, हस्तसंवाहनानाम् = हाथों के मर्दनों के, समुचितः = योग्य, सरसकदलीस्तम्भगौरः = रसपूर्ण केले के स्तम्भ (तने) के समान गोरी, अस्याः = इस मेरी प्रिया की, वामः = बायीं, ऊरुः = जांघ, चलत्वम् = चञ्चलता को, यास्यति = प्राप्त करेगी ॥३३॥

भावार्थः—हे मेघ ! त्वयि समीपस्थे मदीयनखचिह्नरहितः, भाग्यवशात् त्याजितमुक्तामयकटिभूषणः सुरतसमाप्तौ मदीयहस्तसंवाहनयोग्यः सरसरम्भास्तम्भविशदो मम प्रियायाः वाम ऊरुः चाञ्चल्यं प्राप्स्यति ॥ ३३ ॥

हिन्दी—हे मेघ ! तुम जब मेरी प्रिया के समीप जाओगे उस समय मेरे नाखूनों के चिह्नों से रहित, भाग्यवश मोतियों की लड़ी वाली करधनी से हीन, संभोग के पश्चाद् मेरे हाथों द्वारा सम्मर्दन के योग्य गीले-गीले केले के तने के समान गोरी मेरी प्रिया की बायीं जांघ फड़क उठेगी ॥ ३३ ॥

समासः—करे रुहन्तीति = कररुहाः (उपपद०) कररुहाणां पदानि = कररुहपदानि (ष० तत्०) तैः । चिरं परिचितं = चिरपरिचितम् (सुप्सुपेति समासः) । मुक्तानां जालं = मुक्ताजालम् (ष० तत्०) । दैवस्य गतिः = दैवगतिः (ष० तत्०) तया । संभोगस्य अन्तः = संभोगान्तः (ष० तत्०) तस्मिन् । हस्ताभ्यां संवाहनानि = हस्तसंवाहनानि (तृ० तत्०) तेषाम् । रसेन सहितः =

सरस: (तुल्य० बहु०), कदल्या: स्तम्भ:=कदलीस्तम्भ: (ष० तत्०) ; सरसश्चासौ कदलीस्तम्भ:=सरसकदलीस्तम्भ: (कर्म० धा०), सरसकदलीस्तम्भ इव गौर:=सरसकदलीस्तम्भगौर: (उपमान कर्म० धा०)।

कोश:—पुनर्भव: कररुहो नखोऽस्त्री नखरोऽस्त्रियाम्, इत्यमर: । संवाहनं मर्दनं स्यात्, इत्यमर: । कदली वारणबुसा रम्भा मोचांशुमत्, इत्यमर: ।

टिप्पणी—मदीयै:—मम इमानि=मदीयानि । यहाँ 'अस्मद्' शब्द का 'त्यदादीनि च' इस सूत्र से वृद्ध संज्ञा होती है, एवं 'वृद्धाच्छ:' इस सूत्र से वृद्धसंज्ञक 'अस्मद्' शब्द से 'छ' प्रत्यय होता है और उसके स्थान पर 'आयनेयं नीयिय: फढखछघां प्रत्ययादीनाम्' इस सूत्र से 'ईय्' आदेश होता है । पश्चात् 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्च' इस सूत्र से 'अस्मत्' के स्थान में 'मत्' आदेश करके 'मदीय' पद की सिद्धि होती है । उक्त रूप तृतीया विभक्ति के बहुवचन का है । **कररुहा:**—'करं रोहन्ति' इस विग्रह में 'कर' उपपदपूर्वक 'रुह' धातु से 'इगुपधज्ञाप्रीकिर: क:' इस सूत्र से 'क' प्रत्यय हुआ है। **मुच्यमान:**—मोचनार्थक 'मुच्' (ऌ) धातु से लट् लकार एवं कर्म में यक् प्रत्यय लाकर 'लट: शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे' इस सूत्र से 'लट्' के स्थान में 'शानच्' आदश करके 'मुच्यमान' ऐसा शब्द उपपन्न होता है । **त्याजित:**—इस शब्द की उत्पत्ति के विषय मे भी ३०वें श्लोक के 'मोचयिष्यति' पद की तरह महामहोपाध्याय मल्लिनाथजी एवं डा० शारदारञ्जन रायजी का वैमत्य है। मल्लिनाथजी ने 'द्विकर्मसु पचादीनां चोपसंख्यानमिष्यते' इस वार्तिक के आधार पर 'त्यज्' धातु को द्विकर्मक माना है, परन्तु यह मत सिद्धान्तकौमुदीमान्य नहीं है । अत: रायजी ने 'त्यज्' धातु को भी गत्यर्थक मानकर इसे द्विकर्मक माना है। यहाँ 'हेतुमति च' इस सूत्र से 'णिच्' प्रत्यय हुआ है । यह 'ऊरु' का विशेषण है। यहाँ 'कर्मवाच्य' का प्रयोग होने से गौण कर्म 'ऊरु' में प्रथमा विभक्ति हुई है। **संवाहनम्**—'सम्' उपसर्गपूर्वक 'वह्' धातु से णिच् प्रत्यय करके फिर धातु संज्ञा करके 'करणाधिकरणयोश्च' इस सूत्र से 'ल्युट्' प्रत्यय हुआ है। **सरस**—इस शब्द से

कवि अच्छी तरह परिपक्व हरेभरे केले के तने के समान 'न कि सूखे तने के समान' इस भाव को ध्वनित करना चाहता है ।

अलङ्कारः—यहाँ 'उपमा' अलङ्कार है ॥ ३३ ॥

तस्मिन् काले जलद ! यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्या-
दन्वास्यैनां स्तनितविमुखो याममात्रं सहस्व ।
मा भूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथञ्चित्
सद्यःकण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि गाढोपगूढम् ॥३४॥

अन्वयः—हे जलद ! तस्मिन्, काले, सा, यदि, लब्धनिद्रासुखा, स्यात्, एनाम्, अन्वास्य, स्तनितविमुखः, याममात्रम्, सहस्व । अस्याः, प्रणयिनि, मयि, कथञ्चित्, स्वप्नलब्धे, गाढोपगूढम्, सद्यःकण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि, मा भूत् ॥ ३४ ॥

व्याख्या —हे जलद !—हे मेघ ! तस्मिन्=पूर्वोक्ते, काले=समये, त्वयि समीपस्थ इति भावः । सा=मत्प्रिया, यदि=चेत्, लब्धनिद्रासुखा=प्राप्तस्वप्नामोदा, स्यात्=भवेत्, (तर्हि) एनाम्=मत्प्रियाम्, अन्वास्य=पृष्ठदेशमुपविश्य, स्तनितविमुखः=गर्जितरहितः, (सन्) तूष्णीं भूत्वेत्यर्थः । याममात्रम्=प्रहरमात्रम्, सहस्व=प्रतीक्षस्व । अस्याः=मत्प्रियायाः, प्रणयिनि=वल्लभे, मयि=यक्षे, भर्तरि, कथञ्चित्=केनापि प्रकारेण, स्वप्नलब्धे=स्वापावाप्ते, (सति) गाढोपगूढम्=दृढाऽऽलिङ्गितम्, सद्यः=तत्क्षणम्, कण्ठच्युतलताग्रन्थि=गलस्रस्तबाहुवल्लीग्रन्थनम्, मा भूत्=न स्यात् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थः—हे जलद !=हे मेघ ! तस्मिन्=पहले कहे गये, काले=समय में (तुम्हारे समीप जाने पर), सा=वह मेरी प्रिया, यदि, लब्धनिद्रासुखा=नींद के सुख को प्राप्त कर रही, स्यात्=हो (तो), एनाम्=उस मेरी प्रिया के, अन्वास्य=पीछे बैठकर, स्तनितविमुखः=गर्जन से रहित होकर (निःशब्द), याममात्रम्=एक प्रहर मात्र, सहस्व=(उसकी) प्रतीक्षा करना । अस्याः=मेरी प्रिया के, प्रणयिनि=प्रियतम, मयि=मेरे, कथञ्चित्=किसी प्रकार, स्वप्न-

लब्धे=सपने में प्राप्त होने पर, गाढोपगूढम्=दृढ़ आलिङ्गन, सद्यः=तुरत ही, कण्ठच्युतलताग्रन्थि=गले में बँधी लताओं जैसी भुजाओं का बन्धन विच्छिन्न, न स्यात्=न हो ॥ ३४ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! यदि तस्मिन् समये मत्प्रिया निद्रामग्ना स्यात्, तर्हि त्वं तस्याः पृष्ठदेशमुपविश्य निःशब्दः सन् याममात्रं तां प्रतीक्षस्व, यतो हि, येन केनापि प्रकारेण स्वप्नलब्धे मयि प्रेयसि सति (त्वद्गर्जितेन) सद्यः गाढाऽऽलिङ्गनं न स्यात् ॥ ३४ ॥

हिन्दी—हे मेघ ! तुम्हारे समीप जाने के समय वह मेरी प्रिया यदि निद्रा-सुख ले रही हो तो तुम उसके पीछे निःशब्द बैठकर एक प्रहर मात्र उसकी प्रतीक्षा करना, क्योंकि उसके प्रियतम मेरे किसी प्रकार से स्वप्न में प्राप्त होने पर (तुम्हारे गर्जन से) कण्ठ में प्राप्त भुज-लताओं का गाढ़ आलिङ्गन बन्धन-रहित न हो जाय (टूट न जाए) ॥ ३४ ॥

समासः—निद्रायाः सुखम्=निद्रासुखम् (ष० त०)। लब्धं निद्रासुखं यया सा लब्धनिद्रासुखा (बहु०)। स्तनितात् विमुखः=स्तनितविमुखः (पं० तत्०)। याम एव याममात्रम् (मयूरव्यंसकादयश्चेति समासः)। स्वप्ने लब्धः=स्वप्नलब्धः (स० तत्०) तस्मिन् । गाढञ्च तदुपगूढम्=गाढाप-गूढम् (क० धा०)। कण्ठात् च्युतः=कण्ठच्युतः (पं० तत्०) भुजौ लते इव भुजलते (उपमित कर्म०)। भुजलतयोः ग्रन्थिः=भुजलताग्रन्थिः (ष० तत्०)। सद्यः कण्ठच्युतः=सद्यःकण्ठच्युतः (सुप्सुपा०) सद्यःकण्ठच्युतो भुजलताग्रन्थिः यस्य तत्=सद्यःकण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि (बहु०)।

कोशः—द्वौ यामप्रहरौ समौ, इत्यमरः । वाढ-वाढदृढानि च, इत्यमरः । स्तनितं गर्जितं मेघनिर्घोषे रसितादि च, इत्यमरः ।

टिप्पणी—जलदः–जलं ददाति इति जलदः, जल उपपदपूर्वक 'दा' धातु से 'आतोऽनुपसर्गे कः' इस सूत्र से 'क' प्रत्यय करके धातु के 'आ'कार का लोप करके 'जलदः' ऐसा रूप निष्पन्न होता है। **स्यात्**—सत्तार्थक् 'अस्' धातु से लिङ्लकार का उक्त रूप है। **अन्वास्य**—'अनु' उपसर्गपूर्वक 'आस्'

धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय करके उसके स्थान पर 'ल्यप्' करके 'अन्वास्य' रूप निष्पन्न होता है। **याममात्रम्**—यहाँ 'कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इस सूत्र से द्वितीया हुई है। **सहस्व**—यह रूप मर्षणार्थक (ष) सह् धातु के लोट्लकार के मध्यमपुरुष के एकवचन का है। यक्ष मेघ से एक प्रहर तक प्रतीक्षा करने को कहता है; क्योंकि 'संभोग' एक प्रहर से अधिक नहीं हो सकता, उसके बाद यदि तुम गर्जन करोगे भी तो वह मेरे सहवास सुख को प्राप्त कर चुकी होगी अतः उससे कोई क्षति नहीं होगी, मध्य में गर्जने से वह उक्त सुख से वञ्चित रह जाएगी, यह भाव है। रतिविलास में संभोग की चरमावधि एक प्रहर माना गया है—'परमा तु रतिर्यूनामिष्टा यामावसायिकी' इति। **उपगूढम्**—'उप' उपसर्गपूर्वक् 'गुह' धातु से 'नपुंसके भावे क्त' इस सूत्र से 'क्त' प्रत्यय करके ढत्व ष्टुत्व आदि करके 'ढो ढे लोपः' इस सूत्र से धातु के ढकार के लोप हो जाने पर 'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' इस सूत्र से धातु के 'उ'कार को दीर्घ करके 'उपगूढ' ऐसा बनता है।

अलङ्कारः—यहाँ 'याममात्रं' सहस्व के प्रति उत्तरार्ध का वाक्यार्थ हेतु है। अतः 'काव्यलिङ्ग' अलङ्कार है। एवञ्च 'भुजलता' यहाँ लुप्तोपमा है। इस प्रकार दोनों के अङ्गाङ्गिभावतया रहने से 'संकर' अलङ्कार है॥ ३४॥

तामुत्थाप्य स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन
प्रत्याश्वस्तां सममभिनवैर्जालकैर्मालतीनाम्।
विद्युद्गर्भः स्तिमितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे
वक्तुं धीरः स्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः॥३५॥

अन्वयः—(हे मेघ !) ताम्, स्वजलकणिकाशीतलेन, अनिलेन, उत्थाप्य, अभिनवैः, मालतीनाम्, जालकैः, समम्, प्रत्याश्वस्ताम्, त्वत्सनाथे, गवाक्षे स्तिमितनयनाम्, मानिनीम्, विद्युद्गर्भः, धीरः, स्तनितवचनैः, वक्तुम्, प्रक्रमेथाः॥ ३५॥

व्याख्या—(हे मेघ !) ताम् = मत्प्रियाम्, स्वजलकणिकाशीतलेन =

निजोदकबिन्दुशिशिरेण, अनिलेन=वायुना, उत्थाप्य=प्रबोध्य, अभिनवैः=नूतनैः, मालतीनाम्=जातिकुसुमानाम्, जालकैः=कोरकैः, समम्=सार्धम्, प्रत्याश्वस्ताम् = सुस्थिताम्, त्वत्सनाथे=भवत्युक्ते, गवाक्षे = वातायने, स्तिमितनयनाम्=निष्पन्दलोचनाम्, मानिनीम्=मनस्विनीम्, (मत्प्रियाम्) विद्युद्गर्भः=विद्युदात्मा, धीरः=दृढः (सन्) स्तनितवचनैः=गर्जितवाग्भिः, वक्तुम्=भाषितुम्, प्रक्रमेथाः=उपक्रमस्व ॥ ३५ ॥

शब्दार्थः—(हे मेघ !) ताम्=उस मेरी प्रिया को, स्वजलकणिकाशीतलेन=अपने वारि-बिन्दु से शीतल, वायुना=वायु के द्वारा, उत्थाप्य=जगाकर, अभिनवैः=नूतन, मालतीनाम्=चमेली के, जालकैः=कलियों से (एवं) प्रत्याश्वस्ताम्=स्वस्थ, त्वत्सनाथे=तुम से युक्त, गवाक्षे=खिड़की पर, स्तिमितनयनाम्=निश्चल नेत्रों वाली (आँख गड़ाकर देखती हुई), मानिनीम् =मानिनी (उस मेरी प्रिया को), विद्युद्गर्भः=अपने भीतर बिजली को छिपाए हुए, धीरः=धैर्यपूर्वक, स्तनितवचनैः=गर्जनरूपीवाणी से, वक्तुं=कहना, प्रक्रमेथाः=आरम्भ करना ॥ ३५ ॥

भावार्थः—हे मेघ! सुप्तां मत्प्रियां निजसलिलकणशिशिरेण वायुना प्रबोध्य जातिकुड्मलैः साकं सुस्थितां त्वदावृते वातायने निश्चलनयनां विद्युतात्मा त्वं धीरः सन् गर्जितवचोभिः स्वकथनमारभस्व ॥ ३५ ॥

हिन्दी—हे मेघ ! उस मेरी प्रिया को अपने जल-बिन्दु से शीतल वायु के द्वारा जगा कर चमेली की नयी कलियों के साथ सुस्थिता और तुमसे घिरी खिड़की की ओर आँख गड़ा कर देखती हुई मनस्विनी (उस मेरी प्रिया) को अपने भीतर बिजली को रखे हुए तुम धैर्यपूर्वक अपने गर्जनरूपी वचनों से कहना प्रारम्भ करना ॥ ३५ ॥

समासः—जलस्य कणिका=जलकणिका (ष० तत्०), स्वस्य जलकणिका स्वजलकणिका (ष० तत्०) ताभिः शीतलः=स्वजलकणिकाशीतलः (तृ० त०) तेन । नाथेन सहितः=सनाथः (तुल्ययोग बहु०) त्वया सनाथः=त्वत्सनाथः (तृ० त०) तस्मिन् । गवामक्षीव गवाक्षः (उपमित कर्म०) । स्तिमिते नयने

यस्याः सा = स्तिमितनयना (बहु०) ताम्। विद्युत् गर्भः यस्य सः विद्युद्गर्भः (बहु०)। स्तनितान्येव वचनानि = स्तनितवचनानि (रूप० क०) तैः।

कोशः—सुमना मालती जातिः, इत्यमरः। साकं सार्धं समं सह, इत्यमरः। क्षारको जालकं क्लीबे कलिका कोरकः पुमान्, इत्यमरः। सनाथं प्रभुमित्याहुः सहिते चित्ततापिनी, इति शब्दार्णवः। गर्भोपवारकेऽन्तःस्थे कुक्षिस्थे चार्भके मतः, इति शब्दार्णवः।

टिप्पणी—उत्थाप्य—'उद्' उपसर्गपूर्वक णिजन्त 'स्थापि' धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय करके उसके स्थान पर ल्यप् करके पुगादि करके 'उत्थाप्य' ऐसा निष्पन्न होता है। प्रत्याश्वस्ताम्—'प्रति' एवं 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'श्वस्' धातु से कर्ता में 'क्त' प्रत्यय करके स्त्रीत्वविवक्षा में टाप् करके 'प्रत्याश्वस्ता' ऐसा निष्पन्न किया जाता है, यह रूप द्वितीया विभक्ति के एकवचन का है। मानिनी—प्रशस्तो मानो यस्याः सा मानिनी। धीरः—यहाँ इस पद को देने का अभिप्राय 'दृढ़तापूर्वक यक्षपत्नी को भलीभाँति समझावे, क्योंकि स्त्रियाँ स्वभाव से घबरालू होती हैं, अन्यथा जो स्वयं दृढ़ नहीं हैं वह दूसरे को धैर्य कैसे बँधायेगा' यह है।

अलङ्कारः—इस श्लोक में 'जालकैः समम्' यहाँ 'सहोक्ति' एवं 'स्तनित' में वचन आरोप प्रकृत कथन में उपयोगी है अतः 'परिणाम' अलङ्कार, एवञ्च दोनों के परस्पर निरपेक्ष भाव से रहने के कारण 'संसृष्टि' नामक अलङ्कार है॥ ३५॥

भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे ! विद्धि मामम्बुवाहं
तत्संदेशैर्हृदयनिहितैरागतं त्वत्समीपम्।
यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि॥३६॥

अन्वयः—हे अविधवे! माम्, भर्तुः, प्रियम्, मित्रम्, हृदयनिहितैः, तत्सन्देशैः, त्वत्समीपम्, आगतम्, अम्बुवाहम्, विद्धि। यः, अबलावेणिमोक्षोत्सु-

कानि, पथि, श्राम्यताम्, प्रोषितानाम्, वृन्दानि, मन्द्रस्निग्धैः, ध्वनिभिः, त्वरयति ॥ ३६ ॥

व्याख्या—सम्प्रति सन्देशप्रकारं निर्दिशति भर्तुरिति । हे अविधवे=हे सौभाग्यवति ! माम्=आगन्तुकं मेघम्, भर्तुः=पत्युः, प्रियम्=स्नेहास्पदम्, मित्रम्=सुहृदम्, हृदयनिहितैः=मनःसंस्थापितैः, तत्सन्देशैः=त्वत्भर्तृसन्देशैः, त्वत्समीपम् = भवत्पार्श्वम्, आगतम् = आयातम्, अम्बुवाहम्=जलदम्, विद्धि=जानीहि। यः=अहमम्बुवाहः, अबलावेणिमोक्षोत्सुकानि=वियोगिनी-बद्धवेणिमोचनोत्कंठितानि, पथि=मार्गे, श्राम्यताम् = श्रान्तिमापन्नानाम्, प्रोषितानाम्=प्रवासिनाम्, वृन्दानि=समूहान्, मन्द्रस्निग्धैः=गम्भीरमधुरैः, ध्वनिभिः = स्तनितैः, त्वरयति=चाञ्चलयति, शीघ्रं गन्तुं प्रेरयति इति भावः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः—हे अविधवे !=हे सौभाग्यवति ! माम्=मुझको, भर्तुः=(अपने) पति का, प्रियम्=स्नेही, मित्रम्=मित्र, (एवं) हृदयनिहितैः=हृदय में रखे हुए, तत्सन्देशैः=तुम्हारे पति के सन्देशों के साथ, त्वत्समीपम्=तुम्हारे पास, आगतम्=आया हुआ, अम्बुवाहम्=मेघ, विद्धि=जानो । यः=जो (मेघ), अबलावेणिमोक्षोत्सुकानि=विरहिणियों की बँधी वेणियों को खोलने के लिए उत्कण्ठित हो रहे, पथि=मार्ग में, श्राम्यताम्=थके-माँदे, प्रोषितानाम्=प्रवासियों के, वृन्दानि = समूहों को, मन्द्रस्निग्धैः, = मधुर एवं कर्णप्रिय, ध्वनिभिः = गर्जनों से, त्वरयति = (गृह जाने के लिए) शीघ्रता करवाता है ॥ ३६ ॥

भावार्थः—हे सौभाग्यवति ! मां निजवल्लभसुहृदं तत्सन्देशहरमम्बुवाह जानीहि । यो मेघः प्रवासिनां सङ्घान् गृहं गन्तुं शीघ्रतां कारयति ॥ ३६ ॥

हिन्दी–हे सुहागिन ! जो, अबलाओं की बँधी वेणियों को खोलने के लिए लालायित प्रवासियों के समूह को शीघ्र घर जाने की प्रेरणा देता है, वैसे मुझको सन्देश कहने के लिए तुम्हारे पास आया हुआ, अपने पति का प्रिय मित्र मेघ समझो ॥ ३६ ॥

समासः—विगतो धवो यस्याः सा विधवा (बहु०) । न विधवा अविधवा (नञ्०) तत्सम्बुद्धौ 'अविधवे' । हृदये निहिताः=हृदयनिहिताः (स० तत्०)

तैः। तस्य सन्देशाः=तत् सन्देशाः (ष० तत्०) तैः। अबलानां वेणयः= अबलावेणयः (ष० तत्०), ताषां मोक्षः=अबलावेणिमोक्षः (ष० तत्), तस्मिन् उत्सुकानि अबलावेणिमोक्षोत्सुकानि (स० तत्०)। मन्द्राश्च ते स्निग्धाः=मन्द्रस्निग्धाः, (कर्मधा०) तैः।

कोशः—अथ मित्रं सखा सुहृत्, इत्यमरः। स्त्री योषिदबला योषा, इत्यमरः। धवः प्रियः पतिर्भर्ता, इत्यमरः।

टिप्पणी–भर्तुः—'भृ' धातु से 'तृच्' प्रत्यय करके 'भर्तृ' ऐसा रूप साधु, होता है। यह रूप उक्त शब्द के षष्ठी विभक्ति के एकवचन का है। निहितैः–'नि' उपसर्गपूर्वक 'धा' धातु से 'क्त' प्रत्यय करके धातु के स्थान में 'दधातेर्हिः' इस सूत्र से 'हि' आदेश करके 'निहित' ऐसा रूप बनता है। यहाँ तृतीया विभक्तिः के बहुवचन का रूप है। सन्देशैः—'सम्' उपसर्गपूर्वक 'दिश्' धातु से कर्म में 'घञ्' प्रत्यय करके 'सन्देश' रूप बनता है। अम्बुवाहम्—अम्बु वहतीति, इस विग्रह में 'अम्बु' उपपदक 'वह' धातु से 'कर्मण्यण्' इस सूत्र से अण् प्रत्यय करके 'अम्बुवाह' रूप निष्पन्न होता है। यह द्वितीया के एकवचन का रूप है ॥ ३६ ॥

अलङ्कारः—यहाँ 'अविधवे !' यह साभिप्राय विशेषण है अतः 'परिकर' नामक अलङ्कार है ॥ ३६ ॥

इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा

त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य संभाष्य चैव ।

श्रोष्यत्यस्मात्परमविहिता सौम्य ! सीमन्तिनीनां

कान्तोदान्तः सुहृदुपगतः संगमात्किञ्चिदूनः ॥३७॥

अन्वयः—इति, आख्याते, उन्मुखी, सा, उत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया, मैथिली, पवनतनयम्, इव, त्वाम्, वीक्ष्य, सम्भाष्य, च, अस्मात्, परम्, अविहिता, श्रोष्यति, एव। सौम्य ! सीमन्तिनीनाम्, सुहृदुपगतः, कान्तोदान्तः, संगमात् किञ्चित्, ऊनः ॥ ३७ ॥

व्याख्या—हे मेघ ! इति=स्वपरिचयम्, आख्याते=कथिते सति (त्वयि) उन्मुखी=उन्नमितानना, सा=मत्प्रिया, उत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया=औत्सुक्य-विकसितमना, मैथिली=सीता, पवनतनयम्=वायुसुतम्, हनूमन्तमित्यर्थः, इव=यथा, त्वाम्=मेघम्, वीक्ष्य=अवलोक्य, सम्भाव्य च=सत्कृत्य च, अस्मात्=वल्लभमैत्री-ज्ञानात्, परम् = अनन्तरम् अविहिता = साऽवधाना सति, तल्लीना सतीत्यर्थः, श्रोष्यति=आकर्णयिष्यति, एव=निश्चयेन, मत्सन्देशमिति शेषः। हे सौम्य !=हे भद्र ! सीमन्तिनीनाम् = कामिनीनाम्, सुहृदुपगतः=मित्रनीतः, कान्तोदान्तः=वल्लभवृत्तान्तः, संगमात्=प्रियमिलनात्, किञ्चिदूनः=ईषन्न्यूनः, भवति इति शेषः ॥ ३७ ॥

शब्दार्थः—(हे मेघ !)=इस प्रकार, आख्याते=(तुम्हारे) कहने पर उन्मुखी=ऊपर की ओर मुँह किए; सा=वह मेरी प्रिया, उत्कण्ठोच्छ्वसित-हृदयः=उत्सुकता के कारण विकसित हृदय वाली (होती हुई), मैथिली=सीता, पवनतनयम्=हनुमानजी की, इव=तरह, त्वाम्=तुमको, वीक्ष्य=देखकर, सम्भाव्य च=और (तुम्हारा) सत्कार करके, अस्मात्=(तुम्हें पति का मित्र है यह जान लेने के), परम्=पश्चात्, अविहिता=सावधान (होकर) श्रोष्यति =(संदेशों को) सुनेगी, एव=निश्चय ही। हे सौम्य !=हे सज्जन ! सुहृदुपगतः=मित्र के द्वारा लाया गया, कान्तोदान्तः=प्रिय का वृत्तान्त, संगमात्= प्रिय समागम से, किञ्चित्=कुछ ही, ऊनः=कम होता है ॥ ३७ ॥

भावार्थः—हे मेघ ! अनेन प्रकारेण त्वत्कथिते सति जानकी हनुमन्तमिवोन्नतवदना विकसितचित्ता मत्प्रिया त्वां दृष्ट्वा सत्कृत्य च सावधाना सती मत्सन्देशमवश्यं श्रोष्यति, यतो हि कामिनीनां मित्र-प्राप्तः कान्तवृत्तान्तो वल्लभ-संगमादीषन्न्यूनो भवति ॥ ३७ ॥

हिन्दी—हे मेघ ! इस प्रकार तुम्हारे कहने पर जिस प्रकार सीताजी ने हनुमान् जी को देखा था और उनका सत्कार किया था उसी प्रकार मेरी प्रिया भी अपने मुँह को ऊपर उठाकर उत्सुकता से विकसित हृदय वाली होती हुई तुम्हें देखकर और तुम्हारा सत्कार करके, सावधान होकर मेरे सन्देश को अवश्य सुनेगी, क्योंकि हे सज्जन ! स्त्रियों के लिए मित्र के द्वारा लाया गया पति का वृत्तान्त प्रियसमागम से कुछ ही थोड़ा होता है ॥ ३७ ॥

समासः—पवनस्य तनयः=पवनतनयः (ष० तत्०) तम्। उन्नतं मुखं यस्याः सा उन्मुखी (बहु०)। उच्छ्वसितं हृदयं यस्याः सा उच्छ्वसितहृदया (बहु०), उत्कण्ठया उच्छ्वसितहृदया=उत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया (तृ० तत्०)। शोभनं हृदयं यस्य स सुहृत् (बहु०)। सुहृदा उपगतः=सुहृदुपगतः (तृ० तत्०)। कान्तस्य उदन्तः=कान्तोदान्तः (ष० तत्०)।

कोशः—नारी सीमन्तिनी वधूः, इत्यमरः। वार्ताप्रवृत्तिर्वृत्तान्तमुदन्तः स्यात्, इत्यमरः। स्वान्तं हृन्मानसं मनः, इत्यमरः।

टिप्पणी—**मैथिली**—मथ्यन्तोऽत्र रिपव इति मिथिला। विलोडनार्थक 'मिथ' धातु से 'मिथिलादयश्च' इस सूत्र से इलच् प्रत्यय करके मिथिला शब्द निष्पन्न होता है। मिथिलायां भवः इस विग्रह में 'मिथिला' शब्द से 'तत्र भवः' इस सूत्र से अण् प्रत्यय करके आदिवृद्धि करके 'मैथिल' ऐसा रूप निष्पन्न होता है। एवं स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् करके 'मैथिली' ऐसा निष्पन्न होता है। प्राचीन मिथिला के (जिसे इस समय दरभङ्गा, मधुबनी, जनकपुर, तिरहुत आदि कहते हैं,) राजा जनक थे और उन्हीं के द्वारा हल चलाते समय पृथ्वी से जानकीजी का जन्म हुआ था। ये हल के फाल पर मिली थीं अतः ये 'सीता' एवं मिथिला भूमि में जन्मी थीं इसलिए 'मैथिली' कही जाती हैं। **पवनतनयम्**—हनुमान्‌जी को 'पवन-तनय' कहा जाता है। उनका यह नाम क्यों पड़ा इस बात की चर्चा ग्रन्थ विस्तार से नहीं की जाती है। इन्होंने रामचन्द्र जी की अँगूठी (प्रत्यभिज्ञान) लेकर उनका दूत बनकर चार सौ कोष विस्तृत समुद्र को लाँघकर लङ्का में जाकर सीताजी का पता लगाया था और उन्हें रामचन्द्रजी का सन्देश सुनाया था। सीताजी ने भी हनुमान् को रामचन्द्रजी का पक्का दूत समझ लेने के बाद उनका सत्कार किया था, जैसा कि वाल्मीकि रामायण के सुन्दरकाण्ड में ये श्लोक आये हैं—

विक्रान्तस्त्वं समर्थस्त्वं प्राज्ञस्त्वं वानरोत्तम।
येनेदं राक्षसपदं त्वयैकेन प्रधर्षितम्॥
शतयोजनविस्तीर्णः सागरो मकरालयः।
विक्रमश्लाघनीयेन हनुमता गोष्पदी कृतः॥ इत्यादि।

उपर्युक्त उपमा के द्वारा सीता की तरह यक्षपत्नी का पातिव्रत्य एवं हनुमान् की तरह मेघ का दूतत्व सम्पादित होता है। उन्मुखी—उन्मुख शब्द घटक 'मुख' शब्द स्वाङ्गवाची है, अतः 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' इस सूत्र से स्त्रीत्व विवक्षा में 'ङीप्' हुआ है। श्रोष्यति—'श्रु' धातु के लृट्-लकार में प्रथमपुरुष के एकवचन का यह रूप है। सीमन्तिनी—'सीमान्तोऽस्त्यस्या:' इस विग्रह में 'सीमन्त' शब्द से 'अत इनिठनौ' इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय करके 'सीमन्तिन्' शब्द बनाया जाता है। पश्चात् स्त्रीत्वविवक्षा में 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' इस सूत्र से 'ङीप्' करके 'सीमन्तिनी' ऐसा रूप बनता है। **संगम**—सम् उपसर्गपूर्वक 'गम्' धातु से 'ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च' इस सूत्र से अप् प्रत्यय करके 'संगम' ऐसा रूप बनता है।

अलङ्कार:—यहाँ 'मैथिलीव' में उपमा अलङ्कार एवं 'अविहिता श्रोष्यति' इस वाक्य को चतुर्थ चरणोक्त वाक्य के द्वारा समर्थित होने के कारण 'अर्थान्तरन्यास' अलङ्कार है। एवं दोनों के निरपेक्ष भाव से रहने के कारण 'संसृष्टि' अलङ्कार है ॥ ३७ ॥

तामायुष्मन्मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं
ब्रूया एवं 'तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थ: ।
अव्यापन्न: कुशलमबले ! पृच्छति त्वां वियुक्त:'
पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव ॥ ३८ ॥

अन्वय:—हे आयुष्मन्, मम, वचनात्, आत्मन:, उपकर्तुम्, च, ताम्, एवम्, ब्रूया: 'हे अबले! तव, सहचर:, रामगिर्याश्रमस्थ:, अव्यापन्न:, वियुक्त:, त्वाम्, कुशलम्, पृच्छति'। सुलभविपदाम्, प्राणिनाम् एतदेव, पूर्वाभाष्यम् ॥ ३८ ॥

व्याख्या—हे आयुष्मन् = हे चिरञ्जीविन्! मम = यक्षस्य, वचनात् = प्रार्थनावाक्यात, आत्मन: = निजस्य, च, उपकर्तुम् = उपकारं कर्तुम्, ताम् = मत्प्रियाम्, एवम् = इत्थम्, ब्रूया: = व्याहर। किमिति कथयति–हे अबले! = हे दुर्बले! तव = भवत्या:, सहचर: = सहचारी 'भर्ता' इत्यर्थ:, रामगिर्याश्रमस्थ: = रामगिरिनामकपर्वताश्रमस्थ:, अव्यापन्न: = जीवित:, सकुशल इत्यर्थ:,

वियुक्तः = वियोगं प्राप्तः, (सन्) त्वाम् = भवतीम्, प्रियामित्यर्थः, कुशलम् = क्षेमम्, मङ्गलमितियावत्, पृच्छति=जिज्ञासते। सुलभविपदाम्=सुगमापत्तीनाम्, प्राणिनाम् = जन्तूनाम्, एतदेव = कुशलमेव, पूर्वाभाष्यम्=प्राक्कथनीयम् ॥३८॥

समासः—हे आयुष्यन् = हे चिरजीविन् ! मम=मेरे, वचनात् = प्रार्थना वाक्यों से, आत्मनश्च = और अपने को भी, उपकर्तुम् = उपकृत करने के लिए, अर्थात् परोपकार की भावना से, ताम् = उस मेरी प्रिया को, एवम् = इस प्रकार, ब्रूयाः = कहना, (कि) हे अबले ! = हे कृशाङ्गि ! तव = तुम्हारा, सहचरः = साथी (सहगामी), रामगिर्याश्रमस्थः=रामगिरि के आश्रमों में रहता हुआ, अव्यापन्नः = सकुशल, वियुक्तः=(तुमसे) बिछुड़ा (हुआ), त्वाम्=तुम्हारी, कुशलम् = कुशलता को, पृच्छति = पूछता है। सुलभविपदाम् = आसानी से विपत्तियों को प्राप्त करने वाले, प्राणिनाम् = प्राणियों के लिए, एतदेव = कुशल प्रश्न ही, पूर्वाभाष्यम् = प्रारम्भ में पूछने योग्य होता है ॥ ३८ ॥

भावार्थः—हे आयुष्मन् ! त्वं मत्प्रार्थनावचोभिरुपकारभावनया च मत्प्रियामित्थं कथयेः (यत्) हे अबले ! 'त्वत्प्रियः रामगिर्याश्रमेषु निवसन् कुशली त्वद्वियुक्तः सन् त्वत्कुशलं पृच्छति'। सुगमप्राप्तविपत्तीनां जन्तूनां प्राक्कथनीयं कुशलमेव भवति ॥ ३८ ॥

हिन्दी—हे चिरञ्जीव ! तुम मेरी प्रार्थना से और उपकार की भावना से मेरी प्रिया को ऐसा कहना—(कि) 'हे अबले ! तुम्हारा प्रियतम तुमसे बिछुड़ा हुआ रामगिरि पर्वत के आश्रमों में रहता हुआ सकुशल तुम्हारा कुशल पूछ रहा है।' क्योंकि अनायास ही विपत्ति में फँस जाने वाले प्राणियों को पहले कुशल ही पूछना चाहिए ॥ ३८ ॥

समासः—रामगिरेः आश्रमाः = रामगिर्याश्रमाः (ष० तत्०) तेषु तिष्ठति इति रामगिर्याश्रमस्थः (उपपदसमास०)। न व्यापन्नः = अव्यापन्नः (नञ्०)। पूर्वमाभाष्यम् = पूर्वाभाष्यम् (सुप्सुपा०)। सुलभा विपत् येषां ते सुलभविपदः (बहु०) तेषाम्।

कोशः—कुशलं क्षेममस्त्रियाम्, इत्यमरः। स्त्रीयोषिदबलायोषा, इत्यमरः। जैवातृकः स्यादायुष्मन्, इत्यमरः। विपत्यां विपदापदौ, इत्यमरः।

टिप्पणी—वचनात्—यहाँ 'वच्' धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय करके 'वचन' रूप निष्पन्न होता है। 'ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च' इस सूत्र से कर्म में पञ्चमी विभक्ति हुई है। आत्मनः—यहाँ पर 'आत्मन्' शब्द से द्वितीया विभक्ति प्राप्त थी क्योंकि वह 'उपकार' क्रिया का कर्म है, परन्तु सम्बन्ध की विवक्षा होने के कारण 'कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव' इससे षष्ठी हो गयी। उपकर्तुम्—'उप' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से तुमुन् प्रत्यय करके 'उपकर्तुम्' ऐसा रूप निष्पन्न होता है। अव्यापन्न—वि+आ उपसर्ग पूर्वक 'पद' धातु से 'क्त' प्रत्यय करके 'व्यापन्न' रूप बनता है, न व्यापन्नः अव्यापन्नः। सुलभविपदाम्—यह प्राणियों का विशेषण है। संसार में प्राणियों को विपत्ति प्राप्त होना सुलभ तो है ही। जैसा कि कवि ने अपने रघुवंश महाकाव्य में भी लिखा है—'विपदुत्पत्तिमतामुपस्थिता।' इति। भगवान् पतञ्जलि भी योगदर्शन में लिखते हैं—

'परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः' इति।

अलङ्कारः—इस श्लोक में पूर्व के तीनों चरणों में कहे गये वाक्य का समर्थन चतुर्थ चरणोक्त 'पूर्वाभाष्यम्' इत्यादि से किया गया है, अतः 'अर्थान्तरन्यास' अलङ्कार है॥ ३८॥

अङ्गेनाङ्गं प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तं
सास्रेणास्रद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन।
उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती
संकल्पैस्तैर्विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः॥३९॥

अन्वयः—(हे अबले!) दूरवर्ती, वैरिणा, विधिना, रुद्धमार्गः, तनुना, गाढतप्तेन, सास्रेण, उत्कण्ठितेन, समधिकतरोच्छ्वासिना, अङ्गेन, प्रतनु, तप्तम्, अस्रद्रुतम्, अविरतोत्कण्ठम्, उष्णोच्छ्वासम्, अङ्गम्, तैः, सङ्कल्पैः, विशति॥ ३९॥

व्याख्या – (हे सुन्दरी !) दूरवर्ती = दूरस्थः, वैरिणा = विपरीतेन, विधिना = विधात्रा, रुद्धमार्गः = अवरुद्धवर्त्मा, (तव प्रियः) तनुना = कृशेन, गाढतप्तेन = अत्यन्तोष्णेन, साऽस्रेण = अश्रुसहितेन, उत्कण्ठितेन = उत्सुकेन, समधिकतरोच्छ्वासिना = प्रबलनिःश्वासिना, अङ्गेन = स्वावयवेन, प्रतनु = बहुकृशम्, तप्तम् = सन्तप्तम्, अस्रद्रुतम् = नयनजलार्द्रम्, अविरतोत्कण्ठम् = निरन्तरवेदनायुक्तम्, उष्णोच्छ्वासम् = उष्णनिःश्वासम्, अङ्गम् = त्वदवयवम्, तैः = पूर्वानुभूतैः, सङ्कल्पैः = मनोरथैः, विशति = प्रविशति ॥ ३९ ॥

शब्दार्थः—दूरवर्ती = दूर देश में रहने वाला, वैरिणा = विपरीत, विधिना = भाग्य से, रुद्धमार्गः = रुके हुए मार्ग वाला, (तुम्हारा प्रियतम) तनुना = दुबले, गाढतप्तेन = अत्यन्ततापयुक्त, सास्रेण = आँसुओं से युक्त, उत्कण्ठितेन = उत्सुकतापूर्ण, समधिकतरोच्छ्वासिना = दीर्घनिःश्वास लेने वाले, अङ्गेन = (अपने) शरीर से, प्रतनु = अत्यधिक दुबले, तप्तम् = तापयुक्त, अस्रद्रुतम् = आसुओं से भींगे, अविरतोत्कण्ठम् = निरन्तर उत्कण्ठा (वेदना) युक्त, उष्णोच्छ्वासम् = गर्म-गर्म आहों वाले, अङ्गम् = (तुम्हारे) शरीर में, तैः = पहले के अनुभूत, सङ्कल्पैः = मनोरथों के साथ, विशति = प्रवेश करता है ॥ ३९ ॥

भावार्थः—हे अबले ! प्रतिकूलभाग्येनावरुद्धपथो दूरस्थस्त्वत्पतिः कृशेन संतप्तेनापूर्णेनोत्कण्ठितेन दीर्घनिःश्वासयुक्तेन स्वशरीरेण कृशे संतप्तेऽश्रुक्लिन्ने उत्कण्ठिते दीर्घनिःश्वासयुक्ते त्वत्शरीरे पूर्वानुभूतैः मनोरथैः प्रविशति ॥ ३९ ॥

हिन्दी—हे अबले ! विपरीत भाग्य के कारण रुके हुए मार्ग वाला दूर देश में रहने वाला (तुम्हारा पति) अपने दुबले-पतले, संतप्त, अश्रुपूर्ण, वेदना से युक्त, लम्बी-लम्बी आहें भरने वाले शरीर से अत्यन्त दुबले, तापयुक्त, आँसुओं से भींगे, वेदनापूर्ण, लम्बी-लम्बी आहों से युक्त तुम्हारे शरीर में पहले के अनुभूत मनोरथों से प्रवेश करता है ॥ ३९ ॥

समासः—दूरवर्ती—दूरे वर्तीति शीलमस्य इति = दूरवर्ती (उपपद०) । **रुद्धमार्गः**—रुद्धो मार्गो यस्य सः 'रुद्धमार्गः (बहु०) । गाढं तप्तम् = गाढतप्तम् (सुप्सुपा०) तेन । अस्रेण सहितम् = सास्रम् (तुल्य योग०) तेन । सम्यक्

अधिकतरम् = समधिकतरम् (कुगतिप्रा० इति समासः) । प्रकृष्टं तनु = प्रतनु (कुगतिप्रा० । अस्रैः द्रुतम् = अस्रद्रुतम् (तु० तत्०) तत् । न विरता = अविरता (नञ्०) अविरता उत्कण्ठा यस्य तत् = अविरतोत्कण्ठम् (बहु०) । उष्ण उच्छ्वासो यस्य तत् उष्णोच्छ्वासम् (बहु०) ।

कोशः—तिग्मं तीव्रं खरं तीक्ष्णं चण्डमुष्णं पटुस्मृतम्, इति यादवः । चाश्रुनेत्राम्बुरोदनं चास्रमश्रु च, इत्यमरः । गाढ-बाढ-दृढानि च, इत्यमरः । रिपौ वैरिसपत्नाऽरिद्विषद्द्वेषणदुर्हृदः, इत्यमरः । दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः, इत्यमरः ।

टिप्पणी—दूरवर्ती—'दूर' उपपदपूर्वक 'वृत्' धातु से तच्छील अर्थ में 'णिनि' प्रत्यय करके 'दूरवर्ती' ऐसा रूप बनता है । वैरी—वैरमस्यास्तीति 'वैरी' । 'वैर' शब्द से 'अत इनिठनौ' इस सूत्र से 'इन्' प्रत्यये 'वैरी' शब्द बनाया जाता है । उत्कण्ठितेन—उत्कण्ठा सञ्जात अस्येति इस विग्रह में 'उत्कण्ठा' शब्द से 'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्' इस सूत्र से 'इतच्' प्रत्यय हुआ है । प्रतनु—यक्ष ने अपने शरीर को केवल पतला कहा परन्तु पत्नी के शरीरको प्रतनु कहा—अर्थात् एक तो वह स्वाभाविक दुर्बल थी, वियोग में अत्यधिक दुर्बल हो गयी होगी । ठीक इसी भाव का श्लोक वाल्मीकि-रामायण में आता है । 'सा प्रकृत्यैव तन्वङ्गी तद्वियोगाच्च कर्शिता । प्रतिपत्पाठ-शीलस्य विद्येव तनुतां गता' इति ॥

अलङ्कारः—यहाँ 'सम' अलङ्कार है क्योंकि यक्ष के शरीर और उसके पत्नी के शरीर का एक समान कथन किया गया है ।

'समं स्यादानुरूप्येण श्लाघा या योग्यवस्तुनोः ।' (साहित्यदर्पण) ।

शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्तात्
कर्णे लोलः कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात् ।
सोऽतिक्रान्तः श्रवणविषयं लोचनाभ्यामदृश्य—
स्त्वामुत्कण्ठाविरचितपदं मन्मुखेनेदमाह ॥ ४० ॥

अन्वयः—(हे अबले !) यः, ते, सखीनाम्, पुरस्तात्, यत्, शब्दाख्येयम् अपि, आननस्पर्शलोभात्, कर्णे, कथयितुम्, लोलः, अभूत्, किल । श्रवणविषयम्, अतिक्रान्तः, लोचनाभ्याम्, अदृश्यः, स, त्वाम्, उत्कण्ठाविरचितपदम्, इदम्, मन्मुखेन, आह ॥ ४० ॥

व्याख्या—(हे अबले !) यः=त्वत्प्रियः, ते=तव, सखीनाम्=आलीनाम्, पुरस्तात्=सम्मुखम्, यत्=वचनम्, शब्दाख्येयम्=स्पष्टैः शब्दैः कथनीयम्, (तत्) अपि आननस्पर्शलोभात्=त्वद्वदनसम्पर्काभिलाषात्, कर्णे=श्रोत्रे, कथयितुम्=वक्तुम्, लोलः=चपलः, अभूत्=आसीत्, किल=निश्चयेन । श्रवणविषयम्=कर्णकुहरम्, अतिक्रान्तः=उल्लङ्घितः कर्णेन्द्रियाऽविषय इति भावः । लोचनाभ्याम्=नेत्राभ्याम्, अदृश्यः=अनवलोक्यः, सः=त्वत्प्रियः, उत्कण्ठाविरचितपदम्=औत्सुक्यनिर्मितपदम्, इदम्=अग्रेवक्ष्यमाणम्, मन्मुखेन =मदाननेन, आह=ब्रवीति ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—(हे अबले !) यः=जो, (तुम्हारा प्रियतम) ते=तुम्हारे, सखीनाम्=सखियों के, पुरस्तात्=सामने, यत्=जो, शब्दाख्येयम्=जो बात ऊँचे शब्दों में कही जा सकती थी (वह), अपि=भी, आननस्पर्शलोभात्= तुम्हारे मुख के स्पर्श के लोभ से, कर्णे=कान में, कथयितुम्=कहने के लिए, लोलः=चञ्चल, अभूत्=हो जाता था । श्रवणविषयः=कान के विषय से, अतिक्रान्तः=अछूता अर्थात् कान से जो नहीं सुना जा सकता, लोचनाभ्याम्= नेत्रों से अदृश्यः=जो नहीं देखा जा सकता, सः=वह (तुम्हारा प्रिय), त्वाम्= तुमको, उत्कण्ठाविरचितपदम्=उत्सुकतावश बनाये गये शब्दों वाला, इदम्= यह आगे कहा जाने वाला (सन्देश), मन्मुखेन=मेरे मुँह के माध्यम से, आह= कहता है ॥ ४० ॥

भावार्थः—हे सुन्दरि ! यस्ते वल्लभः पुरा त्वत्सहचरीनां समक्षं स्पष्टशब्दैः कथनीयमपि वचनं त्वन्मुख-चुम्बनाभिलाषया कर्णे वक्तुं चञ्चल आसीत् । स एव कर्णेन्द्रियातीतः चक्षुर्भ्यामदृश्यः दूरवर्ती त्वत्प्रियः उत्सुकतावशात् विरचित-पदं सन्देशं त्वां मन्मुखेन कथयति ॥ ४० ॥

हिन्दी—हे सुन्दरि ! जो प्रियतम तुम्हारी सखियों के सामने जिसे स्पष्ट शब्दों में (ऊँचे से) भी कहा जा सकता था ऐसी बातों को भी तुम्हारे मुख के

स्पर्श के लोभ से कान में कहने के लिए चञ्चल होता था। वही जिसे कानों से नहीं सुन सकती या जिसे आँखों से नहीं देख सकती (दूर रहने के कारण), तुम्हारा प्रिय उत्सुकता से बनाये गये शब्दों वाला सन्देश तुमको मेरे द्वारा कह रहा है ॥ ४० ॥

समासः—शब्देन आख्येयम्=शब्दाख्येयम् (तृ० त०), आननस्य स्पर्शः= आननस्पर्शः (ष० तत्०), आननस्पर्शे लोभः=आननस्पर्शलोभः (स० तत्०), तस्मात्। श्रवणयोः विषयः=श्रवण-विषयः (ष० तत्०) तम्। द्रष्टुं योग्यः दृश्यः, न दृश्यः=अदृश्यः (नञ्०), उत्कण्ठया विरचितानि पदानि यस्य तत्=उत्कण्ठाविरचितपदम् (बहु०)। मम मुखम्=मन्मुखम् (ष० तत्०) तेन।

कोशः—लोलुपो लोलुभो लोलो लालसो लम्पटोऽपि च, इति यादवः। पदं शब्दे च वाक्ये च, इति विश्वः। वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्, इत्यमरः।

टिप्पणी—स्पर्श—'स्पृश्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करके स्पर्श रूप निष्पन्न होता है। लोभः—'लुभ्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करके 'लोभ' शब्द निष्पन्न होता है। अभूत्—यह सत्तार्थक 'भू' धातु के लुङ्लकार का रूप है। दृश्यः— द्रष्टुं योग्यः, इस विग्रह में क्यप् प्रत्यय करके 'दृश्य' रूप बनता है।

श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि! सादृश्यमस्ति ॥४१॥

अन्वयः—(हे प्रिये!) श्यामासु, अङ्गम्, चकितहरिणीप्रेक्षणे; दृष्टिपातम्, शशिनि, वक्त्रच्छायाम्, शिखिनाम्, बर्हभारेषु, केशान्, प्रतनुषु, नदीवीचिषु, भ्रूविलासान्, उत्पश्यामि। हन्त! हे चण्डि! क्वचिदपि, एकस्मिन्, ते सादृश्यम्, न, अस्ति ॥ ४१ ॥

व्याख्या—(हे प्रिये !) श्यामासु=प्रियंगुवल्लीषु, अङ्गम्=शरीरम्, चकितहरिणीप्रेक्षणे=भयभीतमृगीविलोकने, दृष्टिपातम्=त्वन्नेत्र-क्रियाम्, शशिनि=चन्द्रमसि, वक्त्रच्छायाम्=त्वद्वदनकान्ति, शिखिनाम्=मयूराणाम्, बर्हभारेषु=पिच्छपुञ्जेषु, केशान्=अलकान्, प्रतनुषु=क्षीणासु, नदीवीचिषु=तटिनीतरङ्गेषु, भ्रूविलासान्, उत्पश्यामि=उत्प्रेक्षे (किन्तु) हन्त=इति विषादे, हे चण्डि=हे भामिनि, क्वचिदपि=कुत्रापि, एकस्मिन्=एकत्र, ते=तव, सादृश्यम्=साम्यम्, सर्वाङ्गीणतयेति शेषः, न=नहि, अस्ति=वर्तते ॥ ४१ ॥

शब्दार्थः—(हे प्रिये !) श्यामासु=प्रियंगुलताओं में, अङ्गम्=(तुम्हारे) शरीर को, चकितहरिणीप्रेक्षणे=भयभीतमृगी के देखने में, दृष्टिपातम्=तुम्हारे नेत्र व्यापार को, शशिनि=चन्द्रमा में, वक्त्रच्छायाम्=मुँह की शोभा को, शिखिनाम्=मयूरों के, बर्हभारेषु=पंखों के समूहों में, केशान्=बालों को, प्रतनुषु=पतली, नदी-वीचिषु=नदियों की तरङ्गों में, भ्रूविलासान्=तुम्हारे भौंहों के विभ्रम की; उत्पश्यामि=उत्प्रेक्षा (सम्भावना या कल्पना) किया करता हूँ, किन्तु हन्त !=खेद है कि, हे चण्डि=हे भामिनि ! क्वचिदपि=कहीं भी, एकस्मिन्=एक जगह (सर्वाङ्गीण रूप से), ते=तुम्हारी, सादृश्यम्=समानता; न=नहीं, अस्ति=है ॥ ४१ ॥

भावार्थः-हे प्रिये ! प्रियंगुलतासु त्वदङ्गम्, त्रस्तमृगीविलोकने दृष्टिपातम्, चन्द्रे वदनशोभाम्, मयूरपिच्छपुञ्जेष्वलकान्, क्षीणनदीतरङ्गेषु भ्रूविभ्रमास्तर्कयामि, किन्तु हन्त ! कुत्राप्येकस्मिन् साकल्येन त्वत्सादृश्यं नास्ति ॥ ४१ ॥

हिन्दी—हे प्रिये ! प्रियंगु लताओं में तुम्हारे शरीर की, भयभीत मृगी के देखने में तुम्हारे देखने की, चन्द्रमा में तुम्हारे मुँह की शोभा की, मोरों के पंखों के समूहों में तुम्हारे केशपाश की, पतली नदी की तरङ्गों में तुम्हारे भ्रूविलास की सम्भावना मैं किया करता हूँ, परन्तु खेद है कि कहीं भी एक जगह (सम्पूर्ण रूप से) तुम्हारी समानता नहीं है ॥ ४१ ॥

समासः—चकिताश्च ताः हरिण्यः=चकितहरिण्यः (कर्मधारय०) तासां प्रेक्षणम्=चकितहरिणीप्रेक्षणम् (ष० तत्०) तस्मिन् । वक्त्रस्य छाया=

वक्त्रच्छाया (ष० तत्०) ताम् । बर्हाणां भारः = बर्हभारः (ष० तत्०) तस्मिन् । प्रकृष्टाः तनवः = प्रतनवः (कुगति प्रा०) तेषु । नदीनां वीचयः = नदीवीचयः (ष० तत्०) तासु । भ्रुवो विलासाः = भ्रूविलासाः (ष० तत्०) तान् ।

कोशः—श्यामा तु महिलाह्वया । लता गोवन्दनी गुन्द्रा प्रियङ्गुः फलिनी फली, इत्यमरः । चण्डस्त्वत्यन्तकोपनः, इत्यमरः । स्त्रियां वीचिरथोर्मिषु, इत्यमरः । हन्त ! हर्षेऽनुकम्पायां वाक्याऽऽरम्भविषादयोः, इत्यमरः । एकाकी त्वेक एककः, इत्यमरः ।

टिप्पणी—यहाँ श्यामा का सादृश्य 'कोमलता' रूप समान धर्म के कारण किया गया है । भयभीत हरिणी के नेत्र का साम्य चाञ्चल्येन, चन्द्रमा की समानता आह्लादजनकत्वेन, मयूरों के पंखों का साम्य कृष्णत्वेन चिक्कणत्वेन और नदी-तरङ्गों का साम्य भ्रूविलास में टेढ़ेपन के कारण किया गया । **प्रेक्षण**—'प्र' उपसर्गपूर्वक 'इक्ष्' धातु से ल्युट् प्रत्यय करके 'प्रेक्षण' रूप निष्पन्न होता है । **दृष्टि**—'दृश' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय करके 'दृष्टि' शब्द निष्पन्न होता है । **वक्त्रच्छायाम्**—यहाँ पूर्व पदार्थ वक्त्र का बाहुल्य अर्थात् अधिकता न होने के कारण 'छाया बाहुल्ये' इस सूत्र से 'इक्षुच्छायाम्' के समान यह पद नपुंसकलिङ्गी नहीं हो सका । **शिखिनाम्**—शिखा अस्त्येषाम् इस विग्रह में 'शिखा' शब्द से 'अत इनिठनौ' सूत्र से 'इन्' प्रत्यय करके 'शिखिन्' शब्द निष्पन्न होता है, उक्त रूप षष्ठी विभक्ति के बहुवचन का है । **उत्पश्यामि**—'उत्' उपसर्गपूर्वक 'दृश' धातु के लट् लकार के प्रथम पुरुष के एकवचन का यह रूप है । **चण्डि**—'चडि' कोपे धातु के इदित होने के कारण 'इदितो नुम्धातोः' से नुम् करके णत्व आदि करके 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय करके 'चण्ड' ऐसा शब्द बनाकर पश्चात् स्त्रीत्व की विवक्षा में 'बह्वादिभ्यश्च' इस सूत्र से 'ङीष्' प्रत्यय करके 'चण्डी' रूप बनता है, श्लोकगत पद सम्बोधन का है । कहीं-कहीं 'षिद्-गौरादिभ्यश्च' इस सूत्र से 'ङीष्' करना बतलाया गया है

पर 'गौरादि' गण में उक्त शब्द के न होने के कारण वह अनुपयुक्त है। अस्ति—यह सुप्रसिद्ध सत्तार्थक 'अस्' धातु के लट् लकार के प्रथम पुरुष के एकवचन का रूप है।

अलङ्कारः—साहित्यदर्पण के—

"सदृशाऽनुभवाद्वस्तुस्मृतिः स्मरणमुच्यते"।

इस लक्षण के अनुसार यहाँ 'स्मरण' अलङ्कार है। क्योंकि प्रिया के शरीर आदि के समान प्रियंगुलता आदि के अनुभव से (कोमलता आदि समान धर्म के द्वारा) प्रिया के शरीर आदि की स्मृति प्रकृत में वर्णित है॥ ४१॥

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया-
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः॥४२॥

अन्वयः—(हे प्रिये!) प्रणयकुपिताम्, त्वाम्, धातुरागैः, शिलायाम् आलिख्य, आत्मानम्, ते, चरणपतितम्, कुर्तुम्, यावत्, इच्छामि, तावत्, मुहुः, उपचितैः, अस्रैः, मे, दृष्टिः, आलुप्यते। क्रूरः, कृतान्तः, तस्मिन्, अपि, नौ संगमम्, न, सहते॥ ४२॥

व्याख्या—(हे प्रिये!) प्रणयकुपिताम् = रतिक्रुद्धाम्, न त्वपराधकुपितामिति भावः, त्वाम्=प्रेयसीम् त्वच्चित्रमितिभावः। धातुरागैः=गैरिकादिवर्णैः शिलायाम् = प्रस्तरपट्टे, आलिख्य = चित्रयित्वा, आत्मानम् = स्वम्, ते = तव चित्रस्थायाः इति भावः, चरणपतितम् = पादपतितम्, कर्तुम् = सम्पादयितुम्, चित्रितुमिति भावः, यावत् = यावत्समयम्, इच्छामि = अभिलषामि, तावत् = तत्कालाऽवधिम्, एवेति योज्यम्, मुहुः = अनेकशः, उपचितैः = प्रवृद्धैः, अस्रैः = नेत्रजलैः, मे = मम, दृष्टिः=नयनम्, आलुप्यते = आव्रियते, क्रूरः=निस्पृहः, कृताऽन्तः = विधिः, तस्मिन्नपि = चित्रेऽपि, नौ = आवयोः, संगमम् = सहवासम्, न सहते = न क्षमते॥ ४२॥

शब्दार्थः—(हे प्रिये !) प्रणयकुपिताम्=प्रेम में रूठी हुई, त्वाम्=तुमको (तुम्हारे चित्र को), धातुरागैः=गेरू आदि रंगों के द्वारा, शिलायाम्=पत्थर पर, आलिख्य=लिखकर, आत्मानम्=अपने को (अपने चित्र को) ते=तुम्हारे, चरणपतितम्=पैरों पर गिरा हुआ, कर्तुम्=चित्रित करना, यावत्=जबतक, इच्छामि=चाहता हूँ, तावत्=उसी समय, मुहुः=बार-बार प्रवृद्धैः=उमड़े हुए, अस्रैः=अश्रुओं से, मे=मेरी, दृष्टि=आँखें, आलुप्यते=डूब जाती हैं (डब-डबा जाती हैं)। क्रूरः=कठोर, कृताऽन्तः=भाग्य, तस्मिन्=उस चित्र में, अपि=भी, नौ=हम दोनों का, संगमम्=मिलन, न सहते=नहीं सहता है ॥ ४२ ॥

भावार्थः—हे प्रिये ! प्रेमकुपितां त्वच्चित्रं गैरिकादिधातुवर्णैः प्रस्तर-पट्टे विलिख्य स्वप्रतिकृतिं यावत् त्वच्चरणपतितां चित्रितुमिच्छामि तावदेव भूयो भूयः प्रवृद्धैरश्रुभिर्मम नेत्रमाव्रियते, निर्दयो विधिः चित्रेऽप्यावयोः सहवासं न क्षमते ॥ ४२ ॥

हिन्दी—(हे प्रिये !) प्रणय में कुपित तुम्हारे चित्र को गेरू आदि रंग से पत्थर पर लिखकर अपने चित्र को जब तक तुम्हारे पाँवों पर गिरा हुआ चित्रित करना चाहता हूँ, तभी बार-बार उमड़ते आँसुओं से मेरी आँखें डब-डबा जाती हैं। कठोर विधाता चित्र में भी हम दोनों के मिलन को नहीं सहन करता ॥ ४२ ॥

समासः—प्रणये कुपिता=प्रणयकुपिता (स० तत्०) ताम्, धातव एव रागाः=धातुरागाः (रूपक०) तैः। चरणयोः पतितः=चरणपतितः (स० तत्०) तम्। कृतः अन्तः येन सः कृतान्तः (बहु०)।

कोशः—सारङ्गादौ च रागः स्यादारुण्ये रञ्जने पुमान्, इति शब्दार्णवः। नृशंसो घातुकः क्रूरः, इत्यमरः। कृतान्तो यमसिद्धान्तदैवाकुशलकर्मसु, इत्यमरः। धातुर्वार्ताऽऽदिशब्दाऽऽदि गैरिकादिषु, इति यादवः।

टिप्पणी—कुपिता—'कुप्' धातु से कर्ता में 'क्त' प्रत्यय करके इडादि करके स्त्रीत्व-विवक्षा में टाप् करके 'कुपिता' यह रूप बनता है। क्रोध दो प्रकार का होता है। एक तो ईर्ष्याजन्य क्रोध और दूसरा प्रणयकोप। रतिकाल में नायिका का बनावटी क्रोध रतिवर्धक ही होता है, यक्ष, उसी समय का स्मरण

करके प्रिया का चित्र बनाना शुरू किया होगा। आलिख्य—'आङ्' उपसर्ग पूर्वक 'लिख्' धातु में 'क्त्वा' प्रत्यय करके उसके स्थान में 'ल्यप्' करके आलिख्य रूप बनता है। पतित—पतनार्थक 'पत्' धातु से कर्ता में 'क्त' प्रत्यय करके 'पतित' ऐसा रूप बनता है। नौ—'अस्मद्' शब्द के स्थान पर 'युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वानावौ' इस सूत्र से 'नौ' आदेश किया जाता है।

अलङ्कारः—इस पद्य में 'अर्थापत्ति' अलङ्कार है ॥ ४२ ॥

मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो-
र्लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसन्दर्शनेषु ।
पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां
मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति ॥४३॥

अन्वयः—(हे प्रिये !) स्वप्नसंदर्शनेषु, मया, कथमपि, लब्धायाः, ते, निर्दयाऽऽश्लेषहेतोः आकाशप्रणिहितभुजम्, माम् पश्यन्तीनाम्, स्थलीदेवतानाम्, मुक्तास्थूलाः अश्रुलेशाः, तरुकिसलयेषु, बहुशः, न, पतन्ति, न खलु ॥ ४३ ॥

व्याख्या— हे प्रिये !) स्वप्नसंदर्शनेषु = स्वप्नसाक्षात्कारेषु, मया = यक्षेण, कथमपि = केनापि प्रकारेण, लब्धायाः = प्राप्तायाः, ते = तव, निर्दयाऽऽश्लेषहेतोः = पुरुषाऽऽलिङ्गनार्थमितिभावः, आकाशप्रणिहितभुजम् = गगनप्रसारितबाहुम्, माम् = यक्षम्, पश्यन्तीनाम् = अवलोकयन्तीनाम्, स्थलीदेवतानाम् = अरण्यस्थलीदेवीनाम्, मुक्तास्थूलाः = मौक्तिकपीवराः, अश्रुलेशाः = अस्रबिन्दवः बाष्पकणा इत्यर्थः, तरुकिसलयेषु = वृक्षनवपल्लवेषु, बहुशः = भूरिशः, न पतन्ति = न स्खलन्ति, (इति) न = नहि, अपितु पतन्त्येव, खलु = निश्चयेन ॥ ४३ ॥

शब्दार्थः—(हे प्रिये !) स्वप्नसंदर्शनेषु = स्वप्न के देखने में, मया = मेरे द्वारा, कथमपि = किसी प्रकार से, लब्धायाः = प्राप्त, ते = तुम्हारे; निर्दयाऽऽश्लेषहेतोः = कठोर आलिङ्गन के लिए, आकाशप्रणिहितभुजम् = आकाश में फैलाये गये बाहु वाले, माम् = मुझको, पश्यन्तीनाम् = देखती हुई, स्थलीदेवतानाम् = वनदे-

वियों के; मुक्तास्थूला: = मोतियों के समान बड़े, अश्रुलेशा: = आँसुओं की बूँदे (बाष्पकण) तरुकिसलयेषु = वृक्षों के पल्लवों पर, बहुश: = बहुत, न पतन्ति = नहीं गिरते (इति = ऐसा) न = नहीं; अपितु गिरते ही हैं, खलु=निश्चय ॥४३॥

भावार्थ:—हे प्रिये ! स्वप्नावलोकनेषु मया महता यत्नेन लब्धायास्तव गाढाऽऽलिङ्गनार्थमाकाशे प्रसारितबाहु मां पश्यन्तीनामरण्यदेवीनां मौक्तिक-पीवरा: (बाष्प-बिन्दु-रूपा:) अश्रव: पतन्त्येव ॥ ४३ ॥

हिन्दी—हे प्रिये ! स्वप्न देखने में मैं बहुत प्रयास से जब तुम्हें पाता हूँ और तुम्हारे गाढ़ आलिङ्गन के लिए आकाश में बाहुओं को फैलाता हूँ, उस समय मुझको देखने वाली वनदेवियों के मोतियों की तरह बाष्पबिन्दु क्या वृक्षों के पल्लवों पर न गिर पड़ते, अपितु अवश्य गिर जाते हैं।

समास:—स्वप्ने संदर्शनानि = स्वप्नसंदर्शनानि (तृ० तत्०) तेषु । निर्गता दया यस्मात् स: निर्दय: (बहु०) निर्दयश्चासौ आश्लेष: निर्दयाश्लेष:, स एव हेतु: = निर्दयाश्लेषहेतु: (रूपक०) तस्य । प्रणिहितौ भुजौ येन स प्रणिहित-भुज: (बहु०) आकाशे प्रणिहितभुज: = आकाशप्रणिहितभुज: (स० तत्०) तम् । स्थलीनां देवता: = स्थलीदेवता: (ष० तत्०) तासाम् । मुक्ता इव स्थूला: = मुक्तास्थूला: (उपमित कर्म०) अश्रूणां लेशा:—अश्रुलेशा: (ष० तत्०)। तरूणां किसलयानि = तरुकिसलयानि (ष० तत्०) तेषु ।

कोश:—स्वप्न: सुप्तस्य विज्ञानम्, इति विश्व: । दर्शनं समये शास्त्रे दृष्टौ स्वप्नेऽक्षिण संविदि, इति शब्दार्णव: । भुज बाहू प्रवेष्टो द्वो:, इत्यमर: ।

टिप्पणी—ऊपर दिये गये शब्दार्णव कोश के अनुसार स्वप्न का अर्थ संवित् = ज्ञान होता है एवं दर्शन का भी वही अर्थ होता है। इस प्रकार 'स्वप्नसंदर्शने' में 'पुनरुक्ति' नामक काव्य-दोष की प्रसक्ति होती है, परन्तु 'सामान्यविशेष' न्याय से यह पुनरुक्ति दोष नहीं होता। जैसे आम्र = शब्द का अर्थ ही आम्र वृक्ष है पुन: 'आम्रवृक्ष' यहाँ पर वृक्ष सामान्य एवं आम्रविशेष है उसी तरह यहाँ भी 'स्वप्न' एक विशेष ज्ञान है, ऐसा समझना चाहिए। **दर्शन**—'दृश' धातु से करण में ल्युट् प्रत्यय करके 'दर्शन' ऐसा रूप निष्पन्न होता

है। आश्लेष—'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'श्लिष्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय होता है।
यहाँ प्रकृत्यर्थ 'गिरना' की दृढ़ता अर्थात् 'अवश्य गिरते हैं' इसके लिए दो नञों का प्रयोग किया गया है। जैसा कि कहा जाता 'द्वौ नञौ दार्ढ्यार्थं गमयतः' इति। आलङ्कारिक सूत्र भी है—

'स्मृतिनिश्चयसिद्धाऽर्थे नञ्द्वयप्रयोगः सिद्धः' इति।

महाकवि ने वनदेवियों का अश्रुपात पृथ्वी पर न कहकर तरुपल्लव पर कहा है। क्योंकि देवताओं का अश्रुपात यदि पृथ्वी पर हो तो देशभ्रंश, महादुःख और मरण होता है। जैसा कि कहा जाता है—

'महात्मगुरुदेवानामश्रुपातः क्षितौ यदि।
देशभ्रंशो महद्दुःखं मरणञ्च भवेद्ध्रुवम् ॥'

महात्मा, गुरु और देवताओं का अश्रुपात यदि पृथ्वी पर हो तो देशभ्रंश, महद्दुःख और मरण अवश्य हो।

अलङ्कारः—'मुक्तास्थूलाः' यहाँ इव आदि सामान्य धर्मवाचक पद के लोप होने के कारण 'लुप्तोपमा' नामक अलङ्कार है ॥ ४३ ॥

भित्त्वा सद्यः किसलयपुटान्देवदारुद्रुमाणां
ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः।
आलिङ्ग्यन्ते गुणवति ! मया ते तुषाराद्रिवाताः
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्तवेति ॥४४॥

अन्वयः—देवदारुद्रुमाणाम्, किसलयपुटान्, सद्यो, भित्त्वा, तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो, ये, तुषाराद्रिवाता, दक्षिणेन, प्रवृत्ताः, गुणवति ! पूर्वम्, एभिः, तव, अङ्गम्, स्पृष्टम्, भवेत्, यदि, किल, इति, ते, मया, आलिङ्ग्यन्ते।

व्याख्या—देवदारुद्रुमाणाम्=देवदारु-नामक-वृक्षाणाम्, किसलयपुटान्=पल्लवपुटान्, सद्यः=तत्क्षणे, भित्त्वा=विच्छेद्य, तत्क्षीरस्रुतिसुरभयः=देवदारुनिर्गतदुग्धसुगन्धयः; ये तुषाराद्रिवाताः=हिमालयपवनाः, दक्षिणेन=दक्षिण-

मार्गेण, प्रवृत्ताः=प्रचलिताः, हे गुणवति=हे सर्वगुण-सम्पन्ने ! पूर्वम्=प्राक्, एभिः=हिमालयपवनैः, तव=भवत्याः, प्रियाया इत्यर्थः, अङ्गम्=शरीरम्, स्पृष्टम्=आमृष्टम्, भवेत्=स्यात्, यदि=चेत्, ते=हिमालय-पवनाः, किल=इतिसंभावनायाम्, इति=एवंप्रकारेण निश्चयेन, मया=यक्षेण, आलिङ्ग्यन्ते=आश्लिष्यन्ते ।। ४४ ।।

शब्दार्थः—देवदारु-द्रुमाणाम्=देवदारु वृक्षों के, किसलयपुटात्=पल्लवों की तहों को, सद्यः=शीघ्र ही, भित्त्वा=खिलाकर, तत्क्षीरस्रुतिसुरभयः=उनके बहते हुए दूध से सुगन्धित, ये तुषाराद्रिवाताः=जो हिमालय की हवा, दक्षिणेन=दक्षिण की ओर, प्रवृत्ता=वह रही है, हे गुणवति=हे शौशील्यादि गुणसम्पन्ने ! पूर्वम्=पहले; एभिः=इन हवाओं से; तव=तुम्हारा; अङ्गम्=शरीर, स्पृष्टम्=छुआ गया, भवेत्=होगा; यदि=यदि; किल=अवश्य, इति=इसी सम्भावना से; ते=वे हवाएँ, मया=मेरे द्वारा, आलिङ्ग्यन्ते=आलिङ्गित की जाती हैं ।। ४४ ।।

भावार्थः—हे गुणवति ! देवदारुपल्लवान् विकास्य यद्दुग्धसुगन्धिभिः सुगन्धिताः दक्षिणमार्गप्रचलिताः हिमालयपवनाः प्राक् त्वदङ्गेन स्पृष्टा अवश्यं भवेयुरिति संभावनया अहं तान् हिमालयपवनानालिङ्गयामि ।। ४४ ।।

हिन्दी—हे गुणवति ! देवदारु के पल्लवों को खिलाकर उसके बहते हुए दूध की सुगन्धि से सुगन्धित दक्षिण की ओर बहने वाली हिमालय की वायु से पहले तुम्हारे अङ्ग का स्पर्श अवश्य हुआ होगा, इस संभावना से मैं हिमालय की उन हवाओं का आलिङ्गन करता हूँ ।। ४४ ।।

समासः—देवदारवश्च ते द्रुमाः=देवदारुद्रुमाः (कर्मधा०) तेषाम् । किसलयानि पुटा इव=किसलयपुटा (उपमित क० धा०) तान् । तेषां क्षीरम्=तत्क्षीरम् (ष० तत्०) तस्य स्रुतिः=तत्क्षीरस्रुतिः (ष० तत्०), तदा सुरभयः=तत्क्षीरस्रुतिसुरभयः (तृ० तत्०) । तुषारस्य अद्रिः=तुषाराद्रिः (ष० त०) तस्य वाताः=तुषाराद्रिवाताः (ष० तत्०) ।

कोशः—वार्तासम्भाव्ययोः किल, इत्यमरः । सद्यः सपदि तत्क्षणे:, इत्यमरः ।

टिप्पणी—प्रवृत्ता—'प्र' उपसर्गपूर्वक 'वृत्' धातु से कर्ता में "क्त" प्रत्यय हुआ है। दक्षिणेन—"दक्षिण" चूँकि यह प्रकृतिवाची शब्द है अतः 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' से यहाँ तृतीया विभक्ति होनी चाहिए, परन्तु महाभाष्यकार पतञ्जलि 'तत्रापि करणत्वस्य प्रतीयमानत्वात्' इत्यादि हेतु देकर 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' इसी सूत्र से तृतीया विभक्ति का व्याख्यान करते हैं। स्पृष्टम्—'स्पृश्' धातु से 'क्त' प्रत्यय करके 'स्पृष्टम्' ऐसा रूप निष्पन्न होता है। भवेत्—यहाँ संभावना में विधि लिङ् 'भू' धातु से आया है। इस श्लोक में सम्भावना का कथन तीन पदों द्वारा किया गया है अतएव यहाँ सम्भावना का अतिशय प्रतिपादन है, यह कहा जा सकता है। वे तीन पद हैं—१ यदि २ किल और 'भू' धातु से संभावना में विधि लिङ् लकार में बने रूप ३ 'भवेत्'।

वाल्मीकिरामायण में भी इसी भाव का श्लोक आता है।

'वाहि वात ! यतः कान्ता तां स्पृष्ट्वा मामपि स्पृशेः।
बह्वेतत्काममानस्य शक्यमेतेन जीवितम् ॥' (किष्कि०, १-५३)

संक्षिप्यते क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा
सर्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात्।
इत्थं चेतश्चटुलनयने ! दुर्लभप्रार्थनं मे
गाढोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः ॥४५॥

अन्वयः—दीर्घयामा, त्रियामा, क्षण, इव, कथम्, संक्षिप्यते ? अहरपि, सर्वावस्थासु, कथम्, मन्दमन्दातपम्, स्यात्, हे चटुलनयने ! इत्थम्, दुर्लभप्रार्थनम्, मे, चेतः, गाढोष्माभिः, त्वद्वियोगव्यथाभिः, अशरणम्, कृतम् ॥ ४५ ॥

व्याख्या—दीर्घयामा=दीर्घप्रहरा, त्रियामा=रजनी, क्षण इव=अल्पकाल इव, कथम्=केन प्रकारेण, संक्षिप्यते=लघ्वीभवेत्, अहरपि=दिवसोऽपि, सर्वावस्थासु=सकलदशासु, कथम्=केन प्रकारेण, मन्दमन्दाऽऽतपम्=न्यूनाऽऽतपम्, स्यात्=भवेत् ? हे चटुलनयने=चञ्चलनेत्रे ? इत्थम्=अनेन प्रकारेण, दुर्लभ-

प्रार्थनम्=अप्राप्याभिलाषम्, मे=मम, यक्षस्येत्यर्थः, चेतः=मनः, गाढोष्माभिः =अत्यधिकतापवद्भिः, त्वद्व्यथाभिः=त्वदीयवियोगपीडाभिः, अशरणम्= अनाथम्, कृतम्=संपादितम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थः—दीर्घयामा=बड़े प्रहरों वाली, त्रियामा=रात, कथम्=किस प्रकार, क्षण इव=एक पल के समान, संक्षिप्यते=छोटी हो जाये, अहरपि= दिन भी, सर्वाऽवस्थासु=सभी दशाओं में, कथम्=किस प्रकार, मन्दमन्दातपम्= कम सन्तापवाला, भवेत्=हो जाये। हे चटुलनयने=हे चञ्चल नयनों वाली! इत्थम्=इस प्रकार, दुर्लभ-प्रार्थनम्=अप्राप्य मनोरथवाला, मम=मेरा, चेतः= मन, गाढोष्माभिः=अत्यधिक सन्ताप वाली, त्वद्व्यथाभिः=तुम्हारे वियोग की पीडा से, अशरणम्=असहाय, कृतम्=बना दिया गया है ॥ ४५ ॥

भावार्थः—दीर्घप्रहरा रजनी केन प्रकारेण लघ्वी भवेत्? दिनमपि सम्पूर्णा- वस्थासु केन प्रकारेण अत्यल्पसन्तापयुक्तं भवेत्? हे चञ्चलाक्षि! इत्थं कठिन- प्राप्यमनोरथं मे मनः त्वद्विरहवेदनाभिरनाथं कृतम् ॥ ४५ ॥

हिन्दी—बड़े-बड़े प्रहरों वाली रात किस तरह छोटी हो जाये? दिन भी सब समयों में कैसे अत्यल्प सन्ताप वाला हो जाये? हे चपलनयने! इस तरह कठिनता से प्राप्त मनोरथ वाला मेरा मन तुम्हारे वियोग की व्यथा से अनाथ बना दिया गया है ॥ ४५ ॥

समासः—दीर्घा यामा यस्याः सा दीर्घयामा (बहु०)। त्रयो यामा यस्याः सा त्रियामा (बहु०)। सर्वाश्च ता अवस्थाः=सर्वाऽवस्थाः (कर्म०धा०) तासु। मन्दमन्दः आतपो यस्मिस्तत्=मन्दमन्दातपम् (बहु०)। चटुले नयने यस्याः सा=चटुलनयना (बहु०)। तत् सम्बुद्धौ। दुर्लभा प्रार्थना यस्य तत्= दुर्लभप्रार्थनम् (बहु०) गाढ ऊष्मा यासां ता गाढोष्माणः (बहु०) ताभिः। तव वियोगः=त्वद्वियोगः (ष० तत्०) तस्य व्यथाः त्वद्वियोगव्यथाः (ष० तत्०) ताभिः। अविद्यमानं शरणं यस्य तत्=(नञ्० बहु०)।

कोशः—शरणं गृहरक्षित्रोः, इत्यमरः। निशा निशीथिनी रात्रिस्त्रियामा क्षणदा क्षपा, इत्यमरः। घस्रो दिनाहनी वा तु क्लीबे दिवसवासरौ, इत्यमरः।

टिप्पणी—एक दिन-रात में आठ प्रहर होते हैं। इस प्रकार यद्यपि रात के भी चार प्रहर होने चाहिए परन्तु, अमरकोश के टीकाकार के मतानुसार रात के आदि के अर्ध प्रहर एवं अन्त के अर्ध प्रहर रात नहीं है अतः 'रात' को त्रियामा कहा जाता है। संक्षिप्यते—'सम' उपसर्ग पूर्वक 'क्षिप्' धातु 'विधि लिङ्' का यह रूप है। सर्वावस्थासु—यहाँ ग्रीष्म ऋतु के लम्बे दिनों की दुपहरी आदि का समय समझना चाहिए। मन्दमन्दातपम्—'मन्दम्' इसका 'प्रकारे गुणवचनस्य' इस सूत्र से द्विरुक्ति हो गयी एवं 'कर्मधारयवदुत्तरेषु' इस सूत्र से कर्मधारयवद्भाव हो जाने से 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' इस सूत्र से सुप् का लुक् हो जाता है। दुर्लभप्रार्थनम्—यह पद 'चेतः' इस पद का विशेषण है। गाढोष्माभिः—यहाँ 'उष्मन्' शब्द यद्यपि पुंलिङ्ग है तथापि बहुव्रीहि समास हो जाने पर समस्त शब्द स्त्रीलिङ्ग हो जाने पर 'डाबुभ्यामन्यतरस्याम्' इस सूत्र से स्त्रीत्व की विवक्षा में 'डाप्' हो जाने से 'गाढोष्मा' ऐसा रूप निष्पन्न होता है ॥ ४५ ॥

नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे
तत्कल्याणि! त्वमपि नितरां मागमः कातरत्वम्।
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥४६॥

अन्वयः—ननु बहु विगणयन्, आत्मानम्, आत्मना, एव, अवलम्बे, तत् कल्याणि! त्वमपि, नितराम्, कातरत्वम्, मा, गमः। कस्य, अत्यन्तम्, सुखम्, दुःखम्, वा, एकान्ततः उपगतम्? चक्रनेमिक्रमेण, दशा, नीचैः, उपरि, च गच्छति ॥ ४६ ॥

व्याख्या—ननु=हे प्रिये! बहु=अधिकम्, विगणयन्=विचारयन्, आत्मानम्=स्वम्, आत्मनैव=स्वेनैव, अवलम्बे=धारयामि। तत्=तद्धेतोः, हे कल्याणि=हे सुभगे! त्वम्=मत्प्रिया अपि, नितराम्=अत्यन्तम्, कातरत्वम्=भीरुत्वम्, मागमः=नोयायाः। कस्य=जनस्य, अत्यन्तम्=अत्यधिकम्, सुखम्

=आनन्दः, दुखम्=कष्टम्, वा=अथवा, एकान्ततः=नियमेन, उपनतम्=प्राप्तम्। (किन्तु) चक्रनेमिक्रमेण=स्यन्दनाङ्गप्रधिपरिपाटया, दशा=अवस्था, नीचैः=अधः, उपरि च=ऊर्ध्वंञ्च, गच्छति=याति ॥ ४६ ॥

शब्दार्थः—ननु=हे प्रिये ! वस्तुतः, बहु=बार बार, विगणयन्=विचार करता हुआ, (मैं) आत्मानम्=अपने को, आत्मनैव—अपने द्वारा ही, अवलम्बे=धीरज बँधाता रहता हूँ। तद्=इस कारण से, हे कल्याणि=हे सौभाग्यवति ! त्वमपि=तुम भी, नितराम्=अत्यधिक, कातरत्वम्=भीरुता को, मागमः=मत प्राप्त करना, (इस संसार में) कस्य=किस व्यक्ति का, अत्यन्तम्=अत्यन्त, सुखम्=आनन्द, दुःखम्=कष्ट, वा=अथवा, एकान्ततः=नियमित, उपनतम्=रहा है। चक्रनेमिक्रमेण=रथ की धुरी के क्रम से, दशा=(व्यक्ति की) अवस्था, नीचैः=नीचे की ओर, उपरि च=ऊपर की ओर, गच्छति=जाती रहती है ॥ ४६ ॥

भावार्थः—हे प्रिये ! बहु विचारयन्नात्मानमात्मनैव धारयामि, तस्मात् कारणात् हे सुभगे ! त्वमपि बहुभीरुतां मा गच्छेः, कस्य जनस्य अत्यधिकं सुखं दुःखं वा नित्यं प्राप्तम्, रथचक्राङ्गपरिपाटया व्यक्तिदशा नीचैः उपरि च गच्छति ॥ ४६ ॥

हिन्दी—हे प्रिये ! बहुत विचार करता हुआ मैं अपने को स्वयं ही धीरज बँधाता रहता हूँ, इसलिए हे सौभाग्यवति ! तुम भी अधिक भीरुता को मत प्राप्त करना। किस व्यक्ति का अत्यधिक सुख या दुःख नित्य रहता है ? रथ की धुरी के समान व्यक्ति की दशा (कभी) ऊपर और (कभी) नीचे जाती है ॥ ४६ ॥

समासः—अन्तमतिक्रान्तः—अत्यन्तम् (अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीया)। चक्रस्य नेमिः—चक्रनेमिः (ष० तत्०) तस्य क्रमः चक्रनेमिक्रमः (ष० तत्०) तेन।

कोशः—प्रश्नावधारणानुज्ञानुनयामन्त्रणे ननु, इत्यमरः। चक्रं रथाङ्गं तस्यान्ते नेमिः स्त्री स्यात् प्रधिः पुमान्, इत्यमरः। चक्रधारा प्रधिर्नेमिः, इति यादवः।

टिप्पणी—ननु = यहाँ इसका ग्रहण आमन्त्रण अर्थ में है। विगणयन्—'वि' उपसर्गपूर्वक 'गण्' धातु से 'णिच्' करके लट् लकार के स्थान पर 'शतृ' आदेश करके 'विगणयन्' ऐसा रूप उपपन्न होता है। आत्मना—यहाँ 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' इस सूत्र से तृतीया विभक्ति हुई है। अवलम्बे—'अव' उपसर्गपूर्वक आत्मनेपदी लव + (इ) धातु से इदित्वान्नुम् आदि करके लट्लकार के उत्तमपुरुष एकवचन में 'अवलम्बे' ऐसा रूप बनता है। कल्याणि—कल्याण 'शब्द' से 'बह्वादिभ्यश्च' सूत्र से ङीप् करके 'कल्याणी' ऐसा रूप बनाया जाता है। यह सम्बोधन का रूप है। उक्त विशेषण देने का अभिप्राय है कि 'हे सौभाग्यवति ! मैं तुम्हारे सौभाग्य बल से ही जी रहा हूँ।' इति। कातरत्वम्—कातराया भावः इस अर्थ में 'कातरा' शब्द से 'तस्य भावस्त्वतलौ' इस सूत्र से 'त्व' प्रत्यय हुआ है और 'त्वतलोर्गुणवचनस्य' इस सूत्र से 'कातरा' को पुंवद्भाव हो गया है। उपनतम्—उप उपसर्गपूर्वक 'नम्' धातु से 'क्त' प्रत्यय होकर अनुनासिक का लोप करके 'उपनतम्' ऐसा रूप बनता है।

महाकवि भासरचित स्वप्नवासवदत्तम् में—

'कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना।
चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः॥

यह श्लोक आया है। कालिदास के इस श्लोक में उसी की छाया है।

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शाङ्र्गपाणौ
शेषान्मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा।
पश्चादावां विरहगणितं तं तमात्माभिलाषं
निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥४७॥

अन्वयः—(हे प्रिये !) शाङ्र्गपाणौ, भुजगशयनात्, उत्थिते, मे, शापान्तः। शेषान्, चतुरः मासान्, लोचने, मीलयित्वा, गमय। पश्चात्, आवाम्, विरह-

गणितम्, तं तम्, आत्माऽभिलाषम्, परिणतशरच्चन्द्रिकासु, क्षपासु, निर्वेक्ष्याव: ॥ ४७ ॥

व्याख्या—हे प्रिये ! शार्ङ्गपाणौ=विष्णौ, भुजगशयनात्=शेषशय्यात:, उत्थिते=प्रबुद्धे (सति) मे=मम (यक्षस्य) शापान्त:=शापावसान: । शेषान्=अवशिष्टान्, चतुर:=चतु:संख्याकान्, मासान्=त्रिंशद्दिवसीयकालविशेषान्, लोचने=नेत्रे, मीलयित्वा=निमील्य, गमय=व्यतीतय । पश्चात्=शापावसानानन्तरम्, आवाम्=अहञ्च त्वञ्च, विरहगणितम्=वियोग-विगणितम्, तं तम्=अनेकप्रकारकम्, आत्माऽभिलाषम्=निजमनोरथम्, परिणतशरच्चन्द्रिकासु =परिपक्वशरदिन्दुकलासु, क्षपासु=रात्रिषु, निर्वेक्ष्याव:=भोक्ष्यावहे ॥४७॥

शब्दार्थ:—(हे प्रिये !) शार्ङ्गपाणौ=विष्णुभगवान् के, भुजगशयनात्=शेषशय्या से, उत्थिते=उठ जाने पर, मे=मेरे, शापान्त:=शाप का अन्त (होगा) । शेषान्=(तब तक तुम) बचे, चतुर:=चार, मासान्=महीनों को, लोचने=आँखें, मीलयित्वा=मूँदकर, गमय=बिताओ । पश्चात्=चार महीने बाद, आवाम्=हम दोनों, विरहगणितम्=वियोग-संकलिपत, तं तम्=उन-उन (अनेक प्रकार के), आत्माऽभिलाषम्=अपने मनोरथों का, परिणतशरच्चन्द्रिकासु=शरदऋतु की परिणत चन्द्रिका वाली, क्षपासु=रातों में, निर्वेक्ष्याव:= उपभोग करेंगे ॥ ४७ ॥

भावार्थ:—हे प्रिये ! शेषशय्यात: यदा विष्णावुत्थिते सति मे शापविमुक्तिर्भविष्यति । अत: शेषं मासचतुष्टयं नेत्रे निमील्य यापय । तदनन्तरमावां वियोगसङ्कलिपतमनेकप्रकारकं मनोऽभिलाषं शरदिन्दुकलाधवलितासु रात्रिषु भोक्ष्यावहे ॥ ४७ ॥

हिन्दी—हे प्रिये ! शेषशय्या से भगवान् विष्णु के उठ जाने पर मेरे शाप की निवृत्ति होगी । अत: बचे हुए चार महीनों को आँखें मींचकर बिता डालो । पीछे हम दोनों वियोग में विचारे गये उन अनेक प्रकार के अपने मनोरथों का शरत्काल की परिपक्व चन्द्रिका वाली रातों में उपभोग करेंगे ॥ ४७ ॥

समासः—शार्ङ्गं पाणौ यस्य स शार्ङ्गपाणिः (व्य० बहु०) तस्मिन् । भुजग एव शयनम्=भुजगशयनम् (रूपक०) तस्मात् । शापस्य अन्तः= शापान्तः (ष० तत्०) । विरहे गणितम्=विरहगणितम् (स० तत्०) । आत्मनः अभिलाषः आत्माऽभिलाषः (ष० तत्०) तम् । परिणताः शरच्चन्द्रिका यासां ताः=परिणतशरच्चन्द्रिकाः (बहु०) तासु ।

कोशः—निर्वेशो भृतिभोगयोः, इत्यमरः । त्रियामा क्षणदा क्षपा, इत्यमरः ।

टिप्पणी—भगवान् विष्णु आषाढ़-शुक्ल एकादशी जिसे हरिशयनी एकादशी कहते हैं, शेषशय्या पर सोते हैं और कार्तिक शुक्ल एकादशी जिसे देवोत्थान एकादशी कहते हैं, को जगते हैं, इस प्रकार चार महीने होते हैं । प्रारम्भ में महाकवि ने 'आषाढ़स्य प्रथमदिवसे' ऐसा कहा है, तदनुसार चार महीने से १० दिन अधिक होते हैं फिर 'चतुरो मासान् गमय' ऐसा प्रयोग कैसे किया गया ? यह शङ्का हो सकती है, परन्तु 'क्षत्रिणो यान्ति' के समान यहाँ भी 'अजहल्लक्षणा' से चार महीनों के साथ दश दिन का भी ग्रहण 'चतुरो मासान्' इस पद से हो जायेगा । कूर्मपुराण में एक श्लोक आता है—

'क्षीराब्धौ शेषपर्यङ्के आषाढ्यां संविशेद्धरिः ।
निद्रां त्यजति कार्तिक्यां तयोः संपूजयेद्धरिम्' ॥ इति ।

परिणतशरच्चन्द्रिकासु—दक्षिणावर्तनाथ जी ने आषाढ़ आदि चार मासों के अनन्तर कार्तिक मास में महाकवि ने कैसे 'शरत् ऋतु' का प्रादुर्भाव बतलाया है ? ऐसी शंका की है, परन्तु महामहोपाध्याय मल्लिनाथजी ने इसका उत्तर देते हुए लिखा है कि महाकवि ने, कार्तिक महीने के अन्त तक शरत्ऋतु रहती है और एकादशी तिथि तक उसका परिणत हो जाना स्वाभाविक ही है, अतः 'परिणतशरच्चन्द्रिकासु' कहा है । न कि 'शरत् ऋतु' की उत्पत्ति बतलाया है । मीलयित्वा—णिजन्त 'मीलि' धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय करके 'मीलयित्वा' ऐसा रूप बनता है । आवाम्—'त्वञ्चहञ्च' इस विग्रह में 'त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम्' इस सूत्र से एकशेष और 'त्यदादीनां मिथः

सहोक्तौ यत्परं तच्छिष्यते' इस वार्तिक के नियमानुसार पर रहने के कारण 'अस्मद्' शब्द शेष रह गया। तं तम्—यहाँ वीप्सा में द्विरुक्ति है।

अलङ्कारः—यहाँ 'उदात्त' अलंकार है ॥ ४७ ॥

भूयश्चाह त्वमपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे
निद्रां गत्वा किमपि रुदति सस्वनं विप्रबुद्धा।
सान्तर्हासं कथितमसकृत्पृच्छतश्च त्वया मे
दृष्टः स्वप्ने कितव! रमयन् कामपि त्वं मयेति ॥४८॥

अन्वयः—भूयश्च, आह, (हे प्रिये !) पुरा, शयने, मे, कण्ठलग्ना, अपि, त्वम्, निद्राम्, गत्वा, किमपि, सस्वनम्, रुदति, विप्रबुद्धा। असकृत्, पृच्छतः, मे, 'हे कितव ! त्वम्, कामपि, रमयन्, मया, स्वप्ने, दृष्टः' इति, त्वया, साऽन्तर्हासम्, कथितम्, च ॥ ४८ ॥

व्याख्या—मेघः कथयति यक्षसंवादम्, भूयः = पुनरपि, (त्वत्प्रियः) आह = ब्रवीति, पुरा = वियोगात्पूर्वम्, शयने = तल्पे, मे = मम, कण्ठलग्ना अपि = गलसंलग्ना, 'अपि', त्वम् = मत्प्रिया, निद्राम् = स्वापम्, गत्वा, = लब्ध्वा, किमपि केनाऽपि प्रकारेण, सस्वनम् = शब्दसहितम्, रुदती = रोदनं कुर्वंती, विप्रबुद्धा = जागरिता (आसीः) ततश्च असकृत् = पुनः पुनः, पृच्छतः = जिज्ञासां कुर्वतः, मे = मम प्रियस्येतिभावः, हे कितव ! = हे धूर्त ! त्वम् = मत्प्रियः, कामपि = अपरिचितनामधेयां स्त्रियम्, रमयन् = क्रीडयन्, मया = प्रियया, स्वप्ने = संवेशे, दृष्टः = विलोकितः, इति = एवम्, त्वया = प्रियया, साऽन्तर्हासम् = अन्तर्हाससहितम्, कथितञ्च = उक्तञ्च ॥ ४८ ॥

शब्दार्थः—भूयश्च = (तुम्हारे पति ने) पुनः, आह = कहा, (हे प्रिये !) पुरा = पहले, शयने = शय्या पर, मे = मेरे, कण्ठलग्ना अपि = गले में लिपटी भी, त्वम् = तुम, निद्राम् = नींद को, गत्वा = प्राप्त कर, किमपि = न जाने क्यों ? सस्वनम् = शब्दों सहित अर्थात् ऊँचे स्वर से, रुदती = रोती हुई, विप्रबुद्धा = जाग पड़ी थी। (पीछे) असकृत् = बहुत, पृच्छतः = पूछने पर, 'हे कितव ! =

हे धूर्त ! त्वम् = तुम, कामपि = किसी अज्ञात नाम वाली स्त्री के साथ, रमयन् = रमण करते हुए, मया = मेरे द्वारा, स्वप्ने = स्वप्न में, दृष्टः = देखे गये हो" इति = इस प्रकार, त्वया = तुम्हारे द्वारा, सान्तर्हासम् = मन्द-मन्द हँसी के साथ, कथितश्च = कहा भी गया ॥ ४८ ॥

भावार्थः—हे अबले ! मन्मुखेन त्वत्प्रियः पुनरप्याह—हे प्रिये ! पूर्वं त्वं पर्यङ्के मत्कण्ठमालिङ्ग्य शयनाऽपि सशब्दं रुदती सहसा जागरिताऽऽसीः । पश्चान्मया बहुशः जिज्ञासिते "हे धूर्त ! त्वं स्वप्ने कयाऽपि कामिन्या क्रीडन्मया दृष्टः" इति त्वयाऽन्तर्हासमहितमुक्तश्च ॥ ४८ ॥

हिन्दी—हे अबले ! मेरे द्वारा तुम्हारे पति ने पुनः कहा—हे प्रिये ! पहले तुम पलंग पर मेरे कण्ठ से लिपट कर सोयी हुई भी सहसा ऊँचे स्वर से रोती हुई जाग पड़ी थी । पीछे मेरे द्वारा बहुत प्रश्न करने पर "हे धूर्त ! सपने में मैंने किसी रमणी के साथ तुम्हें रमण करते हुए देखा है" ऐसा मन्द-मन्द मुस्कान के साथ तुमने कहा भी था ॥ ४८ ॥

समासः—कण्ठे लग्ना = कण्ठलग्ना (स० तत्०) । स्वनैः सहितं यथा स्यात्तथा सस्वनम् (तुल्ययोग बहु०) । न सकृत् = असकृत् (नञ् त०) । अन्तः स्थितो हासः = अन्तर्हासः (मध्यम-पद-लोपी) । अन्तर्हासेन सहितं यथा-स्यात्तथा = सान्तर्हासम् (तुल्ययोग बहु०) ।

कोशः—स्यात् प्रबन्धे चिरातीते निकटागामिके पुरा, इत्यमरः ।

टिप्पणी—किमपि—यहाँ 'किम्' और 'अपि' दो अव्यय पद संयुक्त होकर प्रयुक्त हुए हैं । यहाँ शारदारञ्जन राज जी ने 'रुद्' धातु को सकर्मक माना है और तदनुसार इसको उक्त पद का कर्म माना है । परन्तु यह मत असमीचीन है, क्योंकि सकर्मक धातु का लक्षण है 'फलव्यधिकरण-व्यापार-वाचकत्वं सकर्मकत्वम्' अर्थात् जिस धातु का फलांश अन्य अधिकरण में एवं व्यापारांश अन्य अधिकरण में रहे वह सकर्मक धातु होता है । परन्तु यहाँ तो 'अश्रुपात' आदि रुद् धातु का फल, एवं नेत्र का झिल-मिलाना आदि व्यापार दोनों 'यक्षप्रिया' रूप एक ही अधिकरण में हैं, अतः यह धातु अकर्मक

है। अकर्मक का लक्षण है 'फलसमानाधिकरण-व्यापार-वाचकत्वमकर्मकत्वम्' इति। अतएव मल्लिनाथजी ने 'अनुरोदिति' इस स्थान पर 'अनु' उपसर्ग के योग को हेतु देकर अकर्मक 'रुद्' धातु को सकर्मक माना है। अन्यथा हेतु देना व्यर्थ ही होता। रुदती—'रुद्' धातु से लाये गए लट् लकार के स्थान पर शतृ आदेश करके 'ङीप्' करके रुदती ऐसा रूप निष्पन्न होता है। रमयन्—यह शब्द णिजन्त 'रमि' धातु से लट् लकार लाकर उसके स्थान में 'शतृ' आदेश करके उपपन्न होता है। इस सन्देश के द्वारा यक्ष अपनी प्रिया के इस सन्देह का निराकरण करता है कि 'क्या यह मेघ सच मुच मेरे पति का मित्र है? क्या यह जो कह रहा है, वह सत्य है? इत्यादि'। यदि यह मेघ सच मुच यक्ष का मित्र न होता तो तुम्हारे और यक्ष के बीच हुई प्रेम-घटना का रहस्य यह कैसे जान पाता। इस प्रकार ॥ ४८ ॥

एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा
मा कौलीनादसितनयने! मय्यविश्वासिनी भूः।
स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ॥४९॥

अन्वयः—हे असितनयने! एतस्मात्, अभिज्ञानदानात्, माम्, कुशलिनम्, विदित्वा, कौलीनात्, मयि, अविश्वासिनी मा भूः। स्नेहान्, विरहे, किमपि ध्वंसिनः, आहुः, तु, ते अभोगात्, इष्टे वस्तुनि, उपचितरसाः, प्रेमराशीभवन्ति ॥ ४९ ॥

व्याख्या—हे असितनयने = हे कृष्णाक्षि! एतस्मात् = पूर्वकथितात्, अभिज्ञान-दानात् = घटना-विशेष रूप-लक्षण-वितरणात्, माम् = प्रियम्, कुशलिनम् = क्षेमवन्तम्, विदित्वा = ज्ञात्वा, कौलीनात् = लोकाऽपवादरूपहेतोः, मयि = प्रियतमे (विषये) अविश्वासिनी = प्रत्ययरहिता, मा भूः = मा स्याः। स्नेहान् = प्रणयान्, विरहे = वियोगे, किमपि = केनापि प्रकारेण, ध्वंसिनः = विनाशशीलान्, आहुः = निगदन्ति, वस्तुतः नेयं वार्ता, तु = अपितु, ते = प्रणयाः, अभोगात् – उपभोगाऽभा-

वात्, इष्टे = ईप्सिते, वस्तुनि = पदार्थे, उपचितरसा:=समृद्धाऽभिलाषा: (सन्त:) प्रेमराशीभवन्ति = प्रणयराशीभवन्ति, विरहसहिष्णुतां प्राप्नुवन्ति ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ:—हे असितनयने = हे कृष्णनयने ! एतस्मात् = इस (पूर्व कहे गये) कारण से, अभिज्ञानदानात् = घटनाविशेष रूप 'निशानी' देने से, माम् = मुझको, कुशलिनम् = कुशलपूर्ण, विदित्वा = जानकर, कौलीनात् = लोकापवाद के कारण, मयि = मेरे विषय में, अविश्वासिनी = विश्वासरहित, मा भूः = मत होओ। स्नेहान् = स्नेह को, विरहे = वियोग में, किसी-किसी कारण से, ध्वंसिन: = विनष्ट होने वाले, आहु:=(कुछ लोग) कहते हैं, तु = किन्तु, ते = वे स्नेह, अभोगात् = न भोगे आने के कारण, इष्टे = अभिलषित, वस्तुनि = पदार्थ के विषय में, उपचितरसा: = बढ़े हुए रस (अभिलाष) वाले (होकर) प्रेमराशी-भवन्ति = प्रेमपुञ्ज हो जाते हैं ॥ ४९ ॥

भावार्थ:—हे प्रिये ! पूर्वकथित-घटना-विशेषरूपाभिज्ञानदानात् मां कुशलिनं ज्ञात्वा लोकापवादान्मयि विश्वास-रहिता मा भूः । (केचित्) स्नेहान् वियोगे विनश्वरा: कथयन्ति परन्तु वस्तुस्थितिस्तु नैतादृशी; अपितु ते स्नेहा: वियोगे उपभोगाऽभावादभिलषितपदार्थे प्रवृद्धाऽभिलाषा: सन्त: प्रेम-पुञ्जीभवन्ति ॥ ४९ ॥

हिन्दी—हे कृष्णाक्षि ! पहले कहे गये अभिज्ञान के देने से मुझे सकुशल जानकर लोकापवाद के कारण मेरे विषय में अविश्वास मत करो ! (कुछ लोग) स्नेह को वियोग में विनाशशील कहते हैं परन्तु वे स्नेह तो वियोग काल में न भोगे जाने के कारण अभिलषित पदार्थ के विषय में अभिलाषा के अधिक हो जाने के कारण प्रेमपुञ्ज हो जाते हैं ॥ ४९ ॥

समास:—न सिते = असिते (नञ्०) असिते नयने यस्या: सा असित-नयना (बहु०) तत्सम्बुद्धौ । न भोग: अभोग: (नञ्०) तस्मात् । उपचितो रसो येषु ते = उपचितरसा: (बहु०) ।

कोश:—मुत्प्रीति: प्रमदो हर्ष:, इत्यमर: । स्यात्कौलीनं लोकवादे युद्धे पश्वहि-पक्षिणाम्, इत्यमर: । रसो गन्धे रस: स्वादे तिक्तादौ विषरागयो:, इति विश्व: ।

टिप्पणी—अभिज्ञानदानात्—यहाँ 'हेतौ' इस सूत्र से पञ्चमी हुई है। 'अभिज्ञान' का अर्थ है चिह्न, जिसे बोलचाल की भाषा में 'निशानी' कहते हैं। महाकवि ने इस अभिज्ञान का प्रयोग अपने अन्य कृतियों में भी किया है। जैसे 'शकुन्तला नाटक' का पूर्ण नाम ही 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' है, उसमें राजा दुष्यन्त 'शकुन्तला' को अपना अभिज्ञान स्वनामाङ्कित 'अँगूठी' देते हैं, जो उस नाटक के नामकरण का मुख्य आधार है। इसी तरह 'विक्रमोर्वशीय' में भी 'संगम-मणि' अभिज्ञान रूप ही है। इसी तरह 'मालविकाग्निमित्र' में भी सर्पचिह्न से चिह्नित मुद्रिका अभिज्ञान रूप में आती है। इसी तरह यहाँ भी यक्ष 'निद्रां गत्वा' आदि अभिज्ञान मेघ की सच्चाई एवं अपनी कुशलता की जानकारी के लिए देता है। कुशलिनम्—कुशलमस्यास्तीति कुशली, यहाँ 'कुशल' शब्द से 'अत इनिठनौ' इस सूत्र से 'इन्' प्रत्यय हुआ है। कौलीनात्—कुले (जनसमूहे) भवः=कुलीनः 'कुल' शब्द से 'कुलात्खः' इससे 'ख' प्रत्यय होता है, और 'आयनेयीनीयियः' इत्यादि सूत्र से 'ख' के स्थान पर 'ईन' आदेश करके 'कुलीन' शब्द बनता है। पश्चात् 'कुलीनस्य भावः' या 'कुलीनस्य कर्म' किसी भी विग्रह में 'हायनान्त-युवादिभ्योऽण्' इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय करके आदिवृद्धि करके 'कौलीन' ऐसा रूप बनता है। तस्मात् कौलीनात्। यहाँ महामहोपाध्याय मल्लिनाथ जी ने 'कुले जनसमूहे भवात् कौलीनात्=लोकप्रवादात्' लिखा है, जो कि उनकी न्यूनता कही जायेगी, क्योंकि उन्होंने प्रकृति प्रत्ययादि का निर्देश नहीं किया है। 'अस्तु', 'कौलीन' का अर्थ लोकापवाद होता है, जो दो प्रकार का होता है—(१) सामान्य और (२) विशेष। मल्लिनाथजी ने सम्भवतः 'कुशलिनं मां विदित्वा' इस पूर्व पङ्क्ति को आधार मानकर यहाँ सामान्य लोकापवाद का ही ग्रहण किया है कि 'यदि तुम्हारे पति (यक्ष) जीवित होते तो तुम्हारे पास अवश्य आ गये होते' इसलिए यक्ष कहता है—हे प्रिये मुझे कुशल समझकर मेरे विषय में विश्वास मत छोड़ दो, मैं जीवित हूँ। सम्भवतः इसीलिए यक्ष अपने हर एक सन्देश-पद्य में अपनी प्रिया के लिए, अविधवे !, सुभगे, आदि का प्रयोग करके यह प्रदर्शित

करना चाहता है कि मैं जीवित हूँ, और एक पतिव्रता स्त्री के लिए अपने पति पर परस्त्रीगमन का संदेह होना असंभव है, यह युक्ति भी महामहोपाध्याय जी ने दी है। कुछ लोग यहाँ लोकापवाद से विशेष लोकापवाद का ग्रहण करते हैं। उनका कहना है कि 'तुम्हारे पति किसी दूसरी स्त्री में आसक्त हो गये, नहीं तो अब तक तुम्हारे पास आ गये होते' यही लोकापवाद है, इस प्रकार यक्ष समझा रहा है कि हे प्रिये! मुझ पर अविश्वास मत करो। मैं किसी दूसरी स्त्री में आसक्त नहीं हूँ। यहाँ दोनों अर्थ युक्ति-युक्त हैं, क्योंकि स्त्रियों के मन में अपने पति के लिए वियोगावस्था में इस प्रकार के दोनों भाव सदा उत्पन्न होते ही रहते हैं। **अविश्वासिनी**—'वि' उपसर्गपूर्वक 'श्वस्' धातु से घञ् प्रत्यय करके 'विश्वास' शब्द निष्पन्न होता है। और न विश्वासः अविश्वासः। तथा अविश्वास अस्त्यस्याः, इस विग्रह में 'अत इनिठनौ' इस सूत्र से इनि प्रत्यय करके स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् करके 'अविश्वासिनी' रूप बनता है। **ध्वंसिनः**—ध्वंसन्तीति तच्छीलाः इस विग्रह में 'णिनि' प्रत्यय करके 'ध्वंसिन्' शब्द बनता है, यह प्रथमा के बहुवचन का रूप है। **अभोगात्**—'नञ्' दो प्रकार के होते हैं—(१) पर्युदास (२) प्रसज्य-प्रतिषेध। इन दोनों का स्वरूप थोड़ा समझ लें—

(१) पर्युदास–जहाँ प्रतिषेध पर बल नहीं रहता, अपितु विधि की प्रधानता रहती है, इसलिए नञ् का सम्बन्ध क्रिया के साथ न होकर प्रातिपदिक के साथ रहता है वहाँ 'पर्युदास' होता है। जैसे अविद्वान्, असुखी इत्यादि।

(२) प्रसज्यप्रतिषेध—पर्युदास के ठीक विपरीत जहाँ प्रतिषेध पर बल, विधि की प्रधानता न होकर निषेध की प्रधानता तथा क्रिया के साथ नञ् का सम्बन्ध होता है वहाँ प्रसज्यप्रतिषेध होता है, जैसे—न करोति। यहाँ क्रिया के साथ सम्बन्ध न होने के कारण पद असमस्त ही रहते हैं।

अब प्रकृत पर ध्यान दीजिए, उपर्युक्त विवेचनानुसार यहाँ 'प्रसज्यप्रतिषेध' है और तब उचित था कि नञ् का सम्बन्ध क्रिया के साथ होता परन्तु नहीं किया गया है, अतः यहाँ 'अविमृष्टविधेयांश' नामक काव्य-दोष की आपत्ति हो सकती है, परन्तु; 'वामनाचार्य' ने अपने काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति में

पाणिनि के 'आदेच उपदेशेऽशिति' इस सूत्र के 'अशिति' इस सूत्र का निर्देश देकर 'प्रसज्यप्रतिषेधेऽपि समासोऽस्ति' ऐसा लिखा है, अतः यहाँ उक्त दोष का निवारण हो सकता है।

प्रेमराशी-भवन्ति—वियोगावस्था में व्यक्ति अभिलषित वस्तु का उपभोग तो कर पाता नहीं अपितु उसके विषय में सतत कुछ-न-कुछ सुन्दर कल्पना करता रहता है, परिणाम यह होता है कि उस वस्तु के लिए उसके हृदय में अभिलाषा बढ़ती रहती है और एक ऐसा समय आ जाता है कि वह व्यक्ति उस अभिलषित वस्तु के विना रह ही नहीं सकता, उसे ही प्रेम कहते हैं। स्नेह और प्रेम में यही सूक्ष्म अन्तर है कि 'अभीष्ट' वस्तु के लिए व्यापार करना स्नेह है और उसके बिना नहीं रह पाना, उसके वियोग को न सह सकना ही प्रेम है। अतः यक्ष कहता है। 'स्नेह मरता नहीं अपितु वियोग में वह प्रेमपुञ्ज बन जाता है' संयोग की सात अवस्थाएँ होती हैं जिसमें स्नेह और प्रेम का अलग-अलग कथन है—

प्रेक्षा दिदृक्षा रम्येषु तच्चिन्तात्वभिलाषकः।
रागस्तत्सङ्गबुद्धिः स्यात्स्नेहस्तत्प्रवणक्रिया॥
तद्वियोगाऽसहं प्रेम रतिस्तत्सहवर्तनम्।
शृङ्गारस्तत्समं क्रीडा संयोगः सप्तधा क्रमात्॥

अलङ्कारः—यहाँ अर्थान्तरन्यास नामक अलङ्कार है॥ ४९॥

आश्वास्यैवं प्रथमविरहोदग्रशोकां सखीं ते
शैलादाशु त्रिनयनवृषोत्खातकूटान्निवृत्तः।
साभिज्ञानप्रहितकुशलैस्तद्वचोभिर्ममापि
प्रातःकुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथाः॥५०॥

अन्वयः—प्रथमविरहोदग्रशोकाम्, ते, सखीम्, एवम्, आश्वास्य, त्रिनयनवृषोत्खातकूटात्, शैलात्, आशु, निवृत्तः, साऽभिज्ञानप्रहित-कुशलैः, तद्वचोभिः, प्रातःकुन्दप्रसवशिथिलम्, मम, अपि, जीवितम्, धारयेथाः॥ ५०॥

व्याख्या—प्रथमविरहोदग्रशोकाम् = आद्यवियोगतीव्र-दुःखाम्, ते = तव, सखीम् = भ्रातृजायाम्, मत्प्रियामिति भावः, एवम् = अनेन प्रकारेण, आश्वास्य =

उपजीव्य, त्रिनयनवृषोत्खातकूटात् = शङ्कर-वृषभ(नन्दि)-विदीर्णसानोः, शैलात् = पर्वतात्, कैलासादिति भावः, आशु = शीघ्रम्, निवृत्तः = प्रत्यागतः, साऽभिज्ञानप्रहित-कुशलैः = सचिह्नप्रेषितक्षेमैः, तद्वचोभिः = मत्प्रियावचनैः, प्रातःकुन्द-प्रसवशिथिलम् = प्रात्यूषिकमाघ्यपुष्पदुर्बलम्, मम अपि = यक्षस्यापि, जीवितम् = जीवनम्, धारयेथाः = धारणं कुर्याः ॥ ५० ॥

शब्दार्थः—प्रथमविरहोदग्रशोकम् = अभूतपूर्ववियोग के कारण तीव्रदुःख-वाली, ते = तुम (अपनी), सखीम् = भाभी को (मेरी प्रिया को), एवम् = पूर्वोक्त प्रकार से, आश्वास्य = आश्वासन देकर, त्रिनयनवृषोत्खातकूटात् = शिवजी के बैल (नन्दी) के द्वारा विदीर्ण किये गये शिखरों वाले, शैलात् = पर्वत (कैलास) से, आशु = शीघ्र ही, निवृत्तः = लौटा हुआ, साऽभिज्ञानप्रहित-कुशलैः = लक्षण युक्त कुशल वार्ता वाले, तद्वचोभिः = उसके संदेशों से, प्रातःकुन्दप्रसवशिथिलम् = प्रातःकालिक खिले हुए कुन्द (चमेली) के फूल के समान दुर्बल, ममापि = मेरे भी, जीवितम् = जीवन की, धारयेथाः = रक्षा करना ॥ ५० ॥

भावार्थः—हे मेघ ! अभूतपूर्व-वियोगेनातीवदुःखां मत्प्रियतमामेवमाश्वास्य कैलास-पर्वतात् त्वरितं प्रत्यागतः सलक्षणप्रेषितसन्देशैः मत्प्रियावचोभिस्त्वं प्राभातिक-कुन्द-पुष्प-दुर्बलं मम जीवनमपि रक्ष ॥ ५० ॥

हिन्दी—हे मेघ ! इस प्राथमिक वियोग के कारण तीव्र दुःखवाली अपनी भाभी (मेरी प्रिया) को इस प्रकार आश्वासन देकर कैलास पर्वत से शीघ्र लौटा हुआ तुम लक्षणयुक्त सन्देशों वाले मेरी प्रिया के वचनों से प्रातःकाल में खिले चमेली के फूल के समान दुर्लभ मेरे जीवन की भी रक्षा करना ॥५०॥

समासः—प्रथमश्चासौ विरहश्च प्रथमविरहः (कर्म०) उद्गतमग्रं यस्य स उदग्रः (बहु०); उदग्रः शोको यस्याः सा उदग्रशोका (बहु०) प्रथमविरहेण उदग्रशोका = प्रथमविरहोदग्रशोका (तृ० तत्०) ताम् । त्रीणि नयनानि यस्य सः त्रिनयनः (बहु०) तस्य वृषः = त्रिनयनवृषः (ष० तत्०) उत्खाताः कूटा यस्य स उत्खातकूटः (बहु०) त्रिनयन-वृषेण उत्खातकूटः = त्रिनयनवृषोत्खातकूटः (तृ० तत्०) तस्मात् । अभिज्ञानेन सहितम् = साऽभिज्ञानम् (तुल्य० बहु०) । प्रहितं कुशलं येषु तानि प्रहित-कुशलानि (बहु०) साभिज्ञानं यथा स्यात्तथा

प्रहित-कुशलानि = साभिज्ञान-प्रहित-कुशलानि (सुप्सुपा०) तैः । तस्याः वचांसि तद्वचांसि (ष० तत्०) तैः । प्रातर्भवः कुन्द-प्रसवः = प्रातर्कुन्दप्रसवः (मध्यम-पदलोपी समास), प्रातःकुन्दप्रसव इव शिथिलम् = प्रातःकुन्दप्रसवशिथिलम् (उपमान कर्म धा०) ।

कोशः—कूटोऽस्त्री शिखरं शृङ्गम्, इत्यमरः । अविलम्बितमाशु च; इत्यमरः । कुशलं क्षेममस्त्रियाम्, इत्यमरः । उच्चः प्रांशून्नतोदग्रः, इत्यमरः ।

टिप्पणी—आश्वास्य—'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'श्वस्' धातु से णिच् करके पुनः क्त्वा प्रत्यय लाकर उसके स्थान में 'ल्यप्' आदेश करके 'आश्वास्य' रूप बनता है । त्रिनयन—यहाँ 'क्षुभ्नादिषु च' इस सूत्र से णत्व का निषेध किया गया है । साऽभिज्ञानप्रहित-कुशलैः—यक्ष प्रिया के सन्देश में भी स्वयं की ही तरह 'अभिज्ञान' चाहता है । यह मेरी प्रिया का ही संदेश है या स्वयं बनाकर कुछ कह रहा है, इस शङ्का की निवृत्ति के लिए यहाँ साभिज्ञान पद दिया गया । प्रातःकुन्दप्रसव-शिथिलम्—प्रातःकाल में चमेली का फूल बहुत शिथिल होता है, अतः यक्ष ने प्राण की उपमा उससे दी है कि प्रिया-विरह के कारण मेरा प्राण भी वैसा ही दुर्लभ है । धारयेथाः—'धारणार्थक' 'धृ' धातु से 'हेतुमति च' इस सूत्र से 'णिच्' प्रत्यय करके लिङ् लकार लाकर उसके स्थान में मध्यमपुरुष एकवचन में 'थास्' आदेश करके 'धारयेथाः' ऐसा रूप निष्पन्न होता है । यहाँ 'णिचश्च' इस सूत्र से आत्मनेपद का विधान किया जाता है ।

यहाँ प्रार्थना अर्थ में 'लिङ्' लकार आया है ॥ ५० ॥

कच्चित् सौम्य ! व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे

प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां कल्पयामि ।

निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्यः

प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ॥५१॥

अन्वयः—हे सौम्य ! इदम्, मे, बन्धुकृत्यम्, त्वया, व्यवसितम्, कच्चित्, प्रत्यादेशात्, भवतः, धीरताम्, न, कल्पयामि; खलु । याचितः (सन्) निः

शब्दः, अपि, चातकेभ्यः, जलम्, प्रदिशसि । हि, सताम्, प्रणयिषु, ईप्सिताऽर्थ-क्रिया, एव, प्रत्युक्तम् ॥ ५१ ॥

व्याख्या—हे सौम्य !=हे सज्जन! इदम्=एतत्, मे=मम, बन्धुकृत्यम्=सखाकार्यम्, त्वया=मेघेन, व्यवसितं कच्चित्=करिष्यामीति निश्चितं किम् ? प्रत्यादेशात्=प्रत्याख्यानात्, खलु भवतः=मेघस्य, धीरताम्=गाम्भीर्यम्, न कल्पयामि=नानुमोदयामि । याचितः=प्रार्थितः सन्, निःशब्दः अपि=स्तनितरहितोऽपि, चातकेभ्यः=सारङ्गेभ्यः, जलम्=तोयम्, प्रदिशसि=प्रयच्छसि। हि=यस्मात्, सताम्=सज्जनानाम्, प्रणयिषु=प्रार्थिषु, (विषये) ईप्सितार्थक्रिया एव=अभिलषित-कार्य-करणमेव, प्रत्युक्तम् = प्रतिवचनम्, अभीष्ट-कार्यसम्पादनमेव प्रार्थिषूत्तरं भवतीति भावः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थः—हे सौम्य !=हे भद्र ! इदम्=इस सन्देश पहुँचाना रूप, मे=मेरे, बन्धुकृत्यम्=मित्रता के कार्य को, त्वया=तुमने, व्यवसितं कच्चित्=करूँगा क्या यह सोच लिया है, प्रत्यादेशात्=ठुकरा देने के कारण ही, भवतः=तुम्हारी, धीरताम्=गम्भीरता को, न कल्पयामि=मैं कल्पना नहीं करता। याचितः=प्रार्थना करने पर, निःशब्दोऽपि=गर्जन किये बिना भी, चातकेभ्यः=चातकों के लिए, जलम्=पानी, प्रदिशसि=देते हो । हि=क्योंकि, सताम्=सज्जनों का, प्रणयिषु=याचकों के प्रति, ईप्सितार्थ-क्रियैव=अभीष्ट कार्य का सम्पादन ही, प्रत्युक्तम्=उत्तर (होता है) ॥ ५१ ॥

भावार्थः—हे भद्र ! त्वया मत्कार्यं करिष्यते इति हृदये निश्चितं किम् ? यस्त्वं याचितः सन् स्वीकृतिरूपं स्तनितमकृत्वाऽपि चातकेभ्यः तोयं प्रददासि, स त्वं मत्सन्देशवाहनरूपं कार्यमस्वीकरिष्यसीति त्वद्गाम्भीर्येण नाऽहङ्कल्प-यामि । यतः सज्जनानां प्रार्थिसु अभिलषित-कृत्य-सम्पादनमेव प्रतिवचनं भवति ॥ ५१ ॥

हिन्दी—हे सज्जन ! क्या तुमने मेरे इस बन्धु-कार्य को करने के लिए निश्चय किया है ? जो तुम माँगने पर स्वीकृतिसूचक गर्जन किये बिना भी चातकों को जल देते हो, वह तुम मेरी प्रार्थना को ठुकरा दोगे, ऐसी कल्पना तुम्हारी गम्भीरता के कारण मैं नहीं कह रहा हूँ। क्योंकि सज्जनों का याचकों के प्रति अभिलषित प्रयोजन का सम्पादन ही प्रत्युत्तर हुआ करता है ॥ ५१ ॥

समासः—बन्धोः कृत्यम् = बन्धुकृत्यम् (ष० तत्०)। निर्गतः शब्दः यस्मात् सः निःशब्दः (बहु०)। ईप्सितश्चासौ अर्थः = ईप्सितार्थः (कर्म धा०) तस्य क्रिया = ईप्सितार्थक्रिया (ष० तत्०)।

कोशः—कच्चित् काम प्रवेदने, इत्यमरः। उक्तिराभाषणं वाक्यमादेशो वचनं, इति शब्दार्णवः। प्रत्याख्यानं निरसनं प्रत्यादेशो निराकृतिः, इत्यमरः।

टिप्पणी—मे—अस्मद् शब्द की षष्ठी विभक्ति के एकवचन 'मम' के स्थान में 'तेमयावेकवचनस्य' इस सूत्र से 'मे' आदेश होता है। इस 'मे' पद का 'बन्धु-कृत्यम्' घटक बन्धोः के साथ अपेक्षा होने पर 'गमकत्वात्' समास हुआ है। गमकत्व वहाँ होता है जहाँ की समास-वृत्ति एवं विग्रह (वृत्ति के अर्थ का अवबोधन करनेवाला वाक्य) में एक समान ही उपस्थिति होती है क्योंकि लक्षण है 'वृत्तिविग्रहयोः समानप्रकारोपस्थितिजनकत्वं गमकत्वम्' इति। कच्चित्—यह अव्यय पद है। इसका प्रयोग अभिप्राय प्रगट करने के अर्थ में होता है। प्रत्यादेशात्—'प्रति' पूर्वक एवं 'आङ्' पूर्वक 'दिश' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करके 'प्रत्यादेश' शब्द निष्पन्न होता है। यहाँ हेतु में पञ्चमी है।

प्रत्यादेश शब्द का अर्थ महामहोपाध्याय मल्लिनाथजी ने प्रतिवचन अर्थात् प्रत्युत्तर माना है, उनका प्रमाण है शब्दार्णव कोश की 'उक्तिराभाषणं वाक्यमादेशो वचनं वचः' यह उक्ति है। तदनुसार अर्थ यह हो सकता है कि 'उत्तर देकर तुमने मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया है इसलिए मैं तुम्हारी गम्भीरता का समर्थन नहीं कर पाता, जो तुम माँगने पर बिना शब्द किए ही चातकों को जल देते हो क्योंकि सज्जनों का याचकों के प्रति अभीष्ट प्रयोजन सम्पादन ही प्रत्युत्तर होता है। इति। परन्तु महाभाष्य आदि ग्रन्थों में प्रत्यादेश का प्रत्याख्यान, निरादर आदि अर्थ में ही प्रयोग मिलता है। अतः एतदनुसार ही व्याख्या की गई है।

कल्पयामि—णिजन्त 'कलिप' धातु के लट् लकार के उत्तमपुरुष के एकवचन का रूप है। 'प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव' इसके उदाहरण स्वरूप मल्लिनाथजी ने निम्नलिखित श्लोक दिया है—

गर्जति शरदि न वर्षति, वर्षति वर्षासु निःस्वनो मेघः ।
नीचो वदति न कुरुते, न वदति सुजनः करोत्येव ॥

नैषधचरित में इसी भाव का कथन है—

ब्रुवते हि फलेन साधवो न तु कण्ठेन निजोपयोगिताम् ।
(नैषध०, २ । ४८ ।)

अलङ्कारः—यहाँ तृतीय चरणोक्त वाक्यार्थ का समर्थन चतुर्थ चरण कथित वाक्य के द्वारा होता है । अतः 'अर्थान्तरन्यास' नामक अलङ्कार है ।

एतत्कृत्वा प्रियमनुचितप्रार्थनावर्तिनो मे
सौहार्दाद्वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुद्ध्या ।
इष्टान्देशान् विचर जलद ! प्रावृषा सम्भृतश्री-
र्माभूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः ॥५२॥

अन्वयः—हे जलद ! सौहार्दात्, वा, विधुर इति वा, मयि, अनुक्रोश-बुद्ध्या, वा, अनुचितप्रार्थनावर्तिनो, मे, एतत्, प्रियम्, कृत्वा, प्रावृषा, संभृतश्रीः, इष्टान्, देशान्, विचर । क्षणमपि, ते, विद्युता, विप्रयोगः, एवम्, मा, भूत् ॥ ५२ ॥

व्याख्या—इदानीं यक्षः स्वकार्यार्थं मेघं प्रार्थमानः तं विसृजति एतदिति । हे जलद !=हे पयोधर ! सौहार्दात्=मित्रभावात्, वा=अथवा, विधुर इति वा=प्रियावियुक्त इति कारणात्, वा=अथवा, मयि=यक्षे, (विषये) अनुक्रोशबुद्ध्या=दयामत्या, वा=अथवा, अनुचितप्रार्थनावर्तिनः=अननुरूपयाचकस्य, मे=यक्षस्य, एतत्=सन्देशहरणरूपम्, प्रियम्=अभिप्सितं कार्यम्, कृत्वा=सम्पादयित्वा; प्रावृषा=वर्षाभिः, संभृतश्रीः=परिवर्धित-शोभः सन्, इष्टान्=निजाभिलषितान्, देशान्=प्रान्तान्, विचर=गच्छ, अन्ते च मेघमाशिषमुक्त्वा स्ववक्तव्यं यक्ष उपसंहरति माभूदिति। क्षणमपि=निमेषमात्रमपि, ते=मेघस्य, विद्युता=चपलया, प्रेयसिरूपयेति भावः, विप्रयोगः=वियोगः, एवम्=मत्सदृशम्, माभूत्=न भवेत् ॥ ५२ ॥

शब्दार्थः—हे जलद ! हे मेघ, सौहार्दात् = मित्र भाव से, वा = अथवा, विधुर इति = (मेरे) प्रिया वियुक्त होने के कारण, वा = अथवा, मयि = मेरे विषय में, अनुक्रोशबुद्ध्या = करुणाबुद्धि से, अनुचितप्रार्थनावर्तिनः = अनुपयुक्त प्रार्थना करने वाले, मे = मेरे, एतत् = इस सन्देश पहुँचाने रूप, प्रियम् = अभिलषित कार्य को, कृत्वा = करके, प्रावृषा = वर्षाऋतु के कारण, संभृतश्रीः = समृद्ध शोभा वाला, (होता हुआ) इष्टान् = अभिलषित, देशान् = देशों में, विचर = विहार करो (घूमो)। अन्त में आशीर्वाद देकर यक्ष अपना वक्तव्य समाप्त करता है। क्षणमपि = एक मिनट भी, ते = तुम्हारा, विद्युता = बिजली से अर्थात् अपनी प्रियतमा से, विप्रयोगः = वियोग, एवं = मेरे जैसा, माभूत् = न हो ।। ५२ ।।

भावार्थः—हे मेघ ! मित्रभावाद्वा, एष प्रिया-विप्रयुक्त इति कारणाद्वा मद्विषये करुणाबुद्ध्या वा मत्प्रिया-सन्देशहरणरूपमभीष्टकृत्यं सम्पाद्य वर्षर्तुनोपचितशोभस्त्वं स्वाभिलषितान्देशान् विहर। मत्सदृशः ते विद्युत्कान्ता-वियोगः एकं क्षणमपि न भवेदिति ।। ५२ ।।

हिन्दी—हे मेघ ! मित्र-भाव से, या यह 'प्रिया से बिछुड़ा हुआ है' इस कारण अथवा मेरे विषय में करुणाबुद्धि से अनुचित प्रार्थना करने वाले मेरे इस 'प्रिया सन्देश हरण' रूप अभिलषित कार्य को करके अपने अभिलषित देशों में विहार करो। (अन्त में यक्ष आशीर्वाद देकर अपना वक्तव्य समाप्त करता है)।

मेरे समान तेरा अपनी प्रियतमा बिजली से एक क्षण भी वियोग न हो ।। ५२ ।।

समासः—जलं ददातीति जलदः (उपपद०) सत्सम्बुद्धौ। शोभनं हृदयं यस्य सः सुहृत् (बहु०)। अनुक्रोशस्य बुद्धिः अनुक्रोशबुद्धिः (ष० तत्०) तया न उचिता = अनुचिता (नञ्०) अनुचितः चासौ प्रार्थना = अनुचितप्रार्थना (कर्म० धा०)। संभृता श्रीर्यस्य सः सम्भृतश्रीः (बहु०)।

कोशः—विधुरन्तु प्रविश्लेषे, इत्यमरः। अथ मित्रं सखा सुहृत्, इत्यमरः। स्त्रियां प्रावृट् स्त्रिया भूम्नि वर्षा, इत्यमरः। कृपादयाऽनुकम्पा स्यादनुक्रोशः, इत्यमरः।

टिप्पणी—जलद—जल उपपद पूर्वक 'दा' धातु से 'क' प्रत्यय करके धातु के आकार का लोप करके जलद ऐसा रूप बनता है। सुहृत्—यहाँ 'हृदय' शब्द के स्थान पर 'सुहृद्दुर्हृदौ मित्राऽमित्रयोः' इस सूत्र से 'हृत्' शब्द निपातन किया जाता है। सुहृदो भावः सौहार्दः यहाँ 'सुहृत्' शब्द से अण् प्रत्यय करके 'हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च' इस सूत्र से 'सु' के उ को औ, एवं 'हृ' के ऋ को आर्, वृद्धि करके 'सौहार्द' ऐसा रूप निष्पन्न होता है। विधुरम्—'वि' उपसर्गपूर्वक 'धुर्' शब्द को 'विगतो धूर्यस्य' इस उपपद समास के पश्चात् 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' इस सूत्र से समासान्त 'अ' प्रत्यय करके 'विधुर' शब्द बनता है। पुनः विधुरमस्यास्तीति इस विग्रह में 'अर्शआदिभ्योऽच्' इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय करके 'विधुर' ऐसा रूप निष्पन्न होता है, जिसका 'वियुक्त' अर्थ होता है। अनुचितप्रार्थनावर्तिनः—अनुचितप्रार्थनायां वर्तते तच्छीलः इस विग्रह में अनुचित प्रार्थना उपपद पूर्वक 'वृत्' धातु से 'ताच्छील्य' अर्थ में 'णिनि' प्रत्यय करके 'अनुचित प्रार्थनावर्ती' ऐसा शब्द निष्पन्न होता है, प्रकृत रूप षष्ठी विभक्ति का है। प्रार्थना में अनुचित विशेषण देने का तात्पर्य यह है कि कहाँ तो मैं अभिशप्त यक्ष और कहाँ तुम देवताओं के राजा इन्द्र के मन्त्री, प्रधान पुरुष हो और तुमसे प्रिया के पास सन्देश पहुँचाने के लिए प्रार्थना करना अनुचित होता है। क्योंकि कहा गया है—न हि प्रकृष्टाः प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हीतरे जनाः। इति। संभृतश्रीः—'सम्' उपसर्गपूर्वक 'भृ' धातु से 'क्त' प्रत्यय करके स्त्रीत्व विवक्षा में 'टाप्' करके 'संभृता' ऐसा रूप बनता है। संभृता श्रीर्यस्य स संभृतश्रीः। देशान्—यहाँ 'वि' उपसर्गपूर्वक विहार अर्थ में विद्यमान अकर्मक 'चर्' धातु के योग होने के कारण 'अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्म इति वाच्यम्' इस वार्तिक से कर्म संज्ञा हुई है। और 'कर्मणि द्वितीया' इस सूत्र से द्वितीया विभक्ति हुई है। यह बहुवचन का रूप है। यह 'चर' धातु यद्यपि अकर्मक है, परन्तु उक्त कारण से 'देश' यह पद 'विचर' का कर्म हुआ। उदाहरण-स्वरूप देखिए—'अधिज्यधन्वाविचचार दावम्' रघुवंश द्वितीय सर्ग में भी 'दाव' यह पद 'विचचार' का कर्म है। विप्रयोग—

'वि' एवं 'प्र' उपसर्गपूर्वक योगार्थक 'युज्' धातु से घञ् प्रत्यय करके 'विप्रयोग' रूप निष्पन्न होता है। मा भूत्—यहाँ 'मा' के योग में 'भू' धातु से आशीर्वाद अर्थ में 'माङि लुङ्' इस सूत्र से लुङ् लकार आया है और 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' इस सूत्र से प्राप्त अट् आगम का निषेध 'न माङ् योगे' इस सूत्र से हो गया है। यह एकवचन का रूप है।

अलङ्कारः—यहाँ लिङ्ग-साम्य अर्थात् मेघ में पुंलिङ्ग होने के कारण नायकत्व का एवं स्त्रीलिङ्ग होने के कारण 'विद्युत्' में नायिकात्व का समारोप होने के कारण 'समासोक्ति' नामक अलङ्कार है॥ ५२॥

इस प्रकार कविकुलगुरु कालिदास ने वियोगी यक्ष के द्वारा अचेतन मेघ को कहे गये सन्देश-वार्ता संकलन रूप 'मेघदूत' की समाप्ति यहीं पर कर दी है। महामहोपाध्याय मल्लिनाथजी ने भी यहीं तक के श्लोकों की टीका की है। आगे के श्लोकों द्वारा प्रतिपादित अर्थ की असंभाव्यता के कारण एवं कालिदास की शैली के अभाव के कारण उन्होंने आगे के संक्षिप्त श्लोकों की टीका नहीं की है। परन्तु कुछ टीकाकारों ने जिन दो श्लोकों की टीका की है उनकी टीका मैं भी कर दे रहा हूँ।

[तं संदेशं जलधरवरो दिव्यवाचाऽचचक्षे
प्राणांस्तस्या जनहितरतो रक्षितुं यक्षवध्वाः।
प्राप्योदन्तं प्रमुदितमनाः साऽपि तस्थौ स्वभर्तुः
केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु ॥१॥]

अन्वयः—जनहितरतः, जलधरवरः, तस्याः, यक्षवध्वाः प्राणान्, रक्षितुम्, दिव्यवाचा, तम्, सन्देशम्, आचचक्षे। सा, अपि, स्वभर्तुः, उदन्तम्, प्राप्य, प्रमुदितमनाः, तस्थौ, हि, उत्तमेषु, प्रार्थना, केषाम्, अभिमतफला, न स्यात्?

व्याख्या—जनहितरतः=लोककल्याणतत्परः जलधरवरः=मेघश्रेष्ठः, तस्याः=पूर्वकथितायाः, यक्षवध्वाः=यक्षप्रियायाः, प्राणान्=जीवितान्, रक्षितुम्=पालयितुम्, दिव्यवाचा=लोकोत्तरवाण्या, तम्=यक्ष-कथितम्, सन्देशम्=वार्ताम्, आचचक्षे=उवाच। सा अपि=यक्षप्रिया अपि, स्वभर्तुः=निजप्रियतमस्य

उदन्तम्=वृत्तान्तम्, प्राप्य=लब्ध्वा, प्रमुदितमनाः=प्रफुल्लहृदया, तस्थौ=स्थिता, हि=यतः, उत्तमेषु=महत्सु (विषये) प्रार्थना=याच्ञा, केषाम्=जनानाम्, अभिमतफला=प्राप्तकामा, न भवेत्=न स्यात्, सर्वेषाम् प्रार्थना महत्सु लब्धकामा, भवत्येवेति भावः ॥ १ ॥

शब्दार्थः—जनहितरतः=लोकोपकार में लगे, जलधरवरः=श्रेष्ठ मेघ ने, तस्याः=उस, यक्षवध्वाः=यक्षप्रिया के, प्राणान्=प्राणों की, रक्षितुम्=रक्षा के लिए, दिव्यवाचा=अलौकिक वाणी से, तम्=उस यक्ष के द्वारा कहे गये, सन्देशम्=सन्देश को, आचचक्षे=कहा। सा अपि=वह यक्षपत्नी भी, स्वभर्तुः=अपने प्रियतम के, उदन्तम्=वृत्तान्त को, प्राप्य=पाकर, प्रमुदितमनाः=प्रसन्न हृदय वाली, तस्थौ=हुई। हि=क्योंकि, उत्तमेषु=बड़ों से, प्रार्थना=की गयी याचना, केषाम्=किनकी, अभिमतफला=सफल, न स्यात्=न हो ? अर्थात् सबों की प्रार्थना सफल होती ही है ॥ १ ॥

भावार्थः—लोकोपकारी मेघश्रेष्ठो यक्षपत्न्याः प्राणरक्षार्थं यक्षोक्तं सन्देशं लोकोत्तरवाण्या तस्यै जगाद। यक्ष-प्रियाऽपि स्वभर्तुवृत्तान्तं श्रुत्वा प्रमुदितमना बभूव। महत्सु केषां प्रार्थना सफला न भवत्यपितु सर्वेषां भवत्येवेतिभावः ॥ १ ॥

हिन्दी—लोक के उपकार में संलग्न श्रेष्ठ मेघ ने उस यक्षपत्नी के प्राणों की रक्षा के लिए यक्ष के द्वारा कहे गये सन्देश को अलौकिक वाणी से यक्षप्रिया को कहा। वह यक्षप्रिया भी अपने पति के वृत्तान्त को सुनकर प्रसन्न मन वाली हो गयी। क्योंकि महापुरुषों से की गयी किसकी प्रार्थना सफल नहीं होती। अर्थात् सबों की होती है।

समासः—जनहिते: रतः=जनहितरतः (स० तत्०), जलानां धराः=जलधराः (ष० तत्०) तेषु श्रेष्ठः जलधरश्रेष्ठः (स० तत्०)। यक्षस्य वधूः यक्षवधूः (ष० तत्०) तस्याः। दिव्या चासौ वाक्=दिव्यवाक् (कर्म० धा०) तया। स्वस्य भर्ता=स्वभर्ता (ष० तत्०) तस्य। प्रमुदितं मनो यस्याः सा प्रमुदितमना (बहु०)। अभिमतं फलं यस्याः सा अभिमतफला (बहु०)।

कोश:—योषा नारी सीमन्तनी वधू:, इत्यमर:। सन्देशवाक् वाचिकं स्यात्, इत्यमर:। वार्ताप्रवृत्तिर्वृत्तान्तमुदन्तं स्यात्, इत्यमर:। स्वान्तं हृन्मानसं मन:, इत्यमर:।

टिप्पणी—जनहितरत:—'जनेभ्यो हितम्' यहाँ जन शब्द से हित के योग में 'हितयोगे च' इस सूत्र से चतुर्थी विभक्ति आयी है। पश्चात् 'चतुर्थी तदर्थार्थ-बलि-हित-सुखरक्षितै:' इस सूत्र से चतुर्थी समास होकर 'भ्यस्' का लोप किया गया है। 'पश्चात् सप्तमी समास किया गया है। जलधर–धरतीति धरा: 'धृ' धातु से पचाद्यच् करके 'धरा:' ऐसा रूप बनता है और उसके योग में 'कर्तृकर्मणो: कृति' इस सूत्र से 'जल' शब्द से षष्ठी विभक्ति हुई है। यहाँ यदि द्वितीया समास किया गया तो 'कर्मण्यण्' इस सूत्र से अण् प्रत्यय होकर णित्वात् धातु के आकार को वृद्धि होने लगेगी। यदि 'जलधार' रूप स्वीकार कर भी लिया जाय तो छन्दोभङ्ग होने लगेगा। रक्षितुम्—'रक्ष्' धातु से 'तुमुन्' प्रत्यय करके 'रक्षितुम्' ऐसा रूप निष्पन्न होता है। आचचक्षे—'आङ्' उपसर्गपूर्वक चक्ष् (इङ्) धातु के लिट् लकार का 'आचचक्षे' रूप है। ङित्वात् आत्मनेपद हुआ है। प्राप्य—'प्र' उपसर्गपूर्वक 'आप्' धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय करके उसके स्थान में 'ल्यप्' करके 'प्राप्य' ऐसा रूप बनता है। तस्थौ—'स्था' धातु के लिट् लकार के प्रथमपुरुष के एकवचन का रूप है 'तस्थौ'।

अलङ्कार:—यहाँ तृतीय चरणोक्त विशेष अर्थ का चतुर्थ चरणोक्त सामान्य के द्वारा समर्थन होने के कारण 'अर्थान्तरन्यास' अलङ्कार है।

श्रुत्वा वार्तां जलदकथितां तां धनेशोऽपि सद्य:
शापस्यान्तं सदयहृदय: संविधायाऽस्तकोप:।
संयोज्यैतौ विगलितशुचौ दम्पती हृष्टचित्तौ,
भोगानिष्टानविरतसुखं भोजयामास शश्वत् ॥ २ ॥

अन्वय:—धनेश:, अपि, जलदकथिताम्, ताम्, वार्ताम्, श्रुत्वा, सदयहृदय:

अस्तकोपः, सद्यः, शापस्य, अन्तम्, संविधाय, विगलितशुचौ, हृष्टचित्तौ, एतौ, दम्पती, संयोज्य, इष्टान्, भोगान्, अविरतसुखम्, शश्वत्, भोजयामास ॥२॥

व्याख्या—धनेशः अपि=कुबेरोऽपि, जलदकथिताम्=मेघव्याहृताम्, ताम्=पूर्व-प्रतिपादिताम्, वार्ताम्=प्रवृत्तिम्, श्रुत्वा=आकर्ण्य, सदयहृदयः=सकरुणचित्तः, अस्तकोपः=विगतमन्युः, सन्, सद्यः=तत्क्षण एव, शापस्य=शपनस्य, अन्तम्=समाप्ति, संविधाय=कृत्वा, विगलितशुचौ=अपगतशोकौ, हृष्टचित्तौ=प्रसन्नहृदयौ; एतौ=पूर्वोक्तौ, दम्पती=जायापती, अज्ञातनामानं यक्षं तस्य पत्नीञ्च, संयोज्य=सम्मेल्य, इष्टान्=प्रियान्, भोगान्=भोग्यपदार्थान्, अविरतसुखम्=निरन्तरसुखम्, यथा स्यात्तथा, शश्वत्=पुनः पुनः, भोजयामास=अनुभावयाम्बभूव ॥ २ ॥

शब्दार्थः—धनेशः=कुबेर, अपि=भी, जलद-कथिताम्=मेघ के द्वारा कहे गये, ताम्=उस, वार्ताम्=सन्देश को, श्रुत्वा=सुनकर, सदयहृदयः=करुणहृदय, अतएव, अस्तकोपः=शान्तक्रोध (वाला होकर) सद्यः=तुरत ही; शापस्य=(अपने द्वारा दिये गये) शाप का, अन्तम्=अन्त, संविधाय=करके, विगलितशुचौ=विनष्ट शोक वाले, अतएव, प्रहृष्टचित्तौ=प्रसन्न मन वाले, एतौ=इन, दम्पती=पति-पत्नी को, संयोज्य=मिलाकर, इष्टान्=अभिलषित, भोगान्=भोग्य पदार्थों का, अविरतसुखम्=जिस प्रकार निरन्तर सुख मिलता रहे, शश्वत्=बार-बार, भोजयामास=उपभोग कराया ॥ २ ॥

भावार्थः—कुबेरोऽपि मेघोक्तं यक्षसन्देशमाकर्ण्य सकरुणः विगतमन्युः सन् शापस्य तत्क्षणमेवावसानं कृत्वा निर्गतशोकौ प्रसन्नमानसावेतौ जायापती सम्मेल्य निरन्तरं यथाऽऽनन्दं स्यात्तथा पुनः पुनः अभिलषितभोग्यपदार्थान् भोजयामास ॥ २ ॥

हिन्दी—कुबेर भी मेघ द्वारा कहे गये यक्ष के सन्देश को सुनकर करुणा से शान्त क्रोध वाला होकर अपने शाप को तुरंत समाप्त करके विनष्ट-दुःख वाले अतः प्रसन्न हृदय वाले उन दोनों यक्ष एवं उसकी पत्नी को मिलाकर जिससे उन्हें सर्वदा आनन्द मिलता रहे, इस प्रकार पुनः पुनः उन दोनों को अभिलषित भोग्य पदार्थों का उपभोग कराया।

समासः—दयया सहितम्=सदयम् (तुल्ययोग बहु०)। सदयं हृदयं यस्य

सः सदयहृदयः (बहु०)। अस्तः कोपो यस्मात्सः अस्तकोपः (बहु०)। विगलिता शुक्=भयस्तौ विगलितशुचौ (बहु०)। जाया च पति च दम्पत्ती (द्वन्द्व) तौ। न विरतम् = अविरतम् (नञ्०)। अविरतं सुखं यस्मिन् तद्यथा स्यात्तथा अविरतसुखम् (बहु०)।

कोशः—दम्पती जम्पती जायापती भार्यापती च तौ, इत्यमरः। सतताऽनारताऽश्रान्तसन्तताऽविरताऽनिशम्, इत्यमरः।

टिप्पणी—अस्त—अस् धातु से क्त प्रत्यय करके 'अस्त' ऐसा रूप निष्पन्न होता है। हृष्टः—हृष् धातु से 'क्त' प्रत्यय करके ष्टुत्व आदि करके 'हृष्टः' ऐसा रूप निष्पन्न होता है। दम्पती—जाया च पतिश्च इस विग्रह में द्वन्द्व समास होने के पश्चात् 'राजदन्तादिषु परम्' इस सूत्र से 'जाया' शब्द को 'दम्' भाव निपातन होता है, तत्र दम्पती यह रूप बनता है। जहाँ उसी सूत्र से 'जाया' शब्द को 'जम्' भाव निपातन होता है वहाँ 'जम्पती' ऐसा रूप निष्पन्न होता है। संयोज्य—'सम्' उपसर्गपूर्वक 'युज्' धातु से 'णिच्' प्रत्यय करके धातु संज्ञा करके पश्चात् क्त्वा प्रत्यय करके उसके स्थान में 'ल्यप्' आदेश करके 'संयोज्य' ऐसा रूप उपपन्न होता है। भोजयामास—णिजन्त 'भोजि' धातु से लिट् लकार लाकर पुनः तिप् णलादि करके उसका लोप इत्यादि करके आम आदि लाकर, पुनः 'कृञ् चानुप्रयुज्यते लिटि' इस सूत्र से लिट् परक 'अस्' का अनुपयोग करके गुण अयादेश आदि करके, 'भोजयामास' ऐसा रूप निष्पन्न होता है ॥ २ ॥

इति शम् ॥

सीता-महो-मण्डल-मध्यवर्ती,
ग्रामो'ऽलपूरा' बुधवास-भूमिः ।
निवासिना तस्य कृताऽत्र टीका,
श्रीवैद्यनाथेन प्रपूरितैषा ॥

इति श्रीकविकुलगुरुमहाकविकालिदासविरचित-मेघदूतस्य मधुवनीमण्डलान्तर्गत 'अलपूरा' ग्राम-निवासिना झोपाह्ववैद्यनाथेन कृतया 'इन्दुकला' टीकया भगवान् विश्वेश्वरः प्रसीदतु ॥

इति शम् ॥



